A-PDF Image To PDF Demo. Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

प्रजामंडल

साहस, सनसनी, दर्द और प्रेम से लबालब
भरा श्रेष्ठ हिन्दी उपन्यास

लेखक
श्रीनाथसिंह

प्रकाशक
'दीदी' कार्य्यालय, इलाहाबाद
१९४१

१॥)

निवेदन

यह उपन्यास मैंने इस इरादे से लिखा है कि राजा और प्रजा एक दूसरे को समझें और भारतीय राज्यों में उनके बीच जो संघर्ष चल रहा है, उसका अंत हो। इसके सब पात्र कल्पित हैं और किसी व्यक्ति विशेष की निन्दा या प्रशंसा इसका ध्येय नहीं है।

यह मेरा पहला उपन्यास है, जिसे मैंने डिक्टेट कराया है। हिन्दी शीघ्र लिपि विशारद श्री जलेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव ने मुझे, इसे महीनों बैठकर लिखने के, श्रम से बचाया है। अतएव मैं उनका कृतज्ञ हूँ। श्री रामेश्वर ओझा शास्त्री ने कष्ट करके इसका प्रूफ़ देखा है। उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इसके आवरण पृष्ठ का चित्र जिसके मर्म को पाठक उपन्यास पढ़ने के बाद ही समझ सकेंगे, श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव ने अंकित किया है। इस अवसर पर मैं उनको भी धन्यवाद देता हूँ।

दीदी कार्य्यालय
अप्रैल, ४१

श्रीनाथसिंह

प्रकाशक की बात

यदि आप इस उपन्यास को ख़रीद कर पढ़ेंगे और इसकी सूचना हमें देंगे तो हम आपको अपना परम सहायक समझेंगे और आपका नाम, अपने यहाँ से शीघ्र ही निकलने वाले 'काशी-विश्वनाथ' नामक उपन्यास में, इसी पृष्ठ पर सधन्यवाद प्रकाशित करेंगे।

प्रजामंडल

प्रजामंडल

१

घोंसले में बैठे हुए पक्षी के बच्चे को जैसे आने वाले तूफान का कोई पता नहीं होता, वैसे ही भुवनमोहिनी को इस बात की खबर नहीं थी कि उसके अपहरण के लिए बीहड़ राज्य में क्या क्या षडयंत्र रचे जा रहे हैं। वह राज्य पुरोहित महेशानन्द शास्त्री की परम लाडिली बेटी थी। राज्य में युवती कन्याओं के अपहरण के समाचार वह प्राय: सुना करती थी। परन्तु राज्य पुरोहित की कन्या होने के कारण वह अपने को मुक्त समझती थी। महेशानन्द शास्त्री का दरबार में बड़ा मान था। राजा उनके चरणों पर मस्तक रखता था। उन्हीं की कन्या को कुदृष्टि से वह कैसे देख सकता था? ऐसे तर्क थे जो भुवनमोहिनी के मन में प्राय: उठा करते थे और इसीलिए वह इस ओर से बड़ी असावधान थी।

जिस दिन की यह घटना है, भुवनमोहिनी अपने पिता के नए बनवाए हुए बँगले के द्वार पर खड़ी थी। इस बँगले का नाम महेशानन्द ने शिवलोक रक्खा था। यह इसलिए कि शिव के वे बड़े भक्त थे। उनका अधिकांश समय भगवान शंकर की

आराधना में ही व्यतीत होता था। उन्होंने अपनी प्यारी पुत्री को यह आज्ञा दी थी कि वह प्रतिदिन सायंकाल भगवान शंकर की आरती में अवश्य शामिल हुआ करे।

भगवान शंकर की यह मूर्ति, उनका मन्दिर और मन्दिर के गिर्द जो बस्ती बस गई थी वह सब जगह बीहड़ेश्वर के नाम से विख्यात थी। राज्य में प्राचीन काल से यह कथा चली आ रही थी कि बीहड़ राज्य के असली शासक महादेव बीहड़ेश्वर ही हैं। राजा तो उनके प्रतिनिधि मात्र हैं। इसलिए बीहड़ेश्वर महादेव की राज्य में बड़ी प्रतिष्ठा थी। रोज ही संध्या समय उनके मन्दिर के गिर्द मेला लग जाता था। खास खास पर्वों पर, जैसे शिवरात्रि वग़ैरह के दिन, तो यह भीड़ बहुत ही बढ़ जाती थी और कई कई दिन बनी रहती थी।

भुवनमोहिनी बीहड़ेश्वर महादेव के इसी मन्दिर में जाने के लिए तैयार होकर अपने शिवलोक के बाहर आई थी। और अपने पिता की मोटरकार की प्रतीक्षा में खड़ी थी। ड्राइवर को यह कड़ी आज्ञा थी कि वह चाहे जहाँ रहे बीहड़ेश्वर की आरती के समय शिवलोक के फाटक पर मोटरकार के साथ अवश्य पहुँच जाय और भुवनमोहिनी को मन्दिर तक पहुँचाए।

आज वक्त हो गया था और ड्राइवर मोटर लेकर नहीं आया था। भुवनमोहिनी पल-पल पर पीली पड़ती हुई रवि किरणों को देख कर अकुला रही थी। मन्दिर कोई तीन मील दूर, दो पहाड़ियों के बीच, एक तंग घाटी में था। अगर वह दौड़ती हुई भी जाती तो भी समय पर नहीं पहुँच सकती थी। अब वह क्या करे? भगवान बीहड़ेश्वर की आरती में कैसे पहुँचे? क्या अच्छा होता कि उसके पर होते और वह तुरन्त उड़कर पहुँच जाती।

वह फाटक के बाहर निकल कर सड़क के बीचोबीच में आकर खड़ी हो गई थी और अपने मन को आँख और कान पर केन्द्रित

करके दूर तक की चीज़ देखने और आहट सुनने का प्रयत्न कर रही थी।

यह बँगला बहुत एकान्त में था। इसके पास ही पास और भी कई नए बँगले सड़क के दोनों ओर थे। सबों ने काफ़ी जगह घेर रक्खी थी और उनके निवासी सड़क से बहुत दूर थे। इस प्रकार खासा सन्नाटा छाया हुआ था। वसन्त ऋतु का आगमन हो रहा था। जौ गेहूँ के खेत दूर पर पके हुए से खड़े थे। उनके बीच से सड़क बलखाती हुई बीहड़ के पहाड़ी इलाके की तरफ़ चली गई थी। इस हिस्से की हरियाली वसन्त ऋतु के आगमन से विविध पुष्पों के रूप में मुस्करा उठी थी और भुवनमोहिनी के यौवन से होड़ सी कर रही थी। पुष्पों की भीनी भीनी मदमाती सुगन्ध आ रही थी और कोयल बीच बीच में पंचम स्वर से कूक कर उस समस्त स्थल को और भी अधिक मादक बना रही थी। भुवनमोहिनी को जान पड़ा, जैसे प्रेम का देवता उस हरियाली के वेष में पृथ्वी पर उतर आया हो और उसको देखकर मुस्करा उठा हो। तो क्या ये कोयल के स्वर उसी के तीर हैं, जो भुवनमोहिनी का हृदय वेधने के लिए अनायास उसकी ओर चले आ रहे हैं।

वह भगवान शंकर को भूल गई। उसे अपने प्यारे प्रियतम मदनगोपाल का ध्यान हो आया। यह उसी की बिरादरी का सम्पन्न युवक था। हाल ही में विलायत से बैरिस्टरी पास करके लौटा था। इसी युवक के साथ भुवनमोहिनी का विवाह होनेवाला था। सब बातें तै हो गई थीं। दोनों ने एक दूसरे को देख लिया था और प्रथम दर्शन के साथ ही वे एक दूसरे पर मुग्ध हो गए थे।

इतने दिनों तक अचूक सेवा करने के कारण ही शायद भगवान बीहड़ेश्वर ने उसे ऐसा स्वरूपवान और सर्वगुण सम्पन्न वर दिया था। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसने पश्चिम में झुके हुए सूर्य के साथ बीहड़ेश्वर के मन्दिर की ओर

मुँह फेर कर उनको प्रणाम किया और फिर अपने ध्यान में तल्लीन हो गई।

उसने उन मधुर दिनों की कल्पना की जब वह इस बलखाती हुई सड़क पर इस मदमाती हरियाली के बीच से मोटर दौड़ती हुई निकलेगी और उसके कन्धों पर उसके प्रियतम का दलिष्ट कर होगा। तब यह सुनसान स्थल कितना प्यारा होगा। तब ये गेहूँ और जौ के पके खेत कितने सुहाने दिखेंगे और तब कोयल के स्वर के ये तीर उन दोनों के हृदयों को एक साथ वेध कर उन्हें कितना करीब कर देंगे।

एकाएक उसके कानों में उसी हरियाली की ओर से एक मोटर के आने की आहट सुनाई पड़ी। उसने सोचा, इसी तरह एक वह दिन भी होगा जब वह अपने प्रिययम की प्रतीक्षा में शिवलोक के द्वार पर खड़ी होगी और वे, बिना बहुत प्रतीक्षा कराए, उससे आ मिलेंगे। वह और भी पुलकित हो उठी और उसके रोम-रोम सिहर उठे। उसने एक बार फिर मन ही मन बीहड़ेश्वर महादेव को प्रणाम किया।

उसका यह स्वप्न तब टूटा जब यह मोटर ठीक उसकी बगल में आकर खड़ी हो गई। मोटर उसकी पहचानी हुई थी। उसके पिता की ही थी। पर ड्राइवर की जगह एक अपरिचित युवक बैठा था। अपनी जगह से ही बैठे बैठे उसने एक विचित्र अवि-श्वास के स्वर में कहा—"बैठिए।"

"तुम कौन हो?" भुवनमोहिनी ने प्रश्न किया।

"मैं आपके ड्राइवर का मित्र हूँ। उसके पेट में सख्त दर्द है। इसलिए स्वयं न आकर उसने मुझे भेज दिया है।"

एक अपरिचित ड्राइवर के साथ बीहड़ेश्वर जाने का साहस भुवनमोहिनी न कर सकी। वह जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई और

बोली—"ऐसा तो कभी नहीं होता था। अभी घंटा भर पहले वह बिल्कुल चंगा यहाँ से गया था।"

"आप बैठें भी तो?" ड्राइवर ने आज्ञा के स्वर में कहा।

"नहीं, तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी।" भुवनमोहिनी अपने बँगले के द्वार की ओर घूम पड़ी।

उसी क्षण ड्राइवर तेजी से उसके पास पहुँचा और उसको अपनी बाहों में आबद्ध करके उसे बलपूर्वक मोटर की ओर लाने लगा। पास की झाड़ियों के झुरमुट से दो हथियार बन्द तगड़े पुरुष और निकल पड़े और उस ड्राइवर की सहायता करने लगे।

भुवनमोहिनी बड़ी ज़ोर से चीख उठी। उसके साथ ही उसके मुँह पर एक पुरुष का बलिष्ठ करतल पड़ा और उसकी चीत्कार मुँह के अन्दर ही रह गई। जाल में फँसी चिड़िया जैसे फड़फड़ा कर अन्त में शान्त हो जाती है, वैसे ही भुवनमोहिनी भी विवश सी होकर अन्त में शान्त हो गई।

अब वह दो राक्षस जैसे पुरुषों के बीच में उसी मोटरकार पर पीछे की सीट पर बैठी थी और ड्राइवर उसे तेजी से भगाए लिए जा रहा था। समुद्र में जैसे रह रह कर लहरें उठती हैं, वैसे ही बीच-बीच में वह इधर या उधर कार से कूदने की चेष्टा करती थी। परन्तु वे दोनों व्यक्ति उसे बेबस कर देते थे।

अब उसे मालूम हुआ कि यह बीहड़ राज्य है। यहाँ किसी युवती की लज्जा खतरे से बाहर नहीं है। वह राजपुरोहित की कन्या ही क्यों न हो? हाय! वह इतनी असावधान क्यों थी? पर अब क्या हो सकता था। उसने आँखें बन्द कर लीं और उसकी पलकों पर भीषण अन्धकार बैठ गया। उसके मुख पर जो क्षण भर पहले अत्यन्त प्रफुल्लित था, मृत्यु की सी उदासी स्पष्ट हो उठी। उसने कल्पना किया कि वह मर गई है।

२

जिस दिन की यह बात है, उसी दिन एक और विचित्र घटना घटी। एक हफ़्ता पहले बीहड़ में एक सरकस कम्पनी आई हुई थी। उसने दो खेल दिखाए थे और तीसरा खेल उसी दिन रात को होने वाला था। परन्तु किसी बात को लेकर सरकस कम्पनी में और राज्य के कर्मचारियों में मतभेद हो गया था और नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि कम्पनी को बिना खेल दिखाए ही डेरा कूच करना पड़ा।

भुवनमोहिनी को लिए हुए उसके अपहरणकर्ता जिस समय बाज़ार के बीच में पहुँचे, सामने से सरकस वालों का काफ़िला आता दिखाई पड़ा। घोड़े, हाथी, ऊँट, बकरे, शेर, भालू, बन्दर, विवधि चिड़ियाँ। कोई कठहरे की बन्द गाड़ी में, कोई पैदल, कोई ऊँटों पर चले आ रहे थे। सड़क यों ही तंग थी, इस सरकस के काफ़िले से बिल्कुल घिर सी गई थी। भुवनमोहिनी के अपहरण-कर्ताओं के लिए इन लोगों के बीच से उसी तेज़ी से मोटर निकाल ले जाना सम्भव न था। ड्राइवर ने तेज़ी से हार्न देना शुरू किया। काफ़िले पर इसका समुचित असर हुआ। कम्पनी के नौकर चाकर उस तेज़ी से आती हुई मोटर को मार्ग देने के लिए प्रयत्नशील हो उठे। परन्तु उनको कुछ देर तो लग ही गई और ड्राइवर को कार की गति कम करनी पड़ी।

उसने पीछे घूम कर अपने साथियों की ओर देखा और कहा—मैंने पहले ही कहा था कि बाजार के बीच से निकलना ठीक न होगा। ये शैतान सरकस वाले भी इसी समय न जाने कहाँ से आ मरे।

उन दोनों में से एक बोला—कोई परवा नहीं, बढ़े चलो। एक आध को कुचल जाने दो।

"सो तो ठीक है। लेकिन कितनों को कुचला जायगा।"

इस बातचीत से भुवनमोहिनी को यह ज्ञात हो गया कि अब वह बाज़ार के बीच में है और मोटर के आगे बढ़ने में कुछ बाधाएँ हैं। सहायता पाने की आशा से उसने आँखें खोल दीं। सबसे पहले उसे ऊँट पर बैठी हुई वह सुन्दरी दिखाई पड़ी जो इस सरकस कम्पनी की जान थी। दूसरे दिन का सरकस भुवनमोहिनी ने देखा था। इस युवती की फुर्ती पर वह मुग्ध थी। उसके सामने वह दृश्य नाच गया जब वह तेज़ी से दौड़ते हुए घोड़ों पर चढ़ती-उतरती थी। घोड़े से हाथी पर और हाथी से ऊँट पर जा पहुँचती थी और ऊँट की गरदन पर खड़ी होकर दर्शकों का अभिवादन करती थी।

आह! यदि भुवनमोहिनी में भी ऐसी ही फुर्ती होती। उसके शरीर में अनायास बिजली सी गति पैदा हो गई। तेज़ आँधी में जैसे वृक्ष जड़ से उखड़ जाने को प्रयत्नशील होता है वैसे ही वह अपने हृदय के तूफान का बल पाकर कार से बाहर लुढ़क पड़ने के लिए सचेष्ट हो उठी। उसकी यह गति सामने से आती हुई ऊँट पर बैठी हुई उस सरकस सुन्दरी ने भी देखी। उसे जान पड़ा, जैसे भुवनमोहिनी उससे कह रही हो—बहन, बचाओ। मेरी रक्षा करो।

वह बड़ी ही भावुक युवती थी। उसी क्षण उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। एक ख़तरे से निकल चुकने के बाद वह दूसरे ख़तरे में पैर रखने को तैयार हो गई।

इस राज्य के शासक के प्रति, उसके कर्मचारियों के प्रति, राज्य के कण कण के प्रति उसके हृदय में पहले ही से अपूर्व घृणा उत्पन्न हो गई थी। परन्तु उस घृणा को उसने व्यक्त नहीं किया था।

वह चुपचाप सब सहन करके राज्य से चली जाना चाहती थी। वह असहाय थी, उसके संगी साथी सब असहाय थे। परन्तु सामने का दृश्य देख कर उसका हृदय बेकाबू हो गया। क्षण भर पहले जो अपमानित और पराजित हो कर राज्य से बाहर निकल रही थी, उसी में अब इतना बल पैदा हो गया कि वह यह दिखाने को उद्यत हो गई कि वह बदला लेना भी जानती है।

ड्राइवर ने अपने पीछे के साथियों की ओर इशारा करके कहा—"यार ! ज़रा सामने देखो। गज़ब की सुन्दरी है वह सरकस वाली।" भुवनमोहिनी की दाहिनी ओर जो बैठा था, उसने कहा—"जैसी सुन्दरी है वैसी ही नखरे वाली भी है। महाराज की मर्जी रख लेती तो एक लाख नक़द पाती। परन्तु इसने·········।"

उसी समय भुवनमोहनी ने उसकी ओर से मोटर से नीचे कूदने का प्रयत्न किया और भुवनमोहिनी के सिर का धक्का पाकर उसका सिर मोटर के एक बेढङ्गे भाग से भिच गया और वह आह करके रह गया।

ड्राइवर ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला ही था कि उसका इत्मीनान का वह स्वर भय की चीख़ में बदल गया।

यह मोटरकार अब सरकस वाली सुन्दरी के ऊँट के पास से निकल रही थी। और वह सुन्दरी ऊँट पर से मोटर पर ड्राइवर के बगल में कूद पड़ी थी। ऐसा भी हो सकता है, यह उस ड्राइवर की कल्पना के बाहर की बात थी। उसका यह कार्य्य इतनी फुर्ती से हुआ था कि ड्राइवर को कुछ सोचने का वक्त ही न मिला था। इधर उसके मुँह से चीख़ निकली, उधर उस सुन्दरी ने उस को ऐसा धक्का दिया कि वह अपनी चीख़ के साथ ही नीचे सड़क पर जा पड़ा।

सड़क के दोनों ओर के बीहड़ निवासियों ने जिन्हें उस

सरकस में जाने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था, एक अद्भुत दृश्य देखा। पीछे की सीट में बैठे हुए भुवनमोहिनी और उसकी अगल बगल में बैठे हुए उन दोनों विशाल काय पुरुषों ने भी इस दृश्य को देखा। प्राण और लज्जा बचने की आशा से भुवनमोहिनी की आँखें चमक उठीं। वह दूने बल के साथ उन दोनों व्यक्तियों की कैद से आगे की सीट पर जाने का प्रयत्न करने लगी।

इस बीच में सरकस वाली सुन्दरी ड्राइवर की सीट पर इत्मीनान से बैठ चुकी थी और अपनी ही मंडली की भीड़ के बीच से बचाती हुई मोटर चलाने लगी। पीछे के दोनों पुरुषों में से एक बोला—"आप हमको कहाँ ले जाना चाहती हैं।"

"जहन्नुम ! क्यों वह स्थान तुम्हारे उपयुक्त है न ?" युवती ने उसे रोष भरी दृष्टि से देखा।

उस व्यक्ति ने अपनी जेब से भरी हुई पिस्तौल निकाली और उस युवती की ओर लक्ष्य करके कहा—तुमको जहन्नुम भेज कर तब जाऊँगा।

वह अपनी पिस्तौल को लक्ष्य पर ठीक ला न सका था कि उस सरकस की फुर्तीली रमणी ने उसके हाथ पर पास ही रक्खे एक लोहे के टुकड़े से प्रहार किया। पिस्तौल उसके हाथ से छूट पड़ी और वह रुआसा हो उठा।

अब दूसरे व्यक्ति ने अपनी जेब में हाथ डाला। इसके साथ ही वह युवती उन दोनों पर झपटी। अपने दोनों हाथ उसने दोनों के गले पर जमा दिया और ज़ोर से दावना शुरू किया। दोनों का गला घुटने लगा और वे व्याकुल हो उठे। उसने आज्ञा के स्वर में कहा—जो कुछ हथियार तुम्हारे पास हों बाहर निकालो।

दोनों ने तत्काल उसकी आज्ञा का पालन किया। उनके शेर के से डरावने चेहरे भीगी बिल्लियों के दयनीय मुखड़ों में बदल गए। इस बीच में भुवनमोहिनी उनके चंगुल से निकल कर आगे

की सीट पर जा चुकी थी और भयभीता हरिणी सी यह काण्ड देख रही थी। अपनी दृढ़ चितवन से उसे धैर्य्य बँधाती हुई वह युवती बोली—बहन् मोटर चला सकती हो ?

"हाँ।"

"अच्छा ज़ोर से चलाओ। मैं इन बदमाशों को अभी नीचे फेंकती हूँ।"

भुवनमोहिनी ने ड्राइवर की जगह ली और मोटर पूरी स्पीड पर छोड़ दिया। वह युवती अब भी उन्हें उसी प्रकार दाबे हुए थी और उन दोनों को अपने दोनों हाथों से दोनों ओर की खिड़कियों की ओर ढकेल रही थी। उनका सारा विरोध समाप्त हो गया था और वे गिड़गिड़ा कर प्रार्थना कर रहे थे—मोटर रोक दो, हम उतर जायँगे।

"कसम खाओ कि आइन्दा ऐसी हरकत नहीं करेंगे।"

"नहीं करेंगे। बाप की कसम, बेटे की कसम !! नहीं करेंगे।"

युवती का इशारा पा कर भुवनमोहिनी ने कार रोक दी और वे दोनों चुपचाप उतर गए। उनकी पिस्तौलें अब उस अनोखी युवती के हाथ में थीं। और वह उनकी ओर पिस्तौलें ताने रही, जब तक कि वे उतर कर कुछ दूर चले नहीं गए।

उनके जाने के बाद वह युवती भी आगे की सीट पर आ बैठी और बोली—चलाओ।

भुवनमोहिनी ने निराशा भरे नेत्रों से उसकी ओर देखा। मानों वह पूछना चाहती थी कि अब किधर चलना है, और क्या वह अपने घर की ओर नहीं लौट सकती ? कार तो उसी की है। उसका कोई कसूर नहीं है !

युवती उसके मन का भाव ताड़ गई और स्नेह से उसके और निकट खिसकती हुई बोली—रियासत के क्रुद्ध कर्मचारियों

से तुम्हारा घर अब तुम्हें न बचा सकेगा। तुम्हारा रक्षक अब ईश्वर ही है।

भुवनमोहिनी की आँखों में आँसू आगए। वह बोली—लेकिन मैंने तो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा।

"रियासत के अन्दर रहकर रियासत के कर्मचारियों की मर्जी के खिलाफ़ काम करना सब से बड़ा अपराध है। चलाओ !"

भुवनमोहिनी फिर भी उसकी ओर देखती ही रही। वह युवती बोली—रियासतों का मुझे बहुत तजुर्बा है। शीघ्र ही रियासत के सारे कल पुर्जे हमें तुम्हें गिरफ़्तार करने के लिए सक्रिय हो उठेंगे। रक्षा का उपाय एक ही है। जितनी शीघ्र हो सके हम रियासत के बाहर निकल चलें, चलाओ।

भुवनमोहिनी ने मोटर को पूरी स्पीड पर छोड़ दिया। उसे सरकस वाली सुन्दरी के कथन में सचाई जान पड़ी।

अब वह मोटरकार खेत, गाँव, नदी, नाले, ऊँची नीची ज़मीनें और जंगल पार करती हुई तेजी से भगी जा रही थी और दोनों युवतियाँ चौकन्नी सी चारों ओर देखती अपने अंधकारमय भविष्य पर बिसूरती चली जा रही थीं।

एक छोटा सा ढाक का जंगल पार करने के बाद भुवनमोहिनी बोली—बहन मेरे साथ तुमने भी अपने को मुसीबत में डाल लिया। तुमसे मैं कैसे उऋण होऊँगी।

"जिस प्रभु ने तुम्हें मुसीबत में डाला है, उसी ने मुझे प्रेरित किया है कि मैं तुम्हारी सहायता करूँ। अगर कोई ऋण है तो उसी का। तुम्हारे ऊपर भी और मेरे ऊपर भी।"

"ठीक कहती हो।" भुवनमोहिनी ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा। फिर वह बोली—"अब क्या होगा ?"

"भविष्य में क्या होने वाला है ? इसको कौन जान सका है ?"

दोनों फिर चुप हो रहीं। कहीं पत्ती भी खड़कती थी तो वे

चौकन्नी हो उठती थीं। कुछ दूर और चलने पर भुवनमोहिनी ने कहा—"मुझे यह स्वीकार करते हुए लज्जा मालूम होती है कि मैं आप से परिचित नहीं हूँ। क्या आप कृपा पूर्वक मुझे अपना परिचय देंगी। मैं राज पुरोहित महेशानन्द शात्री की कन्या हूँ।

"महेशानन्द शात्री का मैंने नाम सुना है। वे तुम्हारे पिता हैं। तुम्हारा यह सौभाग्य है।

"परन्तु क्या अब भी वे मेरे पिता बने रह सकेंगे?"

"शायद···क्यों नहीं? तुम्हारे उदास मन को इस समय और उदास बनाना मैं नहीं चाहती। इस समय मेरा परिचय प्राप्त कर लो। मैं एक वेश्या की पुत्री हूँ। मुझे सिर्फ एक शिक्षा मिली है। अपने सौंदर्य से अपनी वेष-भूषा से, अपनी वाणी से और अपने शरीर से धनी पिपासित पुरुषों की वासना की अग्नि प्रज्वलित करना और उसमें अपने मन की, अपने प्राणों की, अपने उमङ्गों की, आहुति देना। जो मेरे शरीर के स्पर्श को स्वर्ग से भी अधिक पवित्र समझते हैं। वही मुझे इतना अपवित्र भी समझते हैं कि अपने अन्तःपुर की स्त्रियों से मुझे बात तक नहीं करने देते। मेरा समाज मेरी ही सी पतित स्त्रियों का है। कुल वधुओं से मिलने जुलने की मुझे आज्ञा नहीं, गंदा नाला गंगा की धारा में मिल सकता है लेकिन मैं शेष स्त्री समाज में नहीं मिल सकती। यही मेरा परिचय है। यही मेरी कहानी है। आज तुम्हारे स्पर्श से मैं पवित्र हो उठी हूँ। आज मैं कितनी सौभाग्यशालिनी हूँ।"

भुवनमोहिनी चुपाचप सब सुनती रही। रह रह कर उसे एक ही दुःख होता रहा कि ऐसी साहसी और परोपकारी महिला वेश्या के घर में क्यों पैदा हुई। और इस संकट से निवृत्त होने पर वह इसके साथ मैत्री कैसे कायम रख सकेगी। एक मुसीबत से छुटकारा पा जाने पर जितनी उसे प्रसन्नता हुई थी, इस

वेश्यापुत्री के इतने निकट सम्पर्क के कारण वह उतना ही दुःखी भी हो उठी। उसका यह दुःख एक दीर्घ निश्वास के रूप में व्यक्त हुआ। फिर उसने सोचा कि कहीं यह युवती भी तो उसके अपहरण के इस षड्यंत्र में शरीक नहीं है और वह सिहर उठी।

परन्तु इस मानसिक स्थिति में वह बहुत देर तक न रह सकी। पीछे सड़क पर दूर पर गर्द उड़ती जान पड़ी। यह गर्द क्रमशः उनकी ओर बढ़ रही थी। उस सरकस वाली युवती ने कहा—बहन मोटर रोक दो। आओ, कहीं छिपने की कोशिश करें।

उसने भुवनमोहिनी के अपहरण-कर्ताओं की कारतूसों की पेटी अपनी कमर से बाँधी और उनकी पिस्तौलें लेकर भुवन-मोहिनी को साथ लिए मोटर से उतर पड़ी और पास के घने वृक्षों में छिपने के लिए दौड़ी।

ऊबड़ खाबड़ जमीन और कँटीले रास्ते को पार करती हुई दोनों चुपके-चुपके दौड़ी जा रही थीं और क्रमशः उनके गिर्द जनकोलाहल बढ़ता जाता था। उन दोनों को गिरफ्तार करने के लिए वहाँ कितने ही पुलिस के सिपाही मोटर लारियों पर चढ़ कर आ पहुँचे थे और चारों तरफ़ से चले आ रहे थे।

दोनों एक खड्ड में छिपकर बैठ गईं। रात हो गई थी और आसमान में चन्द्रमा चमक उठा था। चाँदनी रात में चलते फिरते पुलिस के सिपाही उन्हें शिकार की तलाश में भेड़ियों से घूमते नज़र आ रहे थे। पेड़ों के नीचे की अंधेरी जगहों में उन्हें मशाल जलते नज़र आए। अब क्या हो? वे कहाँ जाएँ? रह रह कर उनके ही दिल की धड़कन उन्हें चौंका रही थी।

इस तरह रात भर यह खोज जारी रही और वे खामोश उस खड्ड में छिपी बैठी रहीं। सबेरे उनका सबसे बड़ा शत्रु बनकर सूर्य्य निकला और उनकी आशा निराशा में बदल गई।

अन्त में पुलिस के सिपाहियों ने उनका पता लगा ही लिया।

उनके अफ़सर ने सरकस वाली सुन्दरी को संबोधित करते हुए कहा—चपला ! हथियार रख दो और गिरफ्तार हो जाओ। इसी में कुशल है।

इसके जवाब में चपला (सरकसवाली सुन्दरी का यही नाम था) ने उस पर पिस्तौल दाग़ दी। पर वह दूर पर था। पिस्तौल की गोली वहाँ तक न पहुँच सकी।

वह हँसा और बोला—चपला ! तुम्हारा यह प्रयास व्यर्थ है।

भुवनमोहिनी ने कहा—बहन ! एक गोली मार कर मुझे समाप्त कर दो और उसके बाद तुम स्वयं……।

"ईश्वर में विश्वास रक्खो। धैर्य्य मत खोओ।" चपला ने उससे कहा।

इतने ही में पीछे से एक व्यक्ति ने आकर चपला के दोनों हाथों को पकड़ लिया। उसके बाद ही कई सिपाही आ पहुँचे।

जाल में फँसी मछली के समान उनकी कैद से छूटने का व्यर्थ प्रयास करती हुई दोनों स्त्रियाँ थोड़ी देर में थक कर शिथिल हो गईं। और वे लोग उन्हें मोटर लारी में लादकर विजयोन्मत्त से होकर राजधानी की ओर वापस लौटे।

३

बीहड़ का किला बहुत पुराना है। इसको कब किसने बनाया था इसका कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता। इतिहासकारों ने इसे अजेय लिखा है। यह एक पहाड़ी के समतल शिखर पर बना हुआ है। पहाड़ी के नीचे ही उसके पच्छिम की ओर बीहड़ नगर है। उत्तर और दक्खिन घने जंगल हैं और पूर्व की ओर

कृत्रिम झील है जो करीब आध मील चौड़ी और किले की लम्बाई के बराबर २ मील लम्बी है।

किले के अन्दर बाग, तालाब और खेत हैं और उनके गिर्द से एक सड़क वृत्ताकार चली गई है। यह सड़क किले के पच्छिम वाले फाटक से शुरू होती है और यहीं आकर समाप्त भी हो जाती है।

अँग्रेज़ों के भारत में आने से पहले तक यह किला बीहड़ के वीर सैनिकों का अड्डा था परन्तु आजकल यह बीहड़ के महाराजा विष्णुदेवसिंह का विलास भवन बना हुआ है। उनका अधिकांश समय इसी किले में आमोद प्रमोद में व्यतीत होता है। उनका सिर्फ़ एक ही विश्वास है, वह यह कि राजा आनन्द करने के लिए बना है और प्रजा उसके आनन्द की सामग्री जुटाने के लिए। वे स्वेच्छाचारिता के औतार हैं। बीहड़ के अन्दर उनकी इच्छा ही क़ानून है। उनके दीवान और राज्य के उच्च कर्मचारी उन्हें कभी मुनासिब सलाह नहीं देते। वे अपनी ओर से यही कोशिश करते रहते हैं कि महाराजा रासरंग में पड़े रहें, नशेबाज़ी में लिप्त रहें।

इस किले में दुनिया भर से सुन्दरियाँ ढूँढ़ ढूँढ़ कर लाई जाती हैं और नशे से चूर महाराजा विष्णुदेवसिंह के हाथों का खिलौना बनने के लिए मजबूर की जाती हैं। बीहड़ राज्य के भीतर की स्त्रियाँ बलपूर्वक पकड़ ली जाती हैं और राज्य के बाहर की बहका कर या लालच देकर लाई जाती हैं। ये स्त्रियाँ एक या दो दिन महाराजा की वासना की आँच में झुलसने के बाद जहाँ से लाई जाती हैं वहीं पहुँचा दी जाती हैं और उसके बाद राज्य कर्मचारियों को जो जैसा प्रसन्न कर सकीं उसी के अनुसार उन्हें पेंसनें बाँध दी जाती हैं या जागीरें बख़्श दी जाती हैं। जिनके घरों की स्त्रियाँ इस ज़ुल्म का शिकार होती हैं और वे भी चुपचाप इस ज़ुल्म को सह लेते हैं, उन्हें दरबार में आदर

के साथ बैठने को जगह मिलती है और वे सबसे बड़े राज्य भक्त समझे जाते हैं।

भुवनमोहिनी और चपला इसी किले के अन्दर लाई गईं। और किले के पूर्वी भाग में बने एक महल में कैद कर दी गईं। लेकिन उनके साथ शाही कैदियों का सा व्यवहार हुआ। महल के अन्दर, स्नानागार, शयनागार, बैठक, रसोईघर सभी अलग अलग थे और दास दासियाँ प्रचुर संख्या में विद्यमान थीं। उन सब ने इन दोनों युवतियों का अभिवादन किया और इस प्रयत्न में लग गए कि वे कोई इच्छा प्रकट करें और उसके अनुसार तत्काल काम शुरू हो जाय।

बैठक में चपला एक कोच पर बैठ गई और भुवनमोहिनी को हाथ खींच कर अपने पास बैठाती हुई बोली—बहन धैर्य्य धारण करो। इस राजा का पाप-घट अब मुँह तक भर आया है, इसकी स्वेच्छाचारिता सीमा को पार कर गई है। बैठो। किंकर्तव्य विमूढ़ बने रहने से काम न चलेगा। बैठो! हम तुम दोनों एक साथ यहाँ प्रतिज्ञा करें कि हम इस स्वेच्छारिता को निर्मूल कर के ही दम लेंगी।

साहस की कमी उसमें होती है जिसमें अपने प्राणों का मोह होता है और जिसके सामने कोई कर्तव्य नहीं होता। भुवनमोहिनी अपना प्राण देने पर पहले ही उतारू हो चुकी थी और यह एक सुन्दर कर्तव्य था जिसकी ओर चपला ने संकेत किया था। उसे एक नया प्रकाश दिखाई पड़ा। उसके रोम रोम में अन्याय के प्रति रोष के साथ अन्याय का अन्त करने के लिए लड़ने की एक नई उमङ्ग दौड़ गई।

चपला के पास वह बैठ गई और चपला के मुँह से निकले इस अंतिम वाक्य को उसने दुहराया—हम इस स्वेच्छाचारिता को निर्मूल करके ही दम लेंगी।

अभी तक उन दास दासियों को सिर्फ भयत्रस्त स्त्रियों से काम पड़ा था। समझा बुझा कर उन्हें वातावरण के अनुकूल बना लेने में उन्हें विशेष कठिनाई न पड़ती थी। परन्तु इन युवतियों को धैर्य्य से इस प्रकार राजा के विरुद्ध बातें करते देख वे आश्चर्य्य-चकित रह गईं।

इसी समय उन्हें पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह के आने की सूचना दी गई। फाटक पर चिक डाल दी गई और कप्तान साहब बरामदे में रक्खी एक कोच पर चिक के बाहर बैठे। उन्होंने वहीं से बैठे बैठे इन युवतियों को राज्य का आदेश सुनाना चाहा। चपला भुवनमोहिनी को लिए हुए चिक के बाहर निकल आई और दाँत पीस कर क्रुद्ध सिंहनी सी बोली—अबला के हाड़-माँस के शरीर पर अपने पशु बल से तुम अधिकार कर सकते हो परन्तु उसकी आत्मा अजेय है, यह याद रक्खो। और एक दिन वह आ सकता है जब तुम्हें इस अनाचार की सजा भुगतनी पड़ेगी।

कप्तान रिपुदमन सिंह ने खड़े होकर पहले उन युवतियों का अभिवादन किया। उसके बाद मुस्कराते हुए बोले—इस तरह की बातें सुनने का मैं आदी हूँ। जो कुछ भी तुम कहना चाहो वह सब सुनने के लिए मैं तैयार हूँ। उसके बाद मैं तुम्हें राजाज्ञा सुनाकर चला जाऊँगा।

"मैं नहीं जानती थी कि आप बेहयाई की इस सीमा तक पहुँच चुके हैं कि आप पर बात का असर ही नहीं होता। खैर, सुनाइए अपनी राजाज्ञा।"

पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह न्यायाधीश के से स्वर में बोले—चपला, तुमने राज्य के कर्मचारियों के कार्य्य में विघ्न उपस्थित किया है। इसलिए तुम्हारे ऊपर मुकदमा चलाया जायगा। तुम अपने मामले की पैरवी करने के लिए राज्य से या बाहर से कोई वकील करना चाहो तो तुम्हें अख्तियार है। तुम

ऐसा कर सकती हो। जिस किसी के पास भी तुम इस क़िस्म का संदेशा भेजना चाहो, राज्य की ओर से भेज दिया जायगा।"

"हूँ! और इनका क्या अपराध है?" चपला ने भुवनमोहिनी की ओर संकेत करते हुए कहा।

"इनका अपराध तुमसे भी बड़ा है। इन्होंने अपनी राज्य-भक्ति का इज़हार अपने काम से नहीं दिया। परन्तु आयु का ख़याल करते हुए इन्हें अभी सोचने का मौका दिया जायगा। यदि इन्होंने महाराज की मरजी रख ली तो ये बन्धन मुक्त ही न कर दी जायँगी, इन्हें मुँह माँगा पुरस्कार भी मिलेगा।"

चपला उबल पड़ी। "हूँ!" उसने यह न सोचा कि वह कहाँ है। उसने क्रोधावेश में अपनी चप्पल उतार कर कप्तान साहब के मुँह पर तड़ाक से जमा दिया।

कप्तान साहब तिलमिला उठे। क्रोध से उनका होठ फड़फड़ा उठा। भुवनमोहिनी ने तत्काल ही दौड़कर चपला का हाथ पकड़ लिया और उससे कहा—"बहन! इन्हें माफ़ कर। ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। ये अन्याय की मशीन के एक पुर्ज़े मात्र हैं। जब तक सारी मशीन का विनाश नहीं किया जाता, पुर्ज़े पर रोष प्रकट करने से क्या हो सकता है।"

भुवनमोहिनी चपला को उस कमरे के भीतर खैंच ले गई। कप्तान साहब बरामदे में टहलने लगे और ज़ोर ज़ोर से कहने लगे—वेश्या की पुत्री। ख़ुद तो इसकी कोई इज्ज़त है नहीं। दूसरों की इज्ज़त भी मिट्टी में मिलाना चाहती है। यह गुमान छोड़ दे कि तू रियासत के बाहर की है। तेरा कोई कुछ न कर सकेगा। चाहे रियासत मिट जाय मगर तुझे अपने जूतों पर नाक रगड़वा कर न छोड़ूँ तो मेरा नाम रिपुदमन सिंह नहीं।

"यह तो वक्त बताएगा कि कौन किसके जूते पर नाक रगड़ता है।" चपला ने भीतर से गरजते हुए कहा।

कप्तान साहब अपने क्रोध को सँभाल न सके। जेब से पिस्तौल निकाल कर वे कमरे के द्वार तक आए और बोले—बस, अब एक शब्द भी मुँह से निकला कि मैंने गोली दाग़ दी। ख़बरदार।

चपला एक बार फिर कमरे के बाहर निकल आई और क्रुद्ध सर्पिणी सी फुफकारती हुई बोली—हाजिर हूँ। उस कुत्ते के लिये, जिसे तू राजा कहता है, स्त्री का मांस चाहिए। मेरा यह मृतक शरीर उसके हवाले कर देना और उसको यह बता देना कि स्त्री की आत्मा माफ़ भी करना जानती है और बदला लेना भी। एक बार मैं उसे सुधरने का मौका दूँगी।

"बस, अब बहुत नहीं सुन सकता।" कप्तान साहब ने पिस्तौल उसके सीने पर लगा दी और वे पिस्तौल दाग़ ही देते यदि भुवनमोहनी फुर्ती से दोनों के बीच में न आ जाती। भुवनमोहिनी ने कहा—कप्तान साहब, गोली मुझ पर चलाइए। वास्तविक अपराधिनी मैं हूँ। और मैं आप को माफ़ कर दूँगी क्योंकि मैं जानती हूँ कि आप जो कुछ कर रहे हैं, बिना सोचे समझे कर रहे हैं।

कप्तान साहब ने हाथ पकड़ कर भुवनमोहिनी को एक ओर हटा दिया और अपनी पिस्तौल को चपला के बाएँ स्तन पर गड़ाते हुए अत्यन्त क्रोध के स्वर में कहा—बोल! क्या चाहती है?

"तेरी मौत!"

चपला ने इतनी फुर्ती से पिस्तौल पुलिस कप्तान के हाथ से छीनी कि देखने वाले दंग रह गए। भुवनमोहिनी हाँ! हाँ! करती ही रह गई और चपला ने पिस्तौल दाग़ दी।

अब पुलिस कप्तान का शरीर बरामदे के फ़र्श पर पड़ा छटपटा रहा था और उससे गर्म ख़ून का फ़ौव्वारा छूट रहा था।

दास दासियाँ सब हाय हाय करने लगे। क़िले के अन्दर राज का एक प्रधान कर्मचारी इस प्रकार घायल किया जायगा इसका किसी को स्वप्न में भी अनुमान नहीं था। पिस्तौल दगने

की आवाज़ ने पुलिस के सिपाहियों, जो कप्तान के साथ आए थे और उनके दफ़तर में बैठे थे, का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया और वे उस ओर दौड़ पड़े। तुरन्त ही किले के उस हिस्से में ख़बर पहुँची जहाँ महाराज के अङ्गरक्षक चुने हुए सैनिक रहते थे। लेफ़्ट-राइट की आवाज़ें आने लगीं और उनकी टुकड़ी जैसे किसी दुश्मन का मुकाबला करने जा रही हो, इस ओर बढ़ी।

इस बीच में चपला पुलिस कप्तान की कारतूसों वाली पेटी उनके रक्त रंजित शरीर से उतार कर स्वयं धारण कर चुकी थी और चंडी के समान उनका मुकाबला करने को तैयार हो उठी थी।

किले के अन्दर राजकीय अस्पताल की भी एक शाखा थी। सौभाग्य से प्रधान डाक्टर भी वहाँ उपस्थित थे। वे सब दौड़ते हुए आए और कप्तान साहब का प्राण बचाने की चेष्टाएँ होने लगीं।

भुवनमोहनी ने चपला के निकट जा कर कहा—बहन! यह काम तुमने अच्छा नहीं किया। इसमें अपराध व्यक्ति का नहीं, व्यवस्था का है।

चपला ने अपने बाएँ हाथ से भुवनमोहिनी को अपने पास खींचते हुए कहा—पगली, यह शास्त्रीय विवाद का अवसर नहीं है। यदि ईश्वर ने हमें इन भेड़ियों की माँद से निकल भागने का अवसर दिया तो मैं तेरे इस तर्क को सुनूँगी। इस समय तू चुप-चाप वही कर जो मैं तुझसे कहूँ। इनके हाथों में जीवित पड़ जाने से हमारी बहुत दुर्गति होगी। इसलिए जब और कोई उपाय न होगा, मैं तुझे मार कर स्वयं मर जाऊँगी। मेरा साथ मत छोड़।

चपला अपने दाहिने हाथ में पिस्तौल लिए हुए थी। बाएँ हाथ से भुवनमोहिनी को आबद्ध किए हुए थी और चारों ओर चौकन्नी हो कर देखते हुए धीरे धीरे कभी पीछे और कभी बाँईं ओर हट रही थी।

महाराजा साहब इस समय सो रहे थे। उलूक की भाँति

उन्होंने दिन को व्यर्थ समझा था। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी और दीवान को टेलीफ़ोन से ख़बर दी गई। ये दोनों सज्जन अपनी अपनी दगदगाती हुई कारों पर नीचे शहर से तत्काल ही वहाँ आ पहुँचे। पुलिस के डिप्टी कप्तान को ख़बर हुई और वे भी आए।

पिस्तौल की मार से दूर सैनिक उन दोनों युवतियों को घेरे हुए खड़े थे। और हरी दूब के प्राकृतिक कालीन पर खड़े राज्य के प्रधान कर्मचारी आपस में मंत्रणा कर रहे थे कि क्या करना चाहिए। बीच-बीच में वे उन दोनों युवतियों की ओर देखते भी जाते थे। उनके अद्‌भुत साहस का उनके ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ रहा था। अब तक जितनी भी स्त्रियों को फँसा कर वे लाते थे वे तत्काल आत्म समर्पण कर देती थीं। इसलिए उन प्रधान राज्य कर्मचारियों की यह धारणा हो चली थी कि स्त्री में साहस और चरित्र नाम की कोई वस्तु नहीं है। परन्तु आज उन्हें उलटा अनुभव हो रहा था। वास्तव में इसी प्रकार के व्यवहार की वे प्रत्येक स्त्री से आशा रखते थे। आखिर थे तो वे पुरुष ही!

भुवनमोहिनी चपला की बाँह में आबद्ध कल्पना कर रही थी कि मानों चपला का वेष धारण कर उसका प्रियतम उसको इस कैद से निकालने के लिए वैसे ही आया हो जैसे राम लंका में पहुँचे थे। आह! यदि चपला सचमुच पुरुष होती! यदि भुवनमोहिनी को उसकी प्रियतमा बनने का सौभाग्य प्राप्त होता!

इस मंत्रणा में दिन कब बीत गया इसका उन राज्य कर्मचारियों को पता ही न चला। सूर्य से जैसे उन स्त्रियों की बेबसी देखी न गई और उसने जल्दी ही अपना मुँह छिपा लिया। और निशा ने जैसे तत्काल आकर उनकी लज्जा रखने के लिए उनके गिर्द अंधकार का एक काला पर्दा डाल दिया।

इस समय तक चपला और भुवनमोहिनी दोनों एक बुर्ज पर पहुँच चुकी थीं। आसमान में तारे जगमगा उठे थे और उनकी

उज्वल आभा बुर्ज के नीचे की गम्भीर झील में झलमला रही थी। किले के अन्दर बिजली की वत्तियाँ अपनी आँखें फाड़ कर जैसे देख रही थीं कि अन्धकार के बाहर क्या है? महाराजा विष्णुदेव सिंह के जगने का समय ज्यों ज्यों निकट आ रहा था, किले के अन्दर की चहल-पहल दौड़-धूप बढ़ रही थी। इन युवतियों के गिर्द सैनिकों का पहरा चौगुना कर दिया गया था। निश्चय यह हुआ था कि उनको जीवित गिरफ़्तार किया जाय।

चपला ने अर्थ भरी दृष्टि से बुर्ज के नीचे की झील की ओर देखा और भुवनमोहिनी से कहा—बहन, तुम्हें इसी तरह लिए हुए झील में कूदने का मेरा इरादा है। बचपन में मैं इसी तरह कभी अकेले और कभी अपनी सहेलियों को पकड़े हुए कुएँ में कूद जाती थी और फिर बाहर निकाल ली जाती थी। इस तरह का अभ्यास छोड़े मुझे कई साल हो गए परन्तु इसकी कला तो मुझे मालूम ही है। अब तुम झील की तरफ़ मुँह करो।

चपला के आदेशानुसार भुवनमोहिनी पूर्व की ओर घूम गई। आसमान में जितनी ऊँचाई पर तारे थे उतने ही नीचे यह झील जान पड़ती थी। भुवनमोहिनी को जान पड़ा जैसे अनन्त आकाश की तरह उसका भी कहीं अन्त न हो। शायद लोग जिसे मृत्यु-लोक कहते हैं वह यही है। उसका दिल ज़ोर ज़ोर से धड़क रहा था। भय से नहीं, इस नए लोक में शीघ्र से शीघ्र पहुँच जाने के लिए।

चपला ने कहा—जैसे खड़ी हो ऐसे ही खड़ी रहना। पैर को झुकने मत देना। हाथों को तब तक मत फैलाना जब तक पानी स्पर्श न कर लो। जब मैं एक कहूँ, सीधी तन जाना, जब मैं दो कहूँ, साँस भीतर खींच लेना, जब मैं तीन कहूँ अपने बदन को हलका छोड़ देना।

"बहुत अच्छा।"

चपला ने कहा—एक। भुवनमोहिनी तन गई। फिर उसने कहा—दो। भुवनमोहिनी ने अपनी साँस खींच ली। फिर उसने कहा—तीन। भुवनमोहिनी बिलकुल फूल की तरह हलकी हो गई।

चपला ने कहा—शाबास! अच्छा अब इसी तरह फिर करो।

उसने फिर एक, दो, तीन कहा और भुवनमोहिनी ने उसके आदेशानुसार अपने शरीर को ताना, साँस खींचा और बदन को हलका कर लिया।

परन्तु इस बार चपला के मुँह से तीन निकलने के बाद ही नीचे ज़ोर का छपाक का शब्द हुआ। जैसे मेनका शकुन्तला को आकाशलोक में उड़ा ले गई थी वैसे ही चपला भुवनमोहिनी को लिए हुए पाताल लोक में समा गई। उस समय भुवनमोहिनी को ऐसा ही जान पड़ा।

संतरी फौरन ही उस बुर्ज पर पहुँचे जहाँ वे युवतियाँ खड़ी थीं। दीवान साहब ने वहाँ पहुँचकर कहा—आख़िर वही हुआ न जिसका मुझे अंदेशा था। पर ख़ैर, नीचे नावें तैयार हैं और मल्लाह सजग हैं। वे कहाँ जा सकती है?

४

किले के नीचे की झील में सैकड़ों नावें छूट गईं। कितनी ही नावों में छोटी छोटी लालटेनें थीं और कितनों ही में गैस के बड़े बड़े हण्डे जल रहे थे। बुर्ज़ के नीचे जहाँ वे युवतियाँ कूदी थीं, वहाँ से लेकर झील के दूसरे किनारे तक नावें ही नावें दिखलाई पड़ती थीं। गैस की रोशनी में नावों की चाल से उठने वाली पानी की छोटी छोटी लहरें तक गिनी जा सकती थीं।

लेकिन उन युवतियों का कहीं पता नहीं चलता था। कहीं से भी पानी में छप छप की आवाज़ किसी किस्म की आहट, या आह या कराह कुछ भी नहीं आती थी। तो क्या वे अपने बदन को पत्थर से बाँध कर कूदी थीं कि जहाँ कूदी थीं वहीं समा गईं।

पानी की सतह पर तो छान-बीन हो सकती थी लेकिन रात्रि के अन्धकार में गैस का प्रकाश इतना काफी नहीं था कि पानी कि गहराई में भी जाँच की जा सकती। बड़े बड़े गोताखोर, जो अपनी कला का परिचय देकर पुरस्कार पाने की इच्छा से वहाँ पहुँचे थे, अपने आपको बेकार पाते थे। अब क्या हो? उन युवतियों का पता कैसे और किस प्रकार लगे?

चपला ने एक बुद्धिमानी की थी। पानी में कूदने के बाद जैसा कि इन लोगों का ख्याल था वह झील के उस पार नहीं गई थी। बल्कि वह भुवनमोहिनी को लिए हुए स्वयं किले की दीवाल से सीधे उत्तर की ओर तैर रही थी। झील के अन्दर नावों के छूटने से पहले ही वह आगे बढ़ गई थी, और इस घेरे से दूर निकल चुकी थी। वह अब भी किले के किनारे ही किनारे तैर रही थी। इसमें संदेह नहीं, कि इस प्रकार उन्हें काफी दूर तक तैरना पड़ा लेकिन बन्धन से मुक्त होने का यही उपाय कारगर सिद्ध हुआ। भुवनमोहिनी थोड़ा तैरना जानती थी इसलिए चपला को उसे साथ लेकर तैरने में बड़ी आसानी हुई।

बुर्ज से भी चपला ने इस सफाई के साथ भुवनमोहिनी को कुदाया था कि भुवनमोहिनी को कोई चोट नहीं पहुँची थी। उसके दिल और दिमाग़ पर किसी किस्म का धक्का भी नहीं लगा था। सिर्फ दो चार घूँट पानी वह पी गई थी। लेकिन यह एक मामूली बात थी और फिर शीघ्र ही उस बन्धन से मुक्त होने की खुशी में उसे जो थोड़ा बहुत कष्ट हुआ भी था, वह उसे भूल गया था, और वह दूने उत्साह से चपला के साथ तैर रही थी।

सच यह था कि शरीर थक कर शिथिल हो गया था लेकिन उसके मन में न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गई थी कि वह यंत्र की तरह मन के इशारे पर परिचालित हो रही थीं। चपला को इस प्रकार के व्यायाम का अभ्यास था। वह घंटों तैर सकती थी, मीलों जा सकती थी। उसके सब काम बिलकुल वैसे ही हो रहे थे जैसे कि वह अगणित दर्शकों की हर्ष ध्वनि के बीच में अपने सरकस के अद्‌भुत खेल दिखलाती हो। दर्शकों की भी यहाँ कमी न थी। आकाश से अगणित तारे उनका यह अद्‌भुत खेल देखने के लिए झील के पानी में उतर आये थे। स्वयं चन्द्रमा पूर्व की दिशा में उदय हो रहा था।

इसी तरह करीब आध मील तक वे तैरती रहीं और किले की अंतिम बुर्ज को पार कर गयीं। अब उनको ऊँचा नीचा तल मिलने लगा। वे किनारे से कोई एक फर्लांग दूर पानी में चली गईं और पूर्व की ओर तैर रही थीं। उन्हें भय था कि किनारे की तरफ आगे से कुछ प्रहरी न पहुँच गये हों।

इस प्रकार कुछ दूर और तैरने के बाद उन्हें निश्चय हो गया कि इस तरफ कोई नहीं आया है, क्योंकि बिलकुल सुनसान है। अब वे किनारे की तरफ गईं और ज़मीन पाने पर क्षण भर किनारे पर रुकी रहीं।

अब तक पानी में भुवनमोहिनी यंत्र की तरह तैरती रही थी लेकिन किनारा पाने पर एक बार जब वह ज़मीन पर लेट गई, तब उसका शरीर जैसे मुर्दा हो गया हो। अब उसकी सिर्फ साँसें चल रही थीं। उसमें शक्ति बाकी नहीं रह गई थी।

चपला ने भुवनमोहिनी को समतल ज़मीन पर लिटा दिया। उसने अपने शरीर का वस्त्र उतारकर निचोड़ा और फिर उन्हें गीला ही पहन लिया। उसके बाद उसने भुवनमोहिनी के वस्त्र उतारे, उनका पानी निचोड़ा, बदन को पोंछा और उसे वैसे ही

पहना दिया। वह भुवनमोहिनी को अपने कन्धों पर उसकी बाहों के सहारे झुलाकर कटीली झाड़ियों की छाया में लोमड़ियों की भाँति छिपती हुई आगे बढ़ी। ज्यों ज्यों आगे बढ़ती जाती थी झील का किनारा छूटता जाता था। वह इस अन्दाज़ में चल रही थी कि कहीं किसी किस्म की बस्ती या किसी मल्लाह की झोपड़ी आदि मिले तो वह उसमें आश्रय ग्रहण करे।

एक बार उसने पीछे की ओर भी घूम कर देखा, झील में अब भी उसी प्रकार नावें घूम फिर रही थीं और किला अपने अन्दर के प्रकाश सहित अंधकार में समा गया था। निश्चिन्तता पूर्वक भुवनमोहिनी को लिए हुए चपला फिर आगे बढ़ती गई। दाहिनी ओर उसे आग सी जलती हुई दिखाई पड़ी और वह उसी ओर घूम पड़ी।

एक घने वृक्ष की छाया में एक अधेड़ पुरुष साधु का भेष बनाये धूनी रमाये वहाँ बैठा था। यद्यपि यह वसंत ऋतु थी तथापि प्रकृति में काफी शीत व्याप्त था और वह साधु सम्भवतः अपना शीत दूर करने के लिए ही यह धूनी रमाये बैठा था। साधु कुछ ऊँघ सा रहा था और चपला इतने चुपके चुपके गई थी कि उसे कुछ आहट भी न मालूम हुई।

चपला ने भुवनमोहिनी को आग के पास लिटा दिया। जंगल की लकड़ियों के दहकते हुए कोयलों के प्रकाश में साधु को भुवनमोहिनी का सुन्दर मुख दिखलाई पड़ा। साधु कुछ आश्चर्य और भय मिश्रित स्वर में बोला—तुम कौन हो ?

"बाबा ज़ोर से मत बोलो ! हम आफ़त की मारी अबला हैं ! हमारी रक्षा करो।"

साधु के मुँह से और शब्द न निकले। उसने सिर्फ एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी। चपला को बैठने का संकेत करते हुए उसने अपने आस-पास अंधकार में टटोला। उसके हाथ दो एक लकड़ियाँ

लगीं, उन्हें आग पर तोड़कर उसने रक्खीं और उनमें एक फूँक मारी। रोशनी हो गई। ज्वाला के प्रकाश में उसने चन्द्रमा सी सुन्दर और अग्निशिखा सी प्रदीप्त उन दो वीर नारियों को देखा।

"अरे तुम भींगी हो, कृष्ण सागर पार करके आ रही हो। हाय मेरी कुटिया में सूखे वस्त्र शायद ही मिलें। उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी—"हे प्रभु ! क्या है जो इन्हें पहिनने के लिए दूँ। अच्छा ! जाता हूँ ! टाट के कुछ टुकड़े हैं ! उन्हें ले आता हूँ। उन्हें किसी तरह कमर पर लपेट कर अपने कपड़ों को आग पर सुखा लो। यह बहुत ज़रूरी है । तब तक के लिए मैं कुटी के अन्दर जाता हूँ। उसके बाद मुझे अपनी मुसीबत की कहानी सुनाना और बताना मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ।"

यह कह कर साधु कुटिया के अन्दर चला गया। अंधकार में टटोलकर टाट के कुछ फटे टुकड़ों को लाकर चपला को दिया। चपला ने पहिले भुवनमोहिनी के वस्त्र उतारे। एक दो टुकड़ों से उसको ढक दिया और उसके वस्त्रों को सूखने के लिए बाबा की कुटी पर डाल दिया। दूसरे टुकड़ों से उसने स्वयं अपने बदन को ढकने की चेष्टा की और अपने कपड़े को भी सूखने के लिए बाबा की कुटिया पर डाल दिया और आग के पास वह बैठ गई।

उन्हें निश्चिन्त बैठी जानकर साधु भी उनके पास आ गया और आँच को ज़रा और तेज़ करते हुए बोला—बेटी, अब मैं बाबा बजरंगी के नाम से मशहूर हूँ। वह भी सिर्फ ८ या १० चरवाहों में। यहाँ इस निविड़ स्थान में बैठा अपनी साँसें गिन रहा हूँ। गाय बैल चराने के लिए जो चरवाहे यहाँ आते हैं, वे अपनी रोटियों, चना, चबेना से कुछ बचाकर मुझे भी दे देते हैं। उसी से मैं अपना पेट पालता हूँ। लेकिन मेरी यही अवस्था हमेशा ही से ऐसी न थी। मैं इस रियासत के महाराज का किसी समय कृपापात्र था। मेरा कसूर सिर्फ यही था, कि······मैं उन बीती

बातों का जिक्र करके अपने और तुम्हारे दुःख को बढ़ाना नहीं चाहता। मुझ पर बड़े जुल्म हुए हैं। मेरे घर में आग लगाई गई, मेरी बहू बेटियाँ बलात्कार पूर्वक मुझसे छीन ली गईं, उनकी क्या दुर्दशा हुई, कह नहीं सकता। मुझे जेलखाने में यावत् जीवन के लिए डाल दिया गया। मन में लगन थी कि एक बार फिर बाहर का संसार देखूँ और अपने परिवार के लोगों की मुसीबत का हाल जानूँ। यही सोच सोच कर मैं जिन्दा बना रहा और जेलखाने से निकल भागने की बराबर कोशिशें करता रहा। अन्त में जेल के ही पहरेदारों की कृपा से वहाँ से भाग निकला। मेरे घर वालों का पता न लगा कि उनका क्या हुआ, उनके बारे में मुझे कुछ कर सकने का साहस न हुआ। जिस किसी भी परिचित मित्र बन्धु के यहाँ सहायतार्थ गया उसी ने मुझसे मुँह मोड़ लिया। किसी को मुझसे बात करने की हिम्मत न हुई। अन्त में लाचार होकर यहाँ आ बैठा। चरवाहों का दिया खाता हूँ। उन्हीं के मुख से अपने पूर्व जीवन की कहानी सुनता हूँ, अपने स्त्री बच्चों की मुसीबत की बात सुनता हूँ और सुनकर आँसू बहाता हूँ। इस प्रकार अपने हृदय को हल्का करता हूँ। मेरी बेटियो! तुम्हारी मुसीबत का हाल बजाय तुम्हारे मुख से सुनने के मैं स्वयं समझ रहा हूँ। मैं अपना प्राण रहते हुए अपना वश चलते हुए तुम्हें उन नर राक्षसों के हाथ फिर न पड़ने दूँगा। तुम यहाँ निश्चिन्त होकर मेरी कुटी में रहो। यहाँ तुम्हारा पता किसी को नहीं लग सकता और भेष बदलकर, तुम जहाँ चाहोगी मैं पहुँचा दूँगा।

अब भुवनमोहिनी के शरीर में चेतना आ गई थी और बाबा बजरंगी की बातें वह ध्यान से सुन रही थी। उनकी बातें सुनते सुनते एकाएक उसके मुँह से निकल गया—तो बाबा तुम सरदार सम्पूर्ण सिंह हो।

एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर बाबा बजरंगी ने कहा—बेटी मैं सरदार सम्पूर्ण सिंह हूँ, और तुम।

"भुवनमोहिनी हूँ, महेशानन्द शास्त्री की लड़की। तुमने उनका नाम सुना होगा।"

बाबा बजरंगी भुवनमोहिनी की ओर खिसक गये। उनकी आँखों से बड़े बड़े आँसू निकल कर उसके मस्तक पर टप टप गिरने लगे। उन्होंने कहा—मेरी बेटी, मैंने तुझे अपनी गोद में खेलाया था। तेरे लिए मैं अत्यन्त उज्ज्वल भविष्य की कल्पना किये बैठा था। कम से कम तू ही एक ऐसी लड़की थी जिसके बारे में मेरा ख्याल था कि तुझ पर राज्य की कुदृष्टि नहीं हो सकती। लेकिन हाय तेरी यह दशा। अब इस राज्य में कौन सुरक्षित है?

बाबा बजरंगी का गला रुँध गया और वे अधिक नहीं बोल सके।

धूनी में आग कुछ कम हो गई थी। रात अभी काफ़ी बाकी थी। किसी के पास ओढ़ने बिछाने के लिए कुछ नहीं था। इसलिए चपला ने थोड़ी सी और लकड़ी ला कर आग पर रख दिया और उसे प्रज्ज्वलित कर दिया।

अपनी लड़की न सही, गैर की ही लड़की सही मुसीबत से बच कर उनके पास आई तो बाबा बजरंगी को जान पड़ा, जैसे वह इसीलिए जीवित थे। उनके जीवन का सदुपयोग हुआ। उन्हें जान पड़ा जैसे उनका उजड़ा घर फिर से आबाद हुआ है। उनके जीवन के धूमिल आकाश में फिर कुछ उज्ज्वल तारे उदित हुए हैं। उन्हें जीवन फिर प्यारा मालूम होता दिखाई पड़ा।

उन्होंने कहा—मेरी बेटियो तुम बहुत भूखी होगी। आज शाम को मेरा जी बहुत उदास था। मुझे खाने की इच्छा नहीं होती थी। फिर भी चरवाहे मकाई के दो चार भुट्टे मेरे पास छोड़ ही गये।

उन्हें ले आता हूँ। आग पर भून कर उसे चबाओ। इस तरह तुम्हारे शरीर में कुछ बल आयेगा।

बाबा बजरंगी फिर अपनी कुटिया के अन्दर गये। वहाँ से टटोल कर दो तीन बड़ी-बड़ी मकाई की बालें ले आए और उन दोनों युवतियों को क्षुधा मिटाने के लिए दिया।

चपला और भुवनमोहिनी ने आपस में विविध प्रकार की बातें करते हुए मकाई के उन भुट्टों को चबाया और उन्हें ऐसा अनुभव हुआ, जैसे वे वर्षों से कुटी के अन्दर बाबा बजरंगी के साथ रही हों, इतनी ही देर में उनमें और बाबा बजरंगी में आत्मीयता हो गई। चपला के जीवन में एक बड़ा अभाव था। उसके पिता नहीं थे। बाबा बजरंगी साक्षात उसे अपने पिता ही से जान पड़े, और भुवनमोहिनी को जान पड़ा जैसे वह अपने वास्तविक पिता का आज प्रथम बार दर्शन कर रही हो।

चपला की कहानी सुनने के बाद बाबा बजरंगी ने कहा कि अभी राज्य के कर्मचारी तुम्हारा पीछा करेंगे। हिंसा से वे प्रज्ज्वलित हैं, वासना के वे शिकार हैं। एक बार फिर तुम दोनों को अपने काबू में लाने के लिए, वे कुछ उठा नहीं रक्खेंगे। राज्य के अन्दर अगर तुम्हारी कोई रक्षा कर सकता है तो वह सरदार अभयराजसिंह हैं। उसका इलाका यहाँ से १४ मील दूर है। जिस कसबे में वे रहते हैं उसका नाम विक्रमपुर है। तुम्हारी रक्षा के लिए मुझे विश्वास है एक बार वह अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे। रियासत पर उनका रोब भी है। मैं यह चाहूँगा कि तुम वहाँ जाओ और जब तक तुम वहाँ पहुँच न सकोगी तब तक तुम्हें छिपाने के लिए बाबा बजरंगी की यह कुटिया काफ़ी है। यहाँ तुम्हारा कोई पता नहीं पा सकता।

भुवनमोहिनी के कंठ से रह रह कर यह वाक्य उठ रहा था—"हम इस स्वेच्छाचारिता को निर्मूल करके ही दम लेगें।"

उसने बाबा बजरंगी से कहा—सरदार साहब ! हम तो मुसीबत में पड़े ही हैं। क्यों न हम एक ऐसे समाज का संगठन करें जो इस रियासत से इस अनाचार, अन्याय और स्वेच्छाचारिता का अन्त कर दे।

उसके बाद ही इन तीनों पीड़ित व्यक्तियों ने दहकते हुए कोयलों के प्रकाश में, अपने हृदय के उन्हीं से दहकते हुए और प्रज्ज्वलित विरोध की प्रेरणा से एक संस्था की स्थापना की और उसका नाम रक्खा—"प्रजामंडल।"

५

इस घटना को हुए कई महीने हो गये। बीहड़ नगर के उस हिस्से के लोगों ने जिन्होंने भुवनमोहिनी के अपहरण के दिन सड़क पर चपला और राज्य कर्मचारियों के द्वन्द को देखा था, बाकी सब लोग इसे भूल गये। भुवनमोहिनी और चपला के किले की बुर्ज पर से कूदने और फिर पानी में ग़ायब हो जाने की तो किसी को ख़बर भी न हुई। नगर की जनता में यह प्रचलित किया गया कि महेशानन्द शास्त्री का ड्राइवर उनकी पुत्री को सरकस वालों के हाथ बेचने के लिए भगाये लिए जा रहा था। राज्य के कर्मचारियों ने उसको रोकने की चेष्टा की। लेकिन सरकस की नायका चपला ने ऐसी फुर्ती दिखाई कि उनका जोर न चला। वह भुवनमोहिनी को लेकर न जाने कहाँ चली गई। इस अपराध पर महेशानन्द शास्त्री के ड्राइवर और चपला की सरकस मंडली के समस्त व्यक्तियों पर मुकदमा चलने लगा। ये सब लोग गिरफ़्तार

करके रियासत के जेलखाने में डाल दिये गये। प्रजा, राज्यकर्मचारियों की मुस्तैदी की प्रशंसा के पुल बाँधने लगी।

अब जनता इस बात की प्रतीक्षा में थी कि राज्य के पुलिस चपला को भी गिरफ़्तार करके ले आवें और लोग यह देखें कि दिन दहाड़े इस सरकस सुन्दरी को ऐसा कुकृत्य करने का साहस कैसे हुआ ?

इस मामले में सब से अधिक दिलचस्पी बैरिस्टर मदनगोपाल ले रहे थे। वे बीहड़ राज्य के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। हाल ही में विलायत से बैरिस्टरी पास करके लौटे थे और उन्हीं के साथ भुवनमोहिनी की शादी होने वाली थी। उनका पूर्ण क्रोध महेशानन्द शास्त्री के ड्राइवर पर और सरकस कम्पनी के कार्यकर्त्ताओं पर था। और वे अपना सारा दिमाग़ इन सब को गहरी सज़ा दिलाने में खर्च कर रहे थे। राज्य की ओर से इस मुक़दमे की देख रेख करने के लिए यही नियुक्त कर दिए गये थे।

बैरिस्टर मदनगोपाल अपने विशाल भवन के एक सजे हुए कमरे में बैठे हुए एक फाइल उलट रहे थे। अपना मस्तिष्क इसी उलझन में पूर्ण मनोयोग के साथ लगाये हुए थे। उसी समय उनके नौकर ने लाकर उनके हाथ में एक लिफ़ाफा दिया। लिफ़ाफा के अक्षरों को देखते ही बैरिस्टर मदनगोपाल चौंक से उठे। यह भुवनमोहिनी के सुन्दर हाथ की लिखावट थी। लिफ़ाफा देखकर बिना उसे खोले ही बैरिस्टर मदनगोपाल ने नौकर से ही यह सवाल किया—लिफ़ाफे को कौन लाया है ? उसे फौरन् मेरे पास भेजो।

"हुज़ूर वह तो लिफ़ाफा मुझे देकर उल्टे पाँव लौट गया। मैंने उससे पूछा कि क्या इसका जवाब भी चाहिए तो उसने कहा कि नहीं, कोई जवाब नहीं चाहिए।"

बैरिस्टर मदनगोपाल अब शान्त भाव से लिफ़ाफे को पढ़ रहे थे। नौकर ने देखा कि ज्यों ज्यों वे पत्र को पढ़ते जाते थे

उनके चेहरे की विचित्र गति होती जाती थी। पत्र बहुत लम्बा नहीं था, फिर भी उसके पढ़ने में बैरिस्टर साहब को बहुत देर लगी। उन्होंने उसको कई बार पढ़ा। अन्त में मोड़कर लिफ़ाफे के अन्दर रख दिया और नौकर को आज्ञा दी कि कार तैयार करो।

नौकर ने दौड़ कर उनके मोटर ड्राइवर को खबर दी। दूसरे ही क्षण बैरिस्टर मदनगोपाल शिवलोक की ओर रवाना हो गये।

इस समय रात के करीब नौ बजे थे। शिवलोक में उदासी छाई हुई थी। महेशानन्द शास्त्री उनकी पत्नी, उनके लड़के, और नौकर-चाकर सब शोक संतप्त थे। शोक के साथ साथ उनको रोष भी था। उन लोगों पर, जिन्होंने उनकी पुत्री का अपहरण करके, उनकी इस प्रकार बदनामी कराई थी। वे उस रोज़ से शिवलोक से, अपने कमरे के बाहर न निकलते थे। बीहड़ेश्वर के दर्शन के लिए भी नहीं गये। वे अपने को इस लायक नहीं समझते थे, कि बस्ती में किसी को अपना मुख दिखावें। अपने कमरे में चुपचाप लेटे, वे मौत की कल्पना कर रहे थे और अपनी पुत्री के प्रति तरह तरह के ख्याल कर रहे थे। अनेक तर्क-वितर्क करने पर उन्हें अपनी पुत्री का चरित्र उज्ज्वल ही जान पड़ा। उसके जीवन में, उन्होंने कोई ऐसी बात नहीं देखी थी, कि आज इस प्रकार की शंका करते। वे जानते थे कि इतना बड़ा कपट वह मन में कदापि नहीं छिपा सकती थी। घूम फिर कर अन्त में वे इसी निर्णय पर पहुँचे कि उसके साथ बल प्रयोग हुआ है, वह ज़बरदस्ती ले जाई गई है और कहीं बदमाशों ने उसे छिपा रक्खा है। कई बार उनके मन में आया कि वे जेल के अन्दर जाकर अपने ड्राइवर से मुलाक़ात करें और उससे पूछें कि उसने यह क्या किया ? परन्तु उन्हें उससे इतनी घृणा हो गई थी कि उसका नाम लेने की भी उन्हें इच्छा न होती थी। उन्हें सिर्फ एक बात से संतोष हो सकता था कि कोई उनके मन में यह

विश्वास दिला दे कि इस काण्ड में उनकी पुत्री की रजामंदी थी ताकि वे अपने पुत्री से भी घृणा करने लगें और समझ जायँ कि उनके जीवन में यह षडयंत्र अच्छे ही के लिए हुआ है।

महेशानन्द राज्य के पुरोहित हैं। उनकी पुत्री का उसकी इच्छा के विरुद्ध अपहरण करने का साहस कौन कर सकता है। वे इसी विचार में उलझे हुए थे, कि उन्हें बैरिस्टर मदन गोपाल के आने की सूचना दी गई।

बैरिस्टर साहब उनके कमरे में पहुँचते ही, उन्हें समुचित अभिवादन करने के बाद उनके हाथ में वह पत्र दे दिया, जो उन्हें कोई अज्ञात व्यक्ति दे गया था। महेशानन्द ने पत्र पढ़ना आरंभ किया। उसमें लिखा हुआ था।

"मेरे प्रियतम—मेरे पिता का ड्राइवर निर्दोष है। सरकस कम्पनी के सभी व्यक्ति निर्दोष हैं। निर्दोष व्यक्तियों को दंड दिलाने का पाप अपने सिर पर न लीजिए। वास्तविकता यह है कि मेरा अपहरण राज्य की ओर से महाराजा विष्णुदेव सिंह की वासना की अग्नि में आहुति डालने के लिए कराया गया है। चपला ने मेरी सहायता की है। इसके बदले में आप उसके आदमियों की यदि सहायता न कर सकें तो उनका अपकार भी न करें। मैं स्वयं आपकी सेवा में हाज़िर हूँगी। परन्तु मैं अपने को इतना असहाय और अरक्षित समझ रही हूँ कि इच्छा रहते हुए भी आने का साहस नहीं होता। किस प्रकार मैं किले पर से झील में कूद कर जिन्दा निकल आई हूँ यह मैं कभी मिलने पर ही आपसे सविस्तार कहूँगी। पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह चपला के हाथ से घायल हुए हैं। चपला ने उन्हें इसलिए नहीं मारा था, कि वे मेरी रक्षा करना चाहते थे; बल्कि इसलिए मारा है कि मुझे वन्दिनी बनाना चाहते थे। इस समय इतना ही।

आपकी—भुवनमोहिनी।"

बैरिस्टर मदनगोपाल और महेशानन्द शास्त्री ने इस पत्र का उल्टा ही अर्थ लगाया और उन लोगों ने निश्चय किया कि भुवनमोहिनी का या तो ड्राइवर से प्रेम है या उसे ड्राइवर की मार्फ़त सरकस कम्पनी वालों ने बहकाया है। यह भी हो सकता है कि उसे वे बलपूर्वक ले गए हैं और भय त्रस्त करके उससे ऐसा पत्र लिखवाया है। इसीलिए उसने ऐसा पत्र लिखा है। उन्होंने निश्चय किया कि इस पत्र को वे राज्य के खुफिया विभाग को दे देंगे ताकि वह इस मामले की सरगर्मी से जाँच करे और उनकी भुवनमोहिनी का यथासंभव शीघ्र पता लगावे।

इसका यह परिणाम हुआ कि राज्य के कर्मचारी जो यह समझे बैठे थे, कि भुवनमोहिनी और चपला दोनों मर गई हैं, यह जान गये कि वे जीवित हैं।

उनके भाग निकलने से राज्य की बहुत बदनामी हो सकती है, इसलिए वे और भी सरगर्मी से उनका पता लगाने लगे। इस कार्य में उन्हें महेशानन्द शास्त्री तथा बैरिस्टर मदनगोपाल का सहयोग प्राप्त हुआ। राज्य के इन दोनों प्रतिष्ठित पुरुषों के हृदय में स्वप्न में भी ऐसा ख्याल नहीं उठता था कि भुवनमोहिनी के साथ ऐसी ज्यादती हो सकती है। यद्यपि इस तरह के काण्ड वे रोज़ ही अपनी आँखों से देखते रहते थे।

इस प्रकार महीनों छान बीन होती रही। भुवनमोहिनी और चपला की फोटो जगह ब जगह चिपकवाई गई और उनके पता लगाने वालों या उन्हें गिरफ्तार करानेवालों को इनाम घोषणा की गई। लेकिन उनका कुछ भी पता नहीं चला।

बैरिस्टर मदनगोपाल, भुवनमोहिनी से जितना प्रेम करते थे उतना ही उन्हें उससे घृणा हो गई। उनकी धारणा थी कि स्त्री जाति छल से दूर नहीं की जा सकती। अब तक जितनी स्त्रियाँ

उनके संपर्क में आई थीं, उन सबों से उनको धोखा ही हुआ था। एकमात्र भुवनमोहिनी पर उन्हें विश्वास था। उसी को वे अपनी सीता दमयन्ती समझे बैठे थे। लेकिन जितना ही उस पर उनका विश्वास था उतना ही वह उन्हें विश्वासघातिनी प्रतीत हुई। तो क्या उसके वे मीठे-मीठे प्रेम भरे वचन मिथ्या थे। तो क्या उसकी मुसकान बिलकुल कृत्रिम थी और उसकी चितवन छल मिश्रित थी। इस अविश्वास और घृणा के काले परदे पर रह रह कर भुवनमोहिनी की एक धुँधली तस्वीर अङ्कित हो उठती थी। जो उनसे अपनी बेबस मूक भाषा में कहती थी—"प्रियतम तुम बिलकुल गलत समझ बैठे हो। मेरे ! आराध्यदेव ! एक मात्र तुम्हीं हो।" परन्तु शीघ्र ही बैरिस्टर मदनगोपाल इस बात को चित्त से निकाल देते थे और इसे वे अपनी एक प्रकार की मानसिक कमजोरी समझते थे।

इस तरह दिन कटने लगे। अन्त में वह दिन आया जब महेशानन्द शास्त्री के ड्राइवर और चपला के समस्त कर्मचारियों को राज्य की ओर से एक भयानक षडयंत्र करने के अपराध में आजन्म कैद की सजा सुनाई गई।

दूसरे दिन सबेरे जब बीहड़ नगर के ऊपर से अंधकार के काले परदे उठे और प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश में शहर का कार-बार शुरू हुआ तब लोगों ने दीवारों पर, पेड़ों पर, और खास जगहों पर, मोटे काले अक्षरों में पोस्टर चिपके हुए देखे। उन पोस्टरों पर इस आशय की लिखावट थी।

"कल जिन व्यक्तियों को आजन्म क़ैद की सजाएँ दी गई हैं; वे सब निर्दोष हैं। भुवनमोहिनी के अपहरण कर्ता राज्य के कर्मचारी हैं। यह अपहरण बीहड़ नरेश महाराजा विष्णुदेव सिंह की जानकारी में हुआ हो या गैर जानकारी में; पर हुआ है उन्हीं की वासना की पूर्ति के लिए। कितनी ही स्त्रियों का अपहरण

राज्य कर्मचारी बराबर करते आये हैं। उनका अपराध दूसरों के मत्थे मढ़कर उन्हें सजा दी जाती है। आज शाम को संध्या समय ५ बजे भुवनमोहिनी बीहड़ेश्वर महादेव के मंदिर में उपस्थित होकर उनके सामने न्याय की प्रार्थना करेगी और यह बतायेगी कि उसका अपहरण राज्य के कर्मचारियों ने किस तरह किया और वह किस प्रकार रियासत के चंगुल से निकल भागी। समस्त बीहड़ नगर के, न्याय प्रेमी और रियासत की प्रजा का दुःख समझने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों से मेरा निवेदन है कि वे भगवान् बीहड़ेश्वर के मंदिर के सामने एकत्र होकर राज्य के इस षडयंत्र की कहानी सुनें।

—मंत्री, प्रजामंडल बीहड़ राज्य।"

उस समय बैरिस्टर मदनगोपाल सैर करने के लिए निकले थे। जब वे सैर करने के लिए निकले थे उस समय कुछ कुछ अंधेरा था। जगह जगह पोस्टर चिपके हुए देखकर उन्होंने यही समझा कि किसी सेनीमा कम्पनी या सरकस कम्पनी का पोस्टर है। लेकिन जब उजाला हुआ और पोस्टर पर पोस्टर उनके सामने आने लगे तब रुक रुक कर उन्हें पढ़ने के लिए वे बाध्य हुए। जो कुछ पढ़ा उससे उनका सिर चकरा गया।

उस दिन सारे राज्य में उसी पोस्टर की चरचा रही। स्थान स्थान पर लोगों ने देखा कि राज्य के कर्मचारी उन पोस्टरों को उखाड़ते हुए घूम रहे हैं। सड़क पर, लोगों ने, सैनिक और पुलिस के सिपाहियों को विशेष रूप से घूमते फिरते और परेड करते हुए देखा। ज्यों ज्यों दिन बीतने लगा, लोगों की भीड़ बीहड़ेश्वर के मंदिर की ओर जाने लगी। पोस्टरों में एक अजीब उत्सुकता थीं। जो उन्हें पढ़ता था, उसी के हृदय में भुवनमोहिनी को देखने और उसकी बातें सुनने की इच्छा प्रगट हो उठती थी। अधिकाँश

लोगों का यही ख्याल था कि भुवनमोहिनी का अपहरण राज्य के कर्मचारियों ने ही किया है। लेकिन उनमें इतना साहस नहीं था, कि कहने के लिए जबान खोलते।

बीहड़ेश्वर के मन्दिर के चारों ओर पुलिस के सिपाहियों का खासा पहरा लग गया था। राज्य के सी० आई० डी० चारों ओर घूम रहे थे। यह नोट कर रहे थे कि कौन क्या कहता है ? और इस बात का पता लगा रहे थे कि भुवनमोहिनी कहाँ है ? और किस प्रकार मन्दिर में आती है। रियासत का कोना कोना छान डाला गया। उन्हें कहीं भी इस बात का सबूत नहीं मिला, कि भुवनमोहिनी रियासत के अन्दर है। राज्य की ओर से इस बात की भी बड़ी कोशिश की गई कि रियासत के लोग मंदिर की सभा में शरीक न हों। लेकिन उनकी यह कोशिश व्यर्थ हो गई।

शाम को बीहड़ेश्वर में इतनी भीड़ लगी कि जितनी कभी नहीं हुई थी। खासा मेला सा लग गया। कितने ही खोन्चे वाले और पान वाले अपनी अपनी दूकानें ले कर वहाँ आ गये। कितने ही बाजा वाले और खिलौने वाले शोर-गुल करने लगे। हरएक आदमी आश्चर्य से चकित चारों ओर देख रहा था कि देखें भुवनमोहिनी किधर से आती है, और क्या कहती है। जितनी उत्सुकता भीड़ में थी उतनी ही उत्सुकता राज्य के कर्मचारियों में भी थी।

मंदिर के राजकीय भाग में दूसरी मंजिल पर दीवान दिग्-विजय सिंह महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी और फ़ौज के कामण्डर बैठे हुए विविध मंत्रणाएँ कर रहे थे। उनकी समझ में नहीं आता था कि भीड़ को किस तरह तितर-बितर करें। यद्यपि वे दफा१४४ लगा कर या लाठी या गोली चला कर भीड़ को तितर-बितर कर सकते थे, तथापि भुवनमोहिनी का पता लगाने का और कोई मार्ग न देख कर वे मामूली तरीके से सभा को हो जाने देना

चाहते थे। सिर्फ इसीलिए इस सभा के हो जाने में कोई रुकावट नहीं डाली गई। भुवनमोहिनी की माँ उसके छोटे भाई आज बीहड़ेश्वर के मंदिर-द्वार पर उपस्थित थे। माँ अपनी बेटी को देखने के लिए उत्सुक थी। अगर कोई नहीं आया था तो वे थे महेशानन्द शास्त्री। वे सोचते थे कि भुवनमोहिनी अगर जिन्दा है तो मेरे पास घर पर क्यों नहीं आती ? मेरी बदनामी का मेला बीहड़ेश्वर पर क्यों लगाती है ? जरूर वह मुझ से पृथक रहना चाहती है। कुलघातिनी ! मैं तुझे भगवान शंकर का मंदिर अपवित्र न करने दूँगा। मैं तुझे मंदिर में न घुसने दूँगा। इसीलिए अन्त में वे भी बीहड़ेश्वर के द्वार पर पहुँचे। उनको आते देखकर जनता ने उनके लिए मार्ग छोड़ दिया और उनका अभिवादन किया। भीड़ के बीच से ज्यों ज्यों वे मंदिर की ओर बढ़ते थे, भीड़ में से बड़े जोर से आवाज़ें उठती थीं, महेशानन्द की जय ! भुवनमोहिनी की जय !!

जनता में राज्य की ओर से जितना असन्तोष था, महेशानन्द के प्रति उसने उतनी ही सहानुभूति प्रदर्शित की। पर महेशानन्द इस जयनाद के लिए तैयार न थे। लज्जा से वे मस्तक झुकाए थे। यह कोई अच्छा काम नहीं था जिसके लिए उनकी इतनी जयजय-कार हो। लड़कियों के भाग निकलने से पिता का मान घटता है। फिर उन्हें तिरस्कार के बदले में यह प्रतिष्ठा क्यों मिल रही है। इस भीड़ का आयोजन वास्तव में क्यों हुआ है। वे यही सोचते हुए अत्यन्त लज्जा और शोक से मस्तक नीचे किये हुए मंदिर की ओर चले जा रहे थे। शास्त्री जी को देख कर दीवान दिग्विजय सिंह उनका स्वागत करने के लिए नीचे उतर आए, और उन्होंने शास्त्री जी के सामने अपना मस्तक झुकाया। उसके साथ ही जनता में शर्म शर्म की आवाज़ें उठीं। इन आवाज़ों के बीच में दीवान साहब को यह स्पष्ट सुनाई पड़ा—

"दीवान नालायक है। निकाला जाय।"

दीवान साहब ने क्रुद्ध दृष्टि से उपस्थित भीड़ की ओर देखा। गुस्से से वे जिस ओर से आये थे उसी ओर लौट गये। तत्काल ही कमाण्डर से कहा—"गोली चलाने का हुक्म दीजिये। ये विद्रोही हैं। यह विद्रोह का आयोजन किया गया है। वह पोस्टर तो इस भीड़ को जमा करने का बहाना मात्र था।"

६

बीहड़ नगर ही नहीं, आस पास के कोई २० मील के गिर्द के लोग जिनमें अधिकतर किसान थे, वहाँ जमा हो गये थे। शिवरात्रि के दिन बीहड़ेश्वर के मंदिर पर जो मेला लगता था वह इस भीड़ के मुकाबले में कोई चीज़ न था। भीड़ में राज्य की पुलिस और सेना दूध में पड़ी मक्खी की तरह बड़ी ही कुरूप और घृणित सी दिखलाई पड़ती थी, और निकाल कर फेंकी जा सकती थी। भीड़ में कितने ही किसान अपनी अपनी पुरानी बेढङ्गी बन्दूकें ले कर आये थे। वे गोली का जवाब गोली से देने के लिए तैयार थे। यह ज़रूर था कि राज्य की फ़ौज शिक्षित थी। उसके पास गोला बारूद भी बहुत काफ़ी था। लेकिन इतने बड़े विद्रोह को दबाने के लिए कमाण्डर साहब ने हिसाब लगाकर बतलाया कि वह काफ़ी नहीं होगी।

दीवान साहब ने टेलीफोन उठाया। वे अँग्रेज रेजीडेन्ट से बात करके ब्रिटिश सरकार से फौरन सहायता माँगना चाहते थे। महाराजा साहब से इस बीच में मंत्रणा करना संभव न था। अभी

वह सो रहे थे। जब से वे गद्दी पर बैठे थे, नींद से उन्हें जगाने का कभी किसी को साहस न हुआ था। कैसा ही महत्व-पूर्ण कार्य क्यों न हो, उनको जगाया नहीं जा सकता था। आखिर दीवान और राज्य के कर्मचारी तनख़्वाह किस बात की पाते हैं। मंदिर के एक हिस्से में जिधर से राज्य महल के निवासी मंदिर में आया जाया करते थे बाहर जाने का रास्ता खुला था। मंदिर के गिर्द और मंदिर की इमारत में बाहर की ओर जो कपड़ा, अनाज, और भूषण आदि की छोटी मोटी दूकानें थीं, भय की आशंका से बंद हो गई थीं। मन्दिर के गिर्द जो लोग बाज़ार में बसे हुए थे, वे भी इस भीड़ में आकर जमा हो गये थे।

यह भीड़ बिलकुल असंगठित थी। उसका कोई नेता नज़र नहीं आ रहा था। लेकिन फिर भी भीड़ में एक प्रकार की शान्ति और एक प्रकार की व्यवस्था थी। जान पड़ता था, कि जैसे रियासत के निवासी इस प्रकार की सभा करने के लिए हमेशा से अभ्यस्त हैं। बात यह थी कि उन सबों का हृदय एक भावना से प्रेरित, एक कष्ट से पीड़ित था और विद्रोह की एक चिनगारी से दीप्त हो उठा था। बीच-बीच में कोई आदमी "भुवनमोहिनी की जय" बोल उठता था। उसकी जय ध्वनि में सारे लोग अपना स्वर मिला देते थे। इतने ज़ोर की आवाज़ उठती थी, कि वह आस-पास की पहाड़ियों से टकरा कर, मन्दिर के बड़े बड़े कमरों से टकरा कर, राज्य में व्याप्त हो रही थी। राज्य का किला, मन्दिर से करीब डेढ़ मील दूर था। किन्तु फिर भी यह आवाज़ किले की दीवारों को पार करके, उन ऐश्वर्य भरे महलों में पहुँच रही थी जिनमें महाराजा विष्णुदेव सिंह नशे में पड़े अपनी उलूक-निद्रा पूरी कर रहे थे।

इस अभूतपूर्व जन-गर्जना ने उन्हें जगा दिया। कुछ देर तक बिस्तर पर पड़े पड़े वे सुनते रहे, "भुवनमोहिनी की जय! दीवान

निकाल दिया जाय !! स्वेच्छाचारिता का नाश हो !!" उनकी समझ में नहीं आया कि यह क्या मामला है। उन्होंने अपने पलंग के पाये में लगे हुए बिजली के बटन को दबाया। कमरे के बाहर घंटी बज उठी और परिचारिकायें अन्दर दाखिल हुई। पलंग के गिर्द हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई—"हुक्म सरकार"

"यह क्या शोर-गुल हो रहा है ?"

एक परिचारिका ने कहा—"सरकार हमें कुछ नहीं मालूम। सिर्फ इतना सुनने में आया है, कि पुलिस कप्तान को गोली से घायल करने के बाद सहेलियों के बुर्ज पर से जो स्त्रियाँ झील में कूद पड़ी थीं, वे आज बीहड़ेश्वर के मन्दिर में प्रगट होंगी। शायद प्रगट हो गई हों। लोग उनकी जय जय कर रहे हैं।"

एक विचित्र प्रकार के भय से महाराजा का हृदय हिल उठा। उनके शरीर से पसीना निकल आया। उन्होंने अपने भय को दबाते हुए पूछा—रिपुदमनसिंह का क्या हाल है ?

"सरकार ! डाक्टर ने कहा है कि बच जायेंगे। लेकिन उनका बायाँ हाथ, जिसमें गोली लगी थी, बिलकुल बेकार हो जायगा। अभी वे बैठ नहीं सकते।"

"वे कहाँ हैं ?"

"शहर के अन्दर सरकारी अस्पताल में।"

महाराजा साहब बिस्तर से उठ बैठे। सेविकाओं को हुक्म हुआ कि सैर की पोशाक निकाली जाय, अंगरक्षक बुलाए जाएँ, और मोटर तैयार की जाय। वे इसी समय रिपुदमनसिंह को देखना चाहते हैं। महाराजा की मर्जी की मुताबिक सब काम आनन-फानन हो गया।

उधर सूर्य तेज़ी के साथ पश्चिम की तरफ़ दौड़ा जा रहा था। इधर बीहड़ेश्वर के मन्दिर से आकाश को भेदने वाले

विद्रोह के शब्द उठ रहे थे और इधर महाराजा पुलिस कप्तान रिपुदमनसिंह को देखने के लिए दौड़े जा रहे थे।

अस्पताल का फाटक तुरन्त ही खोला गया और महाराजा रिपुदमनसिंह के कमरे में दाखिल हुए। महाराजा को आया हुआ देखकर पुलिस कप्तान रिपुदमनसिंह ने उठकर बैठने की चेष्टा की; लेकिन वे बिस्तर पर गिर पड़े और हाँफने लगे। उनके शरीर में अत्यधिक कमज़ोरी आ गई थी। महाराजा ने उन्हें लेट जाने की आज्ञा दी। और उनके बग़ल में रक्खी हुई कुर्सी पर बैठ गये। सब को उन्होंने कमरे के बाहर निकाल दिया, और रिपुदमनसिंह से बोले—तुम्हारी इस तकलीफ के लिए मुझे बहुत दुःख है। ईश्वर तुम्हें शीघ्र अच्छा करे। लेकिन यह बताओ कि प्रजा के हृदय में राज्य कर्मचारियों का विरोध करने की इच्छा कैसे पैदा हुई ? आवाजें कुछ सुन रहे हो। यह क्या है ? तुम्हारे इस प्रकार घायल होने की नौबत क्यों आई ?

रिपुदमन सिंह ने भुवनमोहिनी के अपहरण का, चपला के गोलीकाण्ड का और अपने घायल होने का वृत्तान्त कह सुनाया। अन्त में मुसकराते हुए कहा—महाराजा साहब आपको प्रसन्न रखने के लिए अपने प्राण की भी बलि करनी पड़े तो मैं उफ़ न करूँगा। यह शरीर आपकी सेवा के लिए ही बना है।

महाराजा विष्णुदेव सिंह एक शिक्षित और बुद्धिमान् व्यक्ति थे। वह सहृदय थे, उदार थे, क्षमाशील थे, और अपनी प्रजा की भलाई चाहने वाले थे। यदि उन्हें बचपन ही से राज्यकाज देखने और कुछ करने का अवसर मिला होता तो वे एक आदर्श शासक होते, राम और हरिश्चन्द्र का नमूना उपस्थित करते। वृटिश सरकार के प्रभाव से या चाहे जिस कारण से हो, राज्य में कुछ ऐसी परम्परा चल पड़ी थी कि महाराजा के हाथ में कुछ काम ही न रहता था। वे कुत्ते पाल सकते थे। शिकार खेल

सकते थे। देश विदेश की सैर कर सकते थे। लेकिन अपने राज्य के मामले में उन्हें कुछ करने का अधिकार न था। राज्य के मामले में उन्हें सब कुछ दीवान की मर्ज़ी से ही करना पड़ता था और दीवान की प्रत्येक बात पर उन्हें अपनी मुहर लगानी पड़ती थी।

किसी समय में, बृटिश सरकार से उनके पूर्वजों में सन्धि हुई थी। उसमें कोई ऐसी शर्त न थी, कि राजा को दीवान के हाथ में सब कारोबार छोड़ देना पड़ेगा। लेकिन परिपाटी ऐसी ही चली आ रही थी। इस तरह प्रथा का शिकार हो कर, वे व्यर्थ जीवन बिता रहे थे। भोग विलास और आलस्य में ही उनके दिन कटते थे। इसलिए क्रमशः वे पथभ्रष्ट होते गये और उनकी आदतें बिगाड़ दी गईं। पुरस्कार के लोभी नर पशु जिनकी इसी बात में भलाई थी, कि उनकी वासना की अग्नि भड़की रहे उन्हें रियासत से या रियासत के बाहर से नई-नई स्त्रियाँ खोज कर लाने लगे। महराजा ने समझा। स्वर्ग यही है, राज्य-धर्म यही है। बाकी सब मिथ्या है।

उन्होंने कप्तान रिपुदमनसिंह से कहा—तो क्या मैं यह समझूँ कि मेरे विलास के लिए जो युवतियाँ लाई जाती हैं, वे अपनी मर्ज़ी से नहीं आतीं ? जबरदस्ती लाई जाती है।

रिपुदमनसिंह ने उत्तर दिया—"मेरी जान में तो यही सुन्दरी ज़बरदस्ती लाई गई है।"

"आखिर इसके साथ ज़बरदस्ती क्यों की गई ?"

"आपको स्मरण होगा कि बीहड़ेश्वर के मन्दिर से निकलते समय, गत वर्ष आपने उसे देखा था, तब कहा था कि यह कितनी सुन्दरी युवती है। ऐसी स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। वह बड़ा सौभाग्यशाली होगा जो इसको अपनी बाँहों में प्रथम बार आबद्ध करेगा ? सरकार ! उसी दिन से हम लोग इस प्रयत्न में लग गये

कि इस कुसुम को चाहे जैसे हो उड़ाकर आपकी सेवा में हाज़िर करें।"

"तो तुम्हें अपने कर्मों की ठीक सजा मिली है !"

पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह की आँखों से आँसू निकल आए। उनका चेहरा अत्यन्त दयनीय सा हो उठा।

महाराजा विष्णुदेवसिंह घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए अस्पताल से बाहर निकल आये।

उसी क्षण वे मोटर पर सवार हुए और ड्राइवर को आज्ञा दी कि बीहड़ेश्वर के मन्दिर की ओर चलो।

मार्ग में अंगरक्षकों ने महाराजा साहब से कहा—हुज़ूर जनता में बड़ी उत्तेजना है। न जाने क्या अनर्थ हो जाय। इस समय वहाँ चलना ठीक नहीं है।

लेकिन महाराजा विष्णुदेवसिंह को भी बड़ी उत्तेजना हो उठी थी। उन्हें महसूस हो रहा था कि रियासत में बदइन्तज़ामी अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई है। वे जनता के इस प्रदर्शन से कुछ विचलित से हो उठे थे और अपने राज्य के कर्मचारियों से उन्हें बड़ी निराशा हो रही थी। वे अपनी आँखों से देखना चाहते थे। अपने कानों से सुनना चाहते थे, कि यह सब क्या हो रहा है ?

उपर हम कह आये हैं कि मन्दिर में जाने का वह रास्ता जिधर से राज्य महल के लोग मन्दिर में आया जाया करते थे, बिलकुल साफ था। उसी रास्ते से महाराजा बीहड़ेश्वर के मन्दिर में दाखिल हुए और ऊपर के कमरे में गये। उसी में उनके पिता बैठ कर रियासत के कागज़-पत्रों पर हस्ताक्षर किया करते थे। उनके पिता जब तक जीवित रहे उन्होंने अपना दफ़्तर बीहड़ेश्वर के मन्दिर में ही रक्खा; क्योंकि वे कहा करते थे कि बीहड़ के असली शासक महादेव बीहड़ेश्वर ही हैं और मैं तो उनका सेवक

हूँ। इसीलिए वे मन्दिर में ही अपना दफ़्तर लगाये हुए थे। उसी दफ़्तर में आज दीवान साहब मौजूद थे और ब्रिटिश रेज़ीडेन्ट से फ़ौज भेजने की प्रार्थना कर रहे थे।

महाराजा साहब को वहाँ आया देख कर सब लोग चौंक पड़े। एक क्षण में दीवान साहब ने महाराजा को सारी परिस्थिति समझा दी और कहा कि यदि ब्रिटिश गवर्नमेन्ट से फ़ौज की मदद नहीं मिली तो विद्रोही लोग हमको, आपको और सब को क़त्ल कर डालेंगे। सारे राज्य में आग लगा देंगे।

महाराजा ने टेलीफोन दीवान के हाथ से ले लिया और अपने कान में उसे लगाया। टेलीफोन की लाइन के दूसरे सिरे पर ब्रिटिश रेज़ीडेन्ट बैठा हुआ था। उसने अपनी टूटी हिन्दी में कहा—"कितने सिपाही भेजे जाँय ?"

"हमें एक सिपाही की भी जरूरत नहीं।" महाराजा विष्णुदेव सिंह ने कहा।

"लेकिन अभी तो आप कहते थे कि बलवा होने का अन्देशा है। फ़ौज भेजो। क्या बलवा शान्त हो गया ?"

"दीवान का ख़्याल था कि रियासत में बलवा हो जायगा लेकिन मैं समझता हूँ कि उनका ख़्याल ग़लत है। मैं ख़ुद महाराजा विष्णुदेव सिंह हूँ और आप से बातें कर रहा हूँ।"

महाराजा के कान में सुनाई पड़ा—"अच्छा महाराजा साहब गुडमार्निंग।"

महाराजा ने टेलीफ़ोन रख दिया और क्रुद्ध स्वर में दीवान दिग्विजय सिंह से कहा—आप बीहड़ेश्वर के मन्दिर में कौन सा अनर्थ करने पर उतारू हैं। यह वह जगह है जहाँ आजाने पर कभी कोई अपराधी भी नहीं गिफ़्तार किया गया। लोग मंदिर के पास इसीलिए जमा हुए हैं कि वे राज्य नियम को जानते हैं।

मन्दिर की सीमा के अन्दर गोली नहीं चलाई जा सकती। और मन्दिर के अन्दर रहते हुए कोई हम पर वार भी नहीं करेगा।

दीवान साहब ने कहा—यदि मेरा अपराध है, तो आप दोनों पक्ष की बातें सुनने के बाद मुझे जो सजा देंगे उसे मैं स्वीकार करूँगा। लेकिन इस समय, आपने उत्तेजना में कोई काम किया तो यह समझ लीजिए कि उसका परिणाम अच्छा न होगा। जनता उत्तेजित है। न जाने क्या कर बैठे।

भीड़ की उत्तेजना बढ़ती जाती थी। दीवान के विरुद्ध गगनभेदी नारे लग रहे थे। महाराजा खिड़की के पास बैठ कर बाहर के जन समूह को देखने लगे। दीवान दिग्विजय सिंह ने फ़ौज के कमाण्डर से आज्ञा के स्वर में कहा—देखते क्या हैं ? गोली चलाने का हुक्म दीजिए। और किसी बात के लिए नहीं तो अपने प्राण की रक्षा करने के लिए ही यह ज़रूरी है।

"ठहरो।" महाराजा विष्णुदेवसिंह ने कहा।

भीड़ से अब भी आवाज़ें आ रही थीं—भुवनमोहिनी की जय! दीवान निकाला जाय! बीच-बीच में ये आवाज़ें भी उठती थीं—महाराजा विष्णुदेव सिंह गद्दी पर से उतारे जाँय। राज्य में प्रजातंत्र कायम हो।

इस अंतिम वाक्य से महाराजा का हृदय और दहल गया। वे यह सुनने के लिए यहाँ नहीं आये थे, कि वे गद्दी से उतारे जायँ। पर उन्होंने अनुभव किया कि प्रजा का असन्तोष इस सीमा तक पहुँच गया है। यदि उनसे प्रजा की भलाई नहीं हो सकती तो वास्तव में वे गद्दी पर बैठने के अधिकारी नहीं है। पर उनका दोष क्या है। उन्हें अवसर तो दिया ही नहीं गया। वे चुपचाप बैठे अपनी अकर्मण्यता पर विसूरते यह जन-घोष सुनते रहे।

अब वह वक्त आया जब भुवनमोहिनी वहाँ प्रगट हो कर लोगों को दर्शन देने वाली थी। लोगों ने देखा, और मन्दिर के कोठे से महाराजा साहब तथा दीवान आदि ने भी देखा कि दो आदमी; भीड़ के बीच से छोटी छोटी चौकियाँ लाकर, भीड़ के बीच में एक चबूतरे पर रख रहे हैं। उन चौकियों पर एक सफ़ेद कपड़ा बिछा दिया गया। यह हो चुकने के बाद एक युवक भीड़ से बाहर निकला, उस मंच पर आकर खड़ा हुआ, उसने लोगों को झुक कर अभिवादन किया। उसके बाद उसने प्रस्ताव किया—उपस्थित सज्जनो! मेरा प्रस्ताव है कि आज की सभा के सभापति बाबा बजरंगी बनाये जायँ। इसके बाद एक किसान ने उठ कर काँपती हुई आवाज़ में कहा—मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

तुरन्त ही बाबा बजरंगी उस मंच पर जा बैठे और उन्होंने कहना शुरू किया—मेरा नाम सरदार सम्पूर्ण सिंह है। अन्याय पूर्वक मेरी जागीर मुझसे छीनी गई है। मेरी लड़कियों का अपहरण करके उन्हें राज्यमहल में डाल दिया गया है। मुझे आजन्म कैद की सजा दी गई थी। वहाँ से मैं किसी तरह छुटकारा पाकर आज अपने दुःख की कहानी आप लोगों को सुनाने के लिए यहाँ आया हूँ। आप लोग धैर्यपूर्वक सुनें।

भीड़ में इस तरह शान्ति छा गई जैसे वहाँ कोई आदमी ही न हो। बाबा बजरंगी रो रो कर अपनी कहानी कहने लगे। उसके बाद युवक वेषधारी चपला तुरन्तु ही मंच पर आकर खड़ी हुई। उसने अपनी पगड़ी उतार दी। अपनी मर्दानी पोशाक की नकाब हटा दी। उसके भीतर से वह एक बढ़िया रेशमी साड़ी पहने हुए वही चपला बन कर निकली जिसको महाराजा और उनके दरबारियों ने प्रथम दिन के सरकस के खेल में देखा था।

और देखते ही महाराजा ने अपने महल में बुलाकर उसे अपनी पलंग पर सुलाने की इच्छा प्रगट की थी।

चपला के बाद तुरन्त ही भुवनमोहिनी मंच पर आई। उसको भी सब लोगों ने पहचाना। भुवनमोहिनी ने रो रो कर अपनी सारी कहानी सुनाई और अन्त में भुवनमोहिनी ने कहा—भाइयो! आज की तारीख से आप सब लोग प्रतिज्ञा कीजिए कि प्रजामंडल के सदस्य बनेंगे। प्रजामंडल का ध्येय राजा का विरोध करना नहीं है, प्रजामंडल का ध्येय सिर्फ़ एक है। वह यह कि महाराजा अपनी स्वेच्छाचारिता को बन्द करें। ऐसे आदमी को दीवान मुकर्रर करें जिस पर प्रजा का विश्वास हो। अन्त में उसने कहा कि हम सब यह कार्य शान्ति और प्रेम पूर्वक करेंगे। हम सब रियासत के साथ हथियार से लड़ाई न लड़ेंगे। इसलिए नहीं कि हम हथियार की लड़ाई लड़ नहीं सकते। बल्कि इसलिए कि हम उसको व्यर्थ समझते हैं।

यह हो चुकने के बाद बाबा बजरंगी ने कहा—भाइयो! मैं अब तक छिपा छिपा भागता फिरा हूँ। लेकिन आज की तारीख से मैं छिपकर कार्य करना बंद करता हूँ। मैं राज्य के कर्मचारियों से यह कहता हूँ कि सरदार सम्पूर्ण सिंह मैं ही हूँ। अगर वे चाहें तो मुझे फिर से गिरफ़्तार करलें, लेकिन प्रजामंडल तब तक दम न लेगा जब तक राज्य का इस तरह निरपराधियों का सताना बन्द न हो जायगा। भुवनमोहिनी यहीं उपस्थित है। अगर वे उसे भी गिरफ़्तार करना चाहें तो उसे भी गिरफ़ार कर सकते हैं। पर प्रजामंडल खुली अदालत में उसका मुकदमा चाहेगा। चपला प्राण रहते गिरफ़्तार होना नहीं चाहती। वह राज्य कर्मचारियों की तरह हिंसा पर विश्वास रखती है। उसे अगर राज्य कर्मचारी गिरफ़्तार करने जायँगे तो वह उनसे लड़ाई लड़ेगी। अब उनकी इच्छा है। चाहे जो करें। अन्त में आप

सब लोगों से मैं प्रार्थना करता हूँ कि यदि राज्य कर्मचारी मुझे और भुवनमोहिनी को इसी समय गिरफ़्तार करना चाहें तो आप उनके काम में बाधा न डालें। मेरा स्थान राज्य के उत्तर पूर्व ढाक के वन में एक पाकड़ के वृक्ष के नीचे है। वहीं प्रजामंडल का दफ़्तर है। शीघ्र ही प्रजामंडल के प्रतिनिधि महाराजा के सामने उपस्थित होंगे और उनसे न्याय की प्रार्थना करेंगे। अगर हमारी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया गया; हमारी माँगें पूरी नहीं की गईं; तो हम किसी प्रकार का योग राज्य कार्य में न देंगे और न हम राज्य-कोष में एक पैसा अपना जमा करेंगे। बोलो, "प्रजा मंडल की जय !" इतने ज़ोर की आवाज़ हुई कि महाराजा और उनके प्रधान व्यक्तियों के हृदय हिल गए।

महाराजा साहब, उनके दीवान, उनके प्राइवेट सेक्रेटरी और उनके फ़ौज के कमाण्डर चुपचाप यह सब देखते ही रह गये। उस समय उनकी समझ में न आया कि उनको क्या करना चाहिए।

७

यह सभा गोधूली की बेला में समाप्त हुई थी। सभा के आयोजन करने वालों का यह इरादा था कि जब भगवान् वीहड़ेश्वर की आरती का समय हो, तब सभा समाप्त कर दी जाय, ताकि भुवनमोहिनी भी आरती में सम्मिलित हो सके।

सभा को समाप्त करते हुये और सम्मिलित होने वालों को बहुत धन्यवाद देते हुए, बाबा बजरंगी ने कहा—आप लोग

अपने अपने स्थान पर बैठे रहिए। भगवान् वीहड़ेश्वर की आरती का समय हो गया है। इसलिए भुवनमोहिनी अब मन्दिर के अन्दर जायेगी और भगवान् शंकर की आरती में शरीक होगी। यह कृत्य वह वर्षों से करती आई है तो आज क्यों नहीं करेगी ?

यह बात बाबा बजरंगी ऐसे विश्वास के साथ और ऐसी मुखमुद्रा बना कर कह रहे थे कि मानों वे ही उस मन्दिर के व्यवस्थापक हैं।

महेशानन्द शास्त्री सरकारी अधिकारियों के बीच में बैठे हुए थे और उन्हीं के रंग में रंगे हुए थे। उन्हें अपनी पुत्री से कभी भी इतने बड़े सभा में इस प्रकार भाषण करने की आशा न थी। स्त्रियों का इस प्रकार जन-साधारण में आना, वे उनके लिए अशोभन कार्य्य समझते थे। दीवान दिग्विजय सिंह का उन पर पूरा रंग चढ़ गया था और उन्होंने यही निश्चय किया कि वास्तव में उनकी पुत्री कुसंगति में पड़ गई है। उन्होंने निश्चय किया कि ऐसी नालायक कन्या के हाथ से भगवान् शंकर के मन्दिर को वे अपवित्र नहीं होने देंगे। वे तुरन्त ही उसे मन्दिर में प्रविष्ट होने से रोकने के लिये ऊपर से उतरे। मन्दिर के भीतर उनकी ही सत्ता थी। भगवान् शिव के पूजन-अर्चन में उनकी मर्ज़ी के बिना कोई पत्ता भी नहीं खड़क सकता था। आरती में सम्मिलित होने के लिए किसी को किसी प्रकार से प्रेरित करने का बाबा बजरंगी को कोई अधिकार नहीं था। वे तत्काल ही उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ भगवान् शिव की मूर्ति थी। वहाँ से अपनी पुत्री के प्रति अपने हृदय में क्रोध का ज्वालामुखी छिपाये हुए वे मन्दिर के उस द्वार की ओर आने लगे जिसमें से होकर भुवनमोहिनी को मन्दिर के अन्दर जाना था। महेशानन्द का लड़का और उनकी पत्नी भी एक सुरक्षित स्थान में बैठे हुए यह सब लीला देख रहे थे। पिता के हृदय में पुत्री के प्रति जितना

क्रोध उमड़ रहा था उतनी ही माता के हृदय में उसके लिए ममता उमड़ी आ रही थी। माता दौड़ कर अपनी बेटी को अपनी छाती से चिपटा लेना चाहती थी। जब से भुवनमोहिनी उनकी गोद में आई थी, एक क्षण के लिए भी उसका वियोग उनको नहीं हुआ था। जब भुवनमोहिनी स्कूल जाती थी या शिव मन्दिर में आरती के लिए जाती थी या किसी नातेदार के यहाँ जाती थी, उसके लिए माता बराबर बेचैन रहती थी और उसके आने की बाट जोहा करती थी। जिसको वह यह समझे बैठी थी कि वह इस संसार से उठ गई है, उसको स्वयं अपनी आँखों के सामने देखकर, उसके मधुर स्वर अपने कानों में पड़ते हुए पाकर, वह पागल सी हो उठी और अपनी पुत्री के पास जल्दी से जल्दी जाने के लिए मार्ग खोजने लगी।

बाबा बजरंगी के आदेश के अनुसार उपस्थित लोग जहाँ के तहाँ बैठे रहे। भुवनमोहिनी मंच से उठ कर धीरे धीरे शिव मन्दिर की ओर उसी तरह चली जैसे किसी समय में जनकपुर में सीता जी राम के गले में जयमाल डालने के लिए चली थीं। इस भीड़ में से अगर कोई आदमी हिला डुला या उठ कर एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर बढ़ा तो वह सिर्फ दो ही आदमी थे। एक थे महेशानन्द शास्त्री जो क्रोध के कारण अपनी पुत्री को अपमानित करने के लिए उठे थे और दूसरी थी भुवनमोहिनी की माता जो अपनी दुखी और अपमानित पुत्री को अपने हृदय को चीर कर उसके अन्दर छिपा लेना चाहती थी। महेशानन्द शास्त्री मन्दिर के द्वार तक नहीं पहुँच पाये थे, कि माता वहाँ पहुँच गई और उसने अपनी दोनों बाहों में अपनी पुत्री को आबद्ध कर लिया और फूट फूट कर रोने लगी।

माँ बेटी के मधुर मिलन के समय आकाश एक बार फिर "भुवनमोहिनी की जय" "भुवनमोहिनी की जय" के नाद से गूँज

उठा और दीवान दिग्विजय सिंह को मन्दिर की दीवारें ढहती हुई जान पड़ीं।

माता और पुत्री जहाँ एक दूसरे से मिल रही थीं, वहीं महेशानन्द शास्त्री भी उपस्थित हो गये। जनता ने शास्त्री जी को देखते ही उनके नाम की भी जयध्वनि की, लेकिन वे अपने आँखों में क्रोध की चिनगारियाँ भरे हुए थे। उनके चेहरे पर अपमान की कालिमा पुती हुई थी। महेशानन्द शास्त्री ने समस्त भीड़ को एक विचित्र शून्य दृष्टि से देखा। जिसका अर्थ शायद यह था—"मूर्खो तुम किसकी जय ध्वनि कर रहे हो? तुम किसके बहकाये में आ गये हो। तुम को क्या हो गया है?"

उन्होंने भुवनमोहिनी को कुछ न कह कर अपनी पत्नी से आज्ञा के स्वर में कहा—यह भेंट भलाई का उपयुक्त स्थान और अवसर नहीं है, घर चलो।

कानों में पिता के स्वर पड़ते ही भुवनमोहिनी माता को छोड़ कर अपने पिता की ओर लपकी, उनके चरणों को पकड़ने के लिए दौड़ी। वे उसके लिए पिता ही नहीं साक्षात् बीहड़ेश्वर महादेव थे। उनके चरणों को फिर से पाकर वह जैसे मुसीबतों के अन्त पर आ गई। किन्तु महेशानन्द शास्त्री ने अपने पैरों को इस तरह झटका जैसे उनमें कोई साँप लिपट गया हो।

अब तक जो भुवनमोहिनी दृढ़ थी। जनता के सम्मुख यह सम्मान पाकर स्वाभिमान से मस्तक ऊँचा किए हुए थी। वही अपने पिता के इस व्यवहार से अत्यन्त कातर और मलिन हो उठी। उसने विनय भरे आरत के से शब्दों में कहा—पिता! पिता! पिता!!

घृणा से उसकी ओर देखते हुए, दाँत पीसते हुए, महेशानन्द शास्त्री ने कहा—मैं तुमसे बात नहीं करना चाहता। कुल-कलिंकिनी, मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहता। दूर हो।

भुवनमोहिनी किंकर्त्तव्य विमूढ़ सी जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई। महेशानन्द शास्त्री के ये शब्द भुवनमोहिनी के ही नहीं बल्कि वहाँ उपस्थित अनेक लोगों के कानों में पड़े थे और बाबा बजरंगी ने भी उन्हें सुना था। अगर महेशानन्द शास्त्री ने उसे त्याग दिया था तो बाबा बजरंगी उसके दूसरे पिता बनकर वहाँ आये थे। वे उस अपमानित और पददलित कन्या को अपना समस्त स्नेह तथा आदर प्रदान करने के लिए प्रस्तुत थे। वहाँ से उन्होंने बैठे ही बैठे कहा—बेटी अपने कर्त्तव्य का पालन करो। पारिवारिक प्रश्न पीछे सुलझेगा। इस समय तुम आगे बढ़ कर भगवान शंकर की आरती उतारो।

मंदिर के अंदर आरती का सभी इन्तज़ाम हो चुका था। ताखों पर अगणित दीपक जल उठे थे। अन्दर के द्वार पर रक्खे हुए नगारों पर चोट देने के लिए पुजारियों के बालक पहुँच गये थे। शिव को चँवर डुलाने के लिए देवदासियाँ अपने अद्‌भुत वेष भूषा में तैयार खड़ी थीं और महेशानन्द शास्त्री के पुत्र की इन्तजारी थी, कि वह आकर आरती अपने हाथों में ले और वन्दना शुरू हो। जब से भुवनमोहिनी गायब हुई थी, महेशानन्द शास्त्री का पुत्र ही आरती उतारा करता था। लेकिन ग्यारह वर्ष का बालक अपने कर्त्तव्य की ओर इतना परायण नहीं रह सका जितना कि वह अपने बहन को पाकर उसके निकट रहने के लिए उत्सुक था। इस समय वह भी वहीं मौजूद था जहाँ उसकी माता और पिता थे और भुवनमोहिनी को स्नेह और घृणा की भेंट मिल रही थी।

बाबा बजरंगी का आदेश पाते ही भुवनमोहिनी अपने परिवार के लोगों को मार्ग के पूर्व परिचित चिन्हों की भाँति छोड़ कर निराश यात्री की भाँति आगे बढ़ी। अब मन्दिर के अंदर के घी के दीपक दीप्त हो उठे थे। वह उस जगह पर पहुँच गई

थी जहाँ भगवान् शंकर की मूर्ति थी। उसने जलती हुई आरती को अपने हाथ में उठा लिया और उसे आकाश की ओर उठाया। द्वार पर रखे हुए नगारे बज उठे। पुजारी वन्दना के स्वर गाने लगे और देवदासियाँ अपने हाथों के चँवर हिलाने लगीं। मन्दिर के बाहर एक बार फिर जय-घोष हुआ।

"बीहड़ेश्वर की जय! भुवनमोहिनी की जय !!"

इसी जय-घोष के बीच में महेशानन्द शास्त्री मन्दिर के अन्दर पहुँचे। उन्होंने भुवनमोहिनी के हाथों से आरती छीन ली और तिरस्कार भरे स्वर में कहा—प्राण रहते हुए मैं भगवान् शंकर का मन्दिर अपवित्र न होने दूँगा। जा, मन्दिर के बाहर निकल।

भुवनमोहिनी पिता के हाथों में आरती देकर, आँखों में जल भरे, चुपचाप मन्दिर के बाहर चली आई। उस समय का उसका करुण वेष बहुत लोगों ने देखा था। भीड़ में से फिर एक बार आवाज़ उठी—"भुवनमोहिनी की जय" और लोग अपने अपने घरों को जाने लगे।

राज्य कर्मचारी अब भी अपना कर्त्तव्य निश्चित नहीं कर सके थे। इसलिए उनकी ओर से किसी किस्म का नियंत्रण या ज़्यादती न हुई।

भुवनमोहिनी ने बाबा बजरंगी के निकट आकर उन्हें मस्तक झुकाया और अपना हाथ जोड़कर कहा—पिता मेरे रक्षक तुम्हीं हो।

बाबा बजरंगी ने भुवनमोहिनी की पीठ पर हाथ रख कर कहा—बेटी चिन्ता मत करो। बीहड़ेश्वर महादेव हम सब की रक्षा करेंगे।

महाराजा विष्णुदेव सिंह मन्दिर में अपने पिता के दफ़्तर की खिड़की से यह सब दृश्य देख रहे थे। भुवनमोहिनी को मंच पर आते, उसको सम्भाषण करते, मंच से उसको मन्दिर की

ओर बढ़ते, उसकी एक-एक गति को उन्होंने मंत्रमुग्ध की भाँति देखा था। भुवनमोहिनी उन्हें वास्तव में सुन्दरी जान पड़ी। उन्हें जान पड़ा शायद पृथ्वी पर चन्द्रमा ही उतर आया हो।

भुवनमोहिनी की काली और लम्बी बरौनियाँ, बड़ी बड़ी आँखें, उसकी शरीर की गठन, उसके होठों का कम्पन, और सब से अधिक उसके यौवन का मादक प्रभाव, उन पर इतना अधिक पड़ा कि वे विचलित हो उठे। उन्हें भूल गया कि वे अस्पताल में पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह से क्या कह कर आये थे। वे चाहे जिस प्रकार हो, भुवनमोहिनी को अपने रंगमहल के अन्दर दाखिल कर लेने के लिए व्याकुल हो उठे। उन्हें जान पड़ा कि इस सुन्दरी नारी के बग़ैर उनका एक मिनट भी जीवित रहना संभव नहीं हो सकता। इस नारी की ऐसी अद्भुत रचना ब्रह्मा ने उन्हीं के लिए की है। नहीं तो उन्हीं के राज्य में उसका जन्म क्यों होता? वे भुवनमोहिनी को देख रहे थे। और यही बराबर मनसूबा बाँध रहे थे कि वे भुवनमोहिनी को किस प्रकार और कैसे अपने अधिकार में ले आवें?

प्रजा के प्रति कर्तव्य पालन का भाव उनके हृदय में पानी के बुलबुले की भाँति एक बार उठकर फिर विलीन हो गया। उन्होंने सोचा, उन्होंने सुख भोग के लिए ही जन्म ग्रहण किया है और प्रजा पिसने के ही लिए बनी है। किले से मन्दिर आते समय उनके हृदय में जो सद्भावना की आँधी उठी थी, वह अब समाप्त हो गई थी और उनके हृदय का राक्षस जो नित्य प्रति रात्रि में जगा करता था, आज दिन ही में भगवान् शंकर की आरती के समय जग उठा। जिस भगवान् शंकर ने अपने तीसरे नेत्र से मदन का दहन किया था, उन्हीं के मन्दिर में उनके परम भक्त महाराजा विष्णुदेव सिंह को आहत कर मानों उनसे उसने अपना बदला लिया। वे मदन के वाण से आहत हो गये।

भुवनमोहिनी की एक एक बात उसकी एक एक गति उनके हृदय में नई नई सृष्टि करती सी जान पड़ी। उन्होंने अपने मन में निश्चय कर लिया कि बग़ैर भुवनमोहिनी के राज्य का समस्त सुख फीका है। उन्होंने दीवान दिग्विजय सिंह को सम्बोधित करके कहा—मैं उस समय परिस्थिति को ठीक ठीक समझ नहीं सका था। वास्तव में मुझे भी यह अनुभव हो रहा है, कि सरदार सम्पूर्ण सिंह इस विद्रोह की तह में हैं। इस विद्रोह के दबाने के लिए मैं आपको पूर्ण अधिकार देता हूँ। आप जो उचित समझें, करें।

दीवान दिग्विजय सिंह ने महाराजा विष्णुदेव सिंह की बुद्धि की प्रशंसा की। सरदार सम्पूर्ण सिंह को कोसा और कहा—बिना सख्ती किए अब काम न चलेगा। आज ही यह फरमान निकल जाना चाहिए कि प्रजामंडल ग़ैर कानूनी संस्था है, जो इससे किसी किस्म का सम्बन्ध रक्खेगा उसे कठोर दंड दिया जायगा।

"अवश्य!"

दीवान दिग्विजय सिंह से इतनी बात करने के बाद महाराजा विष्णुदेव सिंह अपने किले में चले गये और जाते ही उन्होंने अपनी पासबानों को बुलाकर उनके साथ शराब की कई बोतलें खाली कर दीं। नशे में उन्होंने अपने विश्वास पात्र सेवकों और सेविकाओं से रह रह कर भुवनमोहिनी को हाजिर करने की आज्ञा दी।

८

बीहड़ की वही निर्जन बनखन्डी है। पाकड़ का वही वृक्ष है। दिशाओं में उसी प्रकार मनहूसियत छाई हुई है लेकिन आज उस पाकड़ के वृक्ष के नीचे प्रज्वलित अग्नि के गिर्द जो तीन व्यक्ति बैठे हैं, उनमें पहले की सी उदासी और असमर्थता के भाव नहीं हैं। आज उनके सामने ध्येय है। अब तक उनके सामने जो अन्धकार छाया हुआ था उसके पार प्रकाश की एक रेखा उन्हें झलक उठी है। वे उस दिन की कल्पना कर रहे हैं, जब बीहड़ राज्य से अनाचार का सदा के लिए अंत हो जाएगा।

उन व्यक्तियों को पहचानने में पाठकों को देर न लगेगी। वे हैं बाबा बजरंगी, भुवनमोहिनी और चपला। बीहड़ेश्वर महादेव के मन्दिर के पास प्रजाजनों की जो महती सभा हो गई थी, उसके इतना सफल होने की उन्हें भी आशा न थी। वे सिर्फ यही सोचे बैठे थे, कि राज्य कर्मचारियों से भयभीत लोग मन में इच्छा रहते हुए भी वहाँ जमा होने का साहस न करेंगे। लेकिन चपला ने जो पोस्टर तैयार कराए थे। उनमें कुछ ऐसा आकर्षण था कि लोग किसी भी प्रकार उनकी अवहेलना न कर सकते थे।

बात यह थी कि चपला जहाँ शारीरिक पराक्रम और कौशल दिखलाने में कुशल थी, वहीं वह सुन्दर आकर्षक विज्ञप्तियाँ लिखने में भी सिद्धहस्त थी। प्रजामण्डल का निर्माण कर चुकने के बाद इन तीनों व्यक्तियों ने यह निश्चय किया कि कार्य किस प्रकार प्रारम्भ हो। उन्हें घूम फिर कर चपला के ही प्रस्ताव पर आना पड़ता था। वह प्रजामंडल को राज्य के कर्मचारियों की दृष्टि से तब तक छिपा कर रखना चाहती थी जब तक प्रजा

उसके महत्व को समझ न जाय और उसके लिए सब प्रकार के जोखिम उठाने को तैयार न हो जाय।

भुवनमोहिनी का स्वभाव अत्यन्त क्षमाशील था। वह बदला लेना एक अस्वाभाविक कार्य समझती थी। जिन लोगों ने उसका अपहरण किया था, जिनके कार्य से वह अपने पिता से तिरस्कृत होकर इस दयनीय अवस्था को पहुँची थी, उनके प्रति भी उसके हृदय में लेशमात्र भी द्वेष का भाव न था। वह यही सोचती थी, कि वे अज्ञानी हैं और जो कुकृत्य कर रहे हैं वह वास्तव में अज्ञानता वश कर रहे हैं या भय से।

वह सोचती थी कि किसी भी मनुष्य से उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं लिया जा सकता। अपनी इच्छा के विरुद्ध मनुष्य जो काम करता है वह केवल भय से प्रेरित हो कर ही करता है। अगर वह अपने हृदय से भय का वृक्ष उखाड़ कर फेंक दे तो उसका दमन किसी प्रकार सम्भव नहीं। इसी भावना के आधार पर वह बीहड़ की समस्त प्रजा में यह विचार भरना चाहती थी, कि प्रजा राज्य कर्मचारियों के साथ शासन के प्रत्येक कार्य में सहयोग देना बन्द कर दे, चाहे जो मुसीबत झेलनी पड़े। और प्रजा उन्हें अपना सहयोग तब प्रदान करे जब राज्य के कर्मचारी उसकी मर्ज़ी के मुताबिक काम करने का व्रत लें।

चपला की सर्वथा भिन्न राय थी। उसकी धारणा यह थी कि जन साधारण की प्रवृत्ति भेंड़ की सी होती है और जैसे भेड़ें आँख मूँद कर चरवाहों के दिखाए सब्ज बाग़ की ओर उनके आवाज़ के इशारे बढ़ती जाती हैं, वैसे ही जन साधारण भी अपने नेता के आदेश का पालन करते हैं। ज़रूरत सिर्फ इस बात की होती है कि जनता के अन्दर प्रबल इच्छा रखने वाला कोई नेता पैदा हो। अपने ही जैसे विचार वालों का एक दल संगठित कर के उसके द्वारा वह जनता में अपने विचार का प्रचार करे। अपने बाहुबल

से उसकी सफलता के लिये उद्यत रहे। चपला हिंसा में विश्वास करती थी, युद्ध में विश्वास करती थी, विद्रोह में विश्वास करती थी। उसकी धारणा थी कि संसार में समाज की सुव्यवस्था और सुशासन के लिए संगठित हिंसा एक आवश्यक वस्तु है। महाभारत जैसे युद्ध संगठित हिंसा के ही रूप थे। वह प्रजा में हिंसक विद्रोह का भाव भरना चाहती थी। उसका ख़याल था कि इसके बिना स्वेच्छाचारी शासन का अन्त हो ही नहीं सकता।

बाबा बजरंगी अब बीतराग हो चुके थे। वे जालिमों के साथ रह कर जुल्म भी कर चुके थे और पीड़ितों के साथ रह कर जुल्म की आँधिया भी झेल चुके थे। उनका ख्याल था कि हिंसा से हिंसा बढ़ती है, घृणा से घृणा उत्पन्न होती है, और प्रेम से प्रेम पैदा होता है। वे इतना सताये गये थे, त्रस्त किये गये थे, कि वे स्वयं सताने वालों को सताना व्यर्थ समझते थे; क्योंकि उस दशा में सताने वालों की जो दुर्दशा होगी उसकी अपने अनुभव से कल्पना करके वे उनके प्रति सहानुभूति से उमड़ पड़ते थे। राज्य के जिन कर्मचारियों ने उन्हें इस दुर्दशा के घाट उतारा था और उनके परिवार के लोगों का अपहरण किया था, उनसे बदला लेने की भावना उनके मन में न थी। अपने कष्ट से, अपने त्याग से, और अपनी तपस्या द्वारा वे उनका मत परिवर्तन करना चाहते थे। वे चाहते थे कि ऐसा आन्दोलन खड़ा किया जाय, जनता में सद्भाव का प्रचार इतना किया जाय, प्रेम और अहिंसा को इतना जगाया जाय और लोकमत इतना प्रबल कर दिया जाय कि आततायी और स्वेच्छाचारियों को कुकृत्य की ओर क़दम बढ़ाने में संकोच हो, लज्जा मालूम पड़े।

इस प्रकार अँधेरी रात में, पूर्व से उदय होते हुए चन्द्र के प्रकाश में, पाकड़ के वृक्ष के नीचे प्रज्ज्वलित अग्नि के गिर्द बैठकर इन तीनों व्यक्तियों ने जब प्रजामंडल का निर्माण किया था, तब

तीनों के हृदय सरोवर में प्रजामंडल के चलाने की तीन विभिन्न लहरें उठी थीं।

बाबा बजरंगी और भुवनमोहिनी की विचार धारा एक में मिल कर बड़े वेग से प्रवाहित हो उठी। चपला को जान पड़ा कि उन दोनों की विचार धारायें एक व्यर्थ के स्वप्न में परिवर्तित होकर बीहड़ राज्य के निवासियों को हमेशा के लिए गुलामी की जंजीर में जकड़ देंगी। यह नीति एक ऐसी मनोवृति पैदा कर देगी कि बीहड़ के निवासियों की फिर कभी सिर उठाने की इच्छा न होगी। चपला को बाबा बजरंगी और भुवनमोहिनी की अहिंसा जंगल में उगने वाली घास की अहिंसा सी जान पड़ी जो नित्य प्रति ढोरों और जंगली जानवरों द्वारा रौंदी जाती है और पद-दलित होती है और फिर भी शान्त रहती है। उसने विवाद के बीच में रह-रह कर आन्तरिक प्रेरणा से कहा—बीहड़ नगर को ढोरों से रौंदी हुई घास में परिवर्तित करने का पाप आप अपने सिर न लें। इससे बेहतर तो यही है कि आप जहाँ बैठे हैं वहीं बैठे रहें और हम दोनों को फिर कृष्ण सागर में डूब कर मर जाने दें।

बाबा बजरंगी ने इसके उत्तर में एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर कहा—चपला क्या हिंसा से हम इतने बड़े संगठित राज्य का मुकाबला कर सकेंगे? मैं अहिंसा में विश्वास रखते हुए भी तुम्हारा साथ देने के लिए तैयार हूँ। लेकिन तुम कल्पना तो करो कि जिस वक्त रियासत की हिंसा की मशीन चलेगी उस वक्त तुम्हारी हिंसा क्या उसमें पिस न जायेगी। हिंसा से युद्ध करने के लिए तुमको भी एक ज़बरदस्त हिंसा का संगठन करना पड़ेगा। इस प्रयोग में हमें बहुत से मनुष्यों का रक्त-पात करना पड़ेगा और इस प्रकार क्या हमारे तुम्हारे हाथों कितने बेगुनाह लोग नहीं मारे जायेंगे? और अहिंसा के ज़रिए हम क्या प्राणियों का रक्त-पात

नहीं बचा सकते और इसके साथ ही क्या हम राज्य की व्यवस्था नही बदल सकते ? यदि हमारी बात बीहड़ निवासियों के हृदय में घर कर गयी और उन्होंने राज्य कर्मचारियों की मर्जी के मुताबिक न चल कर मौत को ही अधिक पसंद किया तो क्या बीहड़ राज्य के कर्मचारी सारी प्रजा को मौत के घाट उतारने के लिए तैयार हो सकेंगे ? क्या निहत्थे मानवों के सर्वनाश में राज्य कर्मचारी स्वयं अपना विनाश न देख लेंगे ? भौतिक भोगों की लालसा से भरा हुआ हृदय इस बात को क्या बरदाश्त कर सकेगा कि राज्य के सब कारोबार बन्द हो जाँय, और लगान के रूप में राज्य-कोष में एक पैसा भी जमा न हो ? मेरा तो हृदय कहता है कि हमारे इस अहिंसक-संगठन से राज्य को अपने घुटने टेक देने के लिए विवश होना पड़ेगा।

चपला किसी प्रकार बाबा बजरंगी और भुवनमोहिनी के तर्क को स्वीकार करने के लिए राजी न हुई। तीन व्यक्तियों की इस छोटी सी कमेटी में भी इतना मत भेद हो गया कि प्रजामंडल का काम आगे बढ़ना असम्भव हो गया।

अन्त में भुवनमोहिनी ने गिड़गिड़ा कर चपला से कहा—प्यारी बहन ! तुम्हारी चाहे जो धारणा हो, इस समय प्रजामंडल को दृढ़ बनाने के लिए, अहिंसात्मक रूप से ही उसे चलाने में हमारी सहायता करो। तुम हिंसा में विश्वास रखते हुये भी इस प्रयोग में हमारा साथ दे सकती हो। जब तक हमारे साथ या हमारे बीच में रहो अहिंसा के ही व्रत का पालन करो। यह एक प्रयोग है। अगर इसके बाद हम देखेंगे कि यह प्रयोग कारगर नहीं होता तो हम तुम्हारी हिंसा की नीति को स्वीकार करेंगे। ऐसी दशा में बाबा बजरंगी और मैं दोनों साथ देंगे। क्यों बाबा ?

भुवनमोहिनी ने घूमकर बाबा बजरंगी की ओर देखा।

"क्यों नहीं, तब मैं स्वयं अपने हाथ में तलवार लेकर आगे आगे चलूँगा और चपला के इशारा मात्र पर ही प्रहार कर बैठूँगा।"

चपला ने कहा—इतना मैं स्वीकार कर सकती हूँ कि तुम्हारे इस आन्दोलन से सताई हुई प्रजा में जागृति उत्पन्न हो सकती है और मैं तुम्हारे साथ उस समय तक रहूँगी। लेकिन मैं यह जानती हूँ कि रियासत के कर्मचारी और उच्चपदाधिकारी हमारे तुम्हारे त्याग, तप, व्रत, संयम और सत्य के महत्त्व को नहीं समझ सकते और वे गुरुतर अनाचर करने पर आमादा होंगे। उस समय मैं नहीं कह सकती कि मैं क्या करूँगी। इसलिए मैं आप से क्षमा माँगती हूँ कि आप मुझे मेरे ही ढंग से काम करने दें। आप मेरे कार्य में कोई सहयोग न करें लेकिन मैं आपके कार्य में पूर्णरूप से सहयोग करूँगी और जब तक मैं आप के बीच में रहूँगी अहिंसक बनी रहूँगी।

बाबा बजरंगी ने कहा कि ऐसा हो सकता है। पर प्रजा को स्थिति साफ़-साफ़ बता देनी चाहिए। उनका ख्याल था कि जनता का आन्दोलन सत्य की नींव पर ही खड़ा हो सकता है।

भुवनमोहिनी काफ़ी रत्न-आभूषण पहिने हुए थी। चपला पुरुष का वेष धारण करके उन भूषणों को बाजार में ले जाकर बेंच आई और वही प्रजामण्डल का प्रथम कोष था। बाबा बजरंगी की धूनी के गिर्द जमा होने वाले चरवाहे प्रजामण्डल के प्रथम सदस्य थे। इन्हीं चरवाहों की मदद से एक महीना के अन्दर तीनों व्यक्तियों ने बीहड़ राज्य के गाँव-गाँव में यह सूचना पहुँचा दी थी कि अनाचार का अन्त करने के लिए प्रजामण्डल की स्थापना हो गई है। प्रत्येक प्रजा-जन का फर्ज़ है कि वह प्रजा-मण्डल का कम से कम एक आना वार्षिक चन्दा दे कर सदस्य बने और निम्नलिखित प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करे या अंगूठे का निशान लगावे।

"आज की तारीख से मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं राज्य की ओर से प्रजा पर होने वाले किसी भी अत्याचार में योग न दूँगा, भले ही मैं मार डाला जाऊँ, भले ही मेरा घर फूँक दिया जाय। मैं महाराजा के विरुद्ध नहीं हूँ। मैं उनको गद्दी से उतारना नहीं चाहता। मैं सिर्फ़ यह चाहता हूँ कि राज्य की व्यवस्था इस तरह बदल दी जाय की वह प्रजा के लिए कम से कम दुःखदायी हो। मैंने प्रजामण्डल के नियम पढ़ लिए हैं और इन नियमों का प्राण रहते हुए पालन करूँगा।"

बीहड़ेश्वर में जिस दिन सभा हुई थी, उससे कई दिन पहले ही बाबा बजरंगी के पास हजारों पर्चे उस चन्दे के साथ आगये थे और इस पाकड़ के वृक्ष के नीचे काफ़ी चहल-पहल हो गई थी।

इन तीनों व्यक्तियों ने चरवाहों की मदद से इतनी ज़मीन तैयार कर ली कि प्रजा के हृदय में इस नई संस्था का निर्माण करने की इच्छा प्रबल हो उठी और वे सब कष्ट झेलकर उसको चलाने के लिए जल्द से जल्द तैयार हो गये।

बाबा बजरंगी ने भुवनमोहिनी और चपला से कहा कि अब समय आ गया है जब हमें इस कार्य को प्रत्यक्ष रूप से करना चाहिये; क्योंकि तभी प्रजा से अधिकाधिक सहयोग प्राप्त हो सकता है और तभी हम राज्य कर्मचारियों पर लोकमत का दबाव डाल कर उनको सुमार्ग की ओर ले चल सकते हैं।

बाबा बजरंगी यह जानते थे कि ज्योंही हम प्रगट होंगे गिरफ़्तार करके जेलखाने में डाल दिए जाएँगे। वे यह भी जानते थे कि चपला और भुवनमोहिनी को भी गिरफ़्तार करके जेलखाने में डाला जा सकता है। या महाराजा के ऐश्वर्य-सदन में उनकी वासना में झुलसने के लिए वे बलपूर्वक घसीट कर ले जाई जा सकती हैं। तथापि उन्हें यह भी विश्वास था, कि यदि वे इन बातों को प्रजाजन की महती सभा में स्पष्ट कर देंगे तो

राज्यकर्मचारियों का यहाँ तक साहस न होगा। वे अधिक से अधिक उनको गिरफ़्तार कर लेंगे। उनकी गिरफ़्तारी से प्रजा में अनाचार का सामना और राजसत्ता का विरोध करके अपनी रक्षा करने की भावना जाग्रत होगी और लोग विरोध प्रदर्शित करने के लिए सामने आवेंगे। तब राज्य का जेलखाना उन सबको बन्द करने के लिए काफ़ी न होगा। राज्य का अस्त्र-शस्त्र उन सबको काटने के लिए काफ़ी न होगा और अन्त में राज्य को हार मानकर झुकना ही पड़ेगा।

इसलिए अपने कर्त्तव्य को समझकर वे अन्दर ही अन्दर जिस संस्था का निर्माण कर चुके थे, उसको अब एक सार्वजनिक रूप देने के लिए लालायित हो उठे। बीहड़ेश्वर की सभा इसी का परिणाम थी।

इतने लोग जमा हुए थे कि उसमें राज्य की पुलिस खो सी गई थी। "प्रजामण्डल की जय" के इतने ज़ोर के गगनभेदी नारे लगे थे कि राज-कर्मचारियों का हृदय दहल गया था और वे किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये थे।

आज ये तीनों व्यक्ति पाकड़ के वृक्ष के नीचे अपनी इसी अद्भुत सफलता पर प्रसन्न हो रहे थे। परन्तु यह कार्य का अन्त नहीं था, यह तो कार्य की शुरुआत थी। वे यह सोच रहे थे कि देखें अब राज्य की ओर से इसकी क्या प्रतिक्रिया होती है और प्रजा की ओर से इस प्रतिक्रिया का क्या उत्तर दिया जाता है। वे यही मनसूबे बाँध रहे थे। बाबा बजरंगी सोच रहे थे, उनके गिरफ़्तार हो जाने के बाद प्रजामंडल का कार्य कौन चलायेगा।

बाबा बजरंगी की सूची में ऐसे ऐसे नाम आये थे जो रियासत के अन्दर सबसे कायर और डरपोक समझे गये थे। इन तीनों व्यक्तियों को अब विश्वास हो चला था कि रियासत की ओर

से प्रजामंडल का किसी प्रकार दमन नहीं किया जा सकता; क्योंकि प्रजा एक ही सभा में एकाएक जगकर उठ बैठी थी। अब किसी तरह अपने सामने होने वाले अन्यायों से वह न तो आँख बन्द करेगी और न वह उनको सहन ही करेगी।

उनको अगर दुःख था तो केवल यह कि भुवनमोहिनी के पिता महेशानन्द शास्त्री और बैरिस्टर मदनगोपाल दोनों उससे बहुत दूर हो गये थे। वे दोनों राज्य के पक्ष में थे। इसका सबसे अधिक दुःख भुवनमोहिनी को था। रह-रह कर उसके मन में यही प्रश्न उठता था कि क्या कोई दिन आ सकता है, जब वह अपने पिता का स्नेह पा सकती है और अपने प्रियतम की प्यारी बन सकती है? लेकिन यह विचार सामने की कर्त्तव्य-धारा में बह जाता था। उसके लिए घर-कुटुम्ब माता-पिता सब स्वप्न की बात हो गये थे। सत्य था, केवल प्रजामंडल! उसके नाम से रियासत के अत्याचार और अनाचार से लड़ना और इस युद्ध में, इस लड़ाई में, अपने प्राणों की आहुति दे देना!

इधर राज-सत्ता से इस प्रकार लड़ने के मनसूबे बाँधे जा रहे थे, उधर महाराजा विष्णुदेव सिंह क्षण भर सजग होकर फिर वैसे ही गाफिल हो गये थे और रास रङ्ग में पड़ गये थे। वे सिर्फ इसी मंसूबे में डूब उतरा रहे थे कि वह दिन कब आयेगा जब मैं भुवनमोहिनी को अपनी बाहों में आबद्ध देखूँगा और उनके कर्मचारी इस मंत्रणा में तल्लीन थे कि किस प्रकार प्रजा-मंडल का सर्वनाश कर दिया जाय।

९

पता नहीं महेशानन्द शास्त्री की पत्नी का नाम शुरू से ही उमा था या यह नाम स्वयं शास्त्री जी ने रक्खा था। लेकिन महेशानन्द पर उमा का वैसा ही प्रभाव था, जैसा कि भगवान् शंकर के ऊपर पार्वती जी का था। अपने सौन्दर्य से, अपने प्रेम से, अपनी विनय से और अपनी सेवा से जिस प्रकार पार्वती जी ने भगवान् शंकर को अपने अनुकूल बनाया था वैसे ही उमा ने महेशानन्द शास्त्री पर विजय प्राप्त की थी।

उमा एक गरीब ब्राह्मण की लड़की थी, जो महेशानन्द शास्त्री के परिवार में रसोइया का काम करता था। यह जिन दिनों की बात है, महेशानन्द एक संस्कृत पाठशाला में पढ़ते थे या यों कहना चाहिए कि उन्हीं के लिए पाठशाला खोली गई थी। ब्राह्मण रसोइया कभी कभी राज्य पुरोहित के यहाँ अपनी पुत्री को लेकर आता था। यह लड़की उस पाठशाला के गिर्द मँडराया करती थी, जिसमें बैठकर महेशानन्द संस्कृत के व्याकरण और साहित्य का अध्ययन करते थे। यह लड़की बड़ी ही तीक्ष्ण बुद्धि वाली थी। कानों में शब्द पड़ते २ इसे बिना पढ़े ही संस्कृत का व्याकरण और कितने ही श्लोक कंठ हो गये और उन श्लोकों को गा-गा कर वह अपने ग़रीब माता पिता को सुनाने लगी और उनका मनोरंजन करने लगी। लड़की की चमत्कारिक बुद्धि का परिचय धीरे धीरे पास पड़ास वालों को और अन्त में महेशानन्द के पिता राज्य पुरोहित को मिला और वह उनके घर में आदर का स्थान पाने लगी।

राज्य पुरोहित ने उस लड़की को भी महेशानन्द के साथ शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसी पाठशाला में बिठला दिया। ज्यों

ज्यों आयु बढ़ी, दोनों में घनिष्टता होती गई और एक दिन जब वसंत ऋतु छाई हुई थी, पाठशाला की वाटिका में कोयल कूक रही थी, एक आम के वृक्ष के नीचे महेशानन्द ने इस लड़की को उमा कह कर पुकारा और प्रतिज्ञा की कि इसके सिवाय वे और किसी से विवाह न करेंगे। उन्होंने अपने हाथ से आम की मंजरी तोड़ कर उमा के दोनों कानों पर रखी और उसको अपनी बाहों में आबद्ध कर के उसका मुख चुम्बन करने वाले थे कि उमा लज्जा से छुई मुई सी हो कर इस तरह सिकुड़ गई कि महेशानन्द के लिए उसको उसी अवस्था में छोड़ देना पड़ा।

उस समय दोनों के मुख लज्जा से लाल हो उठे थे; दोनों के हृदय एक विचित्र गति से स्पन्दित हो उठे थे। दोनों के सौभाग्य से महेशानन्द के पिता उसी ओर से निकले थे और उनकी दृष्टि उन पर पड़ गई थी।

पिता को अपने पुत्र और ब्राह्मण रसोइया की पुत्री की यह जोड़ी बहुत ही सुन्दर प्रतीत हुई। वे राज्य पुरोहित होते हुए भी त्यागी ब्राह्मण थे, रत्न पारिखी थे, उन्हें अनुभव हुआ उनके घर में पुत्र वधू के रूप में आदर पाने वाली इस रसोइया की पुत्री से बढ़ कर और कोई युवती नहीं हो सकती। उन्होंने तत्काल ही अपने रसोइया को बुलवाया और उसके सामने अपना विचार प्रगट किया। रसोइया तो जैसे स्वप्न लोक में पहुँच गया। उसके एकमात्र वही पुत्री थी। उसकी पत्नी के स्वर्ग-वास के समय वह पाँच साल की थी। तब से वह एक मात्र इसी पुत्री के लिए जीवन धारण किये हुए था। इसी की चिन्ता में वह घोर परिश्रम करता था और अगर उसको चिन्ता थी तो सिर्फ यह, कि लड़की अच्छे घर में ब्याही जाय ताकि बचपन में माता के अभाव, और पिता की ग़रीबी के कारण उसको जो सुख नहीं मिल सकता था, वह ससुराल में पहुँचने पर मिले।

राज्य पुरोहित का प्रस्ताव सुन कर वह आश्चर्य्य चकित रह गया। मानो उसकी पत्नी इसीलिए स्वर्ग सिधारी थी कि वह लड़की को अपने साथ लेकर राज्य पुरोहित के घर जाय और इस प्रकार लड़की के दिन लौटें। उसका हृदय गद्‌गद् हो गया, शरीर पुलकित हो उठा, उसकी आँखों में अश्रु उमड़ आये और उसने अपना मस्तक झुका कर विनीत भाव से राज्य पुरोहित से कहा—महाराज!

इसके आगे वह कुछ नहीं बोल सका। उसका गला रुँध गया। कृतज्ञता के बोझ से दब कर वह जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया।

शुभ मुहूर्त आने पर महेशानन्द की शादी इस परम सुन्दरी और बुद्धिमती नारी-रत्न से हो गई। उस दिन से दोनों के बीच में कभी किसी प्रकार का मतभेद नहीं उत्पन्न हुआ था। दोनों एक प्राण दो-देह से रह रहे थे। दोनों के हृदयों में एक विचार एक ही साथ उठता था। यदि महेशानन्द कहीं जाने की या तीर्थ यात्रा करने की बात सोचते थे तो वैसा विचार उमा के हृदय में पहले ही से उठ जाता था, और वह उनसे कहती थी कि फलाँ जगह चलना चाहिए या फलाँ तीर्थ यात्रा के लिए निकलना चाहिए। विवाह के दो वर्ष बाद उनके घर में भुवनमोहिनी ने जन्म ग्रहण किया। बीहड़ राज्य था। घर में पहले पहल कन्या का जन्म वहाँ अशुभ माना जाता था; किन्तु महेशानन्द के पिता राज्य के पुरोहित ने अपने घर पर बेहद खुशियाँ मनाईं। कई दिनों तक नाच गान और उत्सव होते रहे, और जब कन्या के नामकरण का दिन आया तो राज्य के, और दूसरे राज्य के बड़े बड़े पंडित जमा हुए, तब उसका नाम एक मत से सबों ने भुवनमोहिनी रक्खा; क्योंकि उसका रूप, उसकी चितवन, विश्व को मोहने वाली थी। ज्योतिषियों ने उस कन्या की जन्म कुण्डली बनाई और यह घोषित किया, कि इस कन्या का यश इस राज्य

के अन्दर युग युग तक व्याप्त रहेगा। यह बड़ी भाग्यशालिनी और अपने कुल का नाम उज्वल करने वाली होगी।

भुवनमोहिनी के जन्म से महेशानन्द शास्त्री और उनकी पत्नी का प्रेम और भी दृढ़ हो गया था और उसके बाद उनके दो और लड़के पैदा हुए। बड़ा लड़का अब ग्यारह साल का था, और छोटा चार साल का, इन बच्चों के जन्म से पति पत्नी का प्रेम क्रमशः और दृढ़ होता गया। एक भी दिन ऐसा नहीं गया था, जब कि एक को दूसरे के मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कोई काम करना पड़ा हो, या किसी बात को सोचना पड़ा हो। पति की इच्छा पत्नी की इच्छा थी। और पत्नी की इच्छा पति की।

अपने पिता राज्य पुरोहित के स्वर्गवास के बाद महेशानन्द शास्त्री राज्य पुरोहित घोषित हुए और बीहड़ेश्वर महादेव के पूजन, अर्चन और सेवा का भार उन पर पड़ा। मन्दिर का यह नियम था, कि बीहड़ेश्वर महादेव की आरती कुमारी कन्या और यदि कुमारी कन्या न हो तो कुमार बालक के हाथों उतरवाई जाती थी। महेशानन्द के विवाह के बाद बीहड़ेश्वर की आरती उतारने के लिए ब्राह्मणों के बालक और बालिकाओं की बराबर तलाश हुआ करती थी। लेकिन जब भुवनमोहिनी तीन साल की हो गई थी तब महेशानन्द शास्त्री उसके हाथों में आरती का पात्र पकड़वाकर उसी से आरती उतरवाया करते थे। और जब वह बड़ी हुई तब तो वह कार्य एकमात्र उसी का हो गया।

मन्दिर में जिस समय अगणित घृत-दीप जलते, नगारे और घड़ियाल बज उठते, देवदासियाँ शंकर की मूर्त्ति के गिर्द चँवर डुलाती हुई नृत्य करती थीं और भुवनमोहिनी अपने हाथों में आरती लेकर दशों दिशाओं में घुमाती थी, उस समय देखते ही बनता था। जान पड़ता था कि विश्व की समस्त छवि इसी एक कन्या में केन्द्रित हो उठी है।

ज्यों ज्यों भुवनमोहिनी वयस्क होती गई, त्यों त्यों आरती भी आकर्षक होती गई। उसके आरती उतारने की चर्चा महाराजा विष्णुदेव सिंह के भी कानों तक पहुँची। वे भी आरती के समय मन्दिर में उपस्थित होने लगे।

जिस दिन महाराजा विष्णुदेव सिंह की नज़र उसपर पड़ी थी उसी दिन वे उसपर मुग्ध हो गए थे। जिन भगवान् शंकर ने मदन का दहन किया था, उन्हीं के पवित्र मन्दिर में भुवन-मोहिनी की छवि महाराजा के हृदय में वासना का उद्गार कर सकती है, यह बात राज्य पुरोहित ने कभी नहीं सोचा था। वे पिता थे, इस तरह की बात सोच भी नहीं सकते थे। उन्हें क्या मालूम था कि भुवनमोहिनी की यह छवि, उसकी भगवान शंकर की यह सेवा, उसके लिए संकट का कारण हो जाएगी।

उस दिन जब वे पुत्री से कुपित मन, और लज्जित मुख, बीहड़ेश्वर के मन्दिर से लौटे थे, तब रह रह कर उनके सामने गत जीवन के यही सुखद क्षण उपस्थित हो जाते थे। मार्ग में उनसे और उनकी पत्नी से कोई बात नहीं हुई थी। वे शिवलोक में जाकर अपने उस कमरे में समाधिस्थ से हो गए थे, जिसमें बैठकर वे प्रायः भगवान् शंकर की आराधना किया करते थे। कमरे को उन्होंने अन्दर से बन्द कर लिया। उमा भी खिन्न और कातर मन अपने बड़े पुत्र के साथ लौटी थी। छोटे बेटे को वह मन्दिर नहीं ले गई थी। उसको बहाने से सेविकाओं के साथ घूमने के लिए भेज दिया था। नित्य के अनुसार घर में दीप जल उठे थे, भोजन बनकर तैयार हो गया था और महेशानन्द की प्रतीक्षा की जा रही थी कि वे भोजन करें। महेशानन्द के भोजन करने के बाद ही शिवलोक में दूसरे आदमी चौके पर बैठते थे। लेकिन आज महेशानन्द अपने आराधना के कमरे में बन्द थे। उन्हें भोजन की इच्छा न थी। उनके सामने रह रह कर उनके

गत जीवन के चिन्ह बन और बिगड़ रहे थे। उन्हें उस दिन का स्मरण हुआ जब ज्योतिषी दक्षिणा के रूप में उनसे अपार धन ले गये थे और उन्होंने घोषणा की थी कि भुवनमोहिनी का यश राज्य में युग युग तक व्याप्त रहेगा। वह अपने कुल का नाम उज्ज्वल करेगी। वे सोचते कि क्या यही भुवनमोहिनी ने कुल का नाम उज्ज्वल किया है? क्या यही उस यश का प्रारम्भ है? जो समस्त बीहड़ राज्य में युग युग व्याप्त रहेगा। यह क्या विडम्बना है? परमात्मा की यह क्या माया है? इस प्रकार वे सोचते और अपने मन में दुखी होते।

रह रह कर उनके हृदय में यह सवाल भी उठता, कि लोक मर्यादा की बेड़ी में वे क्यों जकड़े रहे। आखिर उन्होंने अपनी पुत्री की विनय भरी आरत वाणी क्यों नहीं सुनी? पत्नी की उन्होंने इतनी उपेक्षा क्यों की? उनके सामने भुवनमोहिनी का अश्रु भरा दयनीय मुख आ-आ जाता था। वे आँख बन्द करके प्रयत्न करते कि उसका मुख उनके मानसपट से ओझल हो जाय। उसके स्थान पर वे भगवान् शंकर की मूर्ति अंकित करने की चेष्टा करते। लेकिन भुवनमोहिनी का वह मुख उनके हृदय पट से न मिटता। आखिर वह उनकी पुत्री ही थी। शिवलोक से दूर, सिवाय बीहड़ेश्वर के मन्दिर तक जाने के, और वह भी किसी न किसी व्यक्ति के बिना साथ के वह कहीं भी न गई थी। उसने दुनियाँ नहीं देखी थी। दुनियाँ के छल प्रपंचों के बीच वह नहीं पड़ी थी। फिर उसने जो बात कही है, जिस बात को अगणित जनता ने विश्वास के साथ सुना है, क्या वह बात झूठ हो सकती है? पुत्री पर इस प्रकार अविश्वास करना क्या ठीक है? परन्तु लोक मर्यादा के भय से, अपनी बिरादरी में अपमानित होने के भय से कर्तव्य की यह कड़वी घूँट महेशानन्द शास्त्री के गले के नीचे नहीं उतरती थी।

अब तक दुःख-सुख में उमा उनकी एकमात्र सहयोगिनी थी। लेकिन आज वह उनसे उपेक्षित दूर पड़ी थी। पहले उन्होंने सोचा कि भोजन का वक्त होने पर उमा अवश्य उन्हें बुलवाएगी और पूजा गृह का द्वार खटखटायेगी। लेकिन उमा आज उनको बुलाने नहीं आई। वह अपनी पुत्री के लिए व्याकुल थी। पुत्री के प्रति पिता का यह व्यवहार उसे राक्षस का सा प्रतीत हुआ था। महेशानन्द के साथ अनेक वर्ष रहते हुए भी वह उनके इस मनुष्यत्त्व विहीन रूप को नहीं पहचान सकी थी। वह उन्हें केवल मनुष्य, और मनुष्य से बड़ा देवता समझ रही थी। लेकिन आज उसके उसी चिर कल्पित मनुष्यत्व और देवता के बीच में एक मनहूस राक्षस प्रगट हो उठा था। उसे महेशानन्द का, उस समय का चेहरा, जब उन्होंने क्रुद्ध वेष में पत्नी की उपेक्षा की थी और पुत्री को कुलकलंकिनी कहा था, बड़ा ही कुरूप प्रतीत हुआ। उसकी इच्छा न होती की पति के पास जाय और उनसे कुछ कहे सुने।

भगवान् शंकर की इसलिए महिमा है कि उन्होंने गरल पान किया था। अमृत के प्यासे तो सभी देवता थे लेकिन गरल को पीनेवाले एकमात्र भगवान् शंकर ही थे। जो मनुष्य शंकर जी की उपासना करता है, वह गरल पीने से क्यों हिचके? मनुष्य के लिए जीवन में अपमान, उपेक्षा, और अनादर! यही तो गरल हैं। तब महेशानन्द शास्त्री यह गरल पान क्यों न करें? वे शास्त्र-मर्यादा या दंभी पंडितों की परवाह न करके अपनी पुत्री को अपने घर में आश्रय क्यों न प्रदान करें? जब तक यह प्रमाणित न हो जाय, कि वह अपराधिनी है, तब तक वे उससे घृणा क्यों करें? उसको अपने आश्रय से वंचित क्यों करें?

उन्हें जान पड़ा जैसे शंकर भगवान् उनके कानों में कह रहे हैं—पुजारी! पुजारी! अपने अंतर का पट खोल! अपने कर्तव्य

को देख ! लोग क्या कहते हैं, इसकी परवाह न कर। तेरी पुत्री निर्दोष है। उसको अपने घर में आश्रय दे !

उन्हें इस अंधकार में एक प्रकाश सूझा। वे अपनी पुत्री को अवश्य अपने घर में ले आवेंगे। दुनिया कुछ भी कहे।

इस प्रकार के विचार महेशानन्द शास्त्री के हृदय में सम्भवतः इसलिए उठे थे, कि उनकी पत्नी के हृदय में इस तरह के विचार पहले ही से उठ चुके थे। माता अपनी पुत्री को निर्दोष समझती थी और जब उसको पा गई थी, उसको छोड़ना नहीं चाहती थी। उसका क्रोध अब उन लोगों पर नहीं था जिन्होंने उसकी पुत्री का अपहरण किया था बल्कि अब स्वयं अपने पति पर था। क्योंकि उन्होंने घर आई हुई पुत्री को फिर अपनी तिरस्कार की दृष्टि से ढकेलकर पतन के खड्ड में गिरा दिया था। वह शोक से, क्रोध से, अधीर हो उठी थी। भूख प्यास, मान अपमान का भाव सभी कुछ भूल गया था। वह अपनी पुत्री के बग़ैर जीवित नहीं रह सकती थी।

चाहे उनके हृदय के भीतर के तर्कों के कारण हो, चाहे पत्नी की इसी अवस्था के कारण हो, महेशानन्द अपने कमरे में बैठे बैठे घंटों मनन करने और सोचने के बाद इस निश्चय पर पहुँचे कि वह अपनी पुत्री को अवश्य अपने घर में ले आवेंगे, चाहे कुछ भी हो जाय।

महेशानन्द शास्त्री का यह स्वभाव था कि जब वे एक बात को निश्चय कर लेते थे तब उसको तुरन्त ही कार्य का रूप देने के लिए सचेष्ट हो उठते थे।

उन्होंने अब अपनी आराधना के कमरे का द्वार खोल दिया और सीधे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ उमा मृतक सी पलंग पर पड़ी थी और उनका ग्यारह वर्षीय पुत्र विजयानन्द माता के पास आँखों में आँसू भरे बैठा था।

महेशानन्द पलंग के सिरहाने की ओर बैठ गये। उन्होंने अपनी पत्नी के मस्तक पर हाथ फेरा और उससे कहा—उमा मैं हतबुद्धि हो उठा हूँ, मुझे कुछ सूझता नहीं, मैं अन्धा हो गया हूँ।

उमा ने करवट बदली। उसके मुँह से एक दीर्घ निःश्वास निकला।

विजयानन्द ने रो कर कहा—पिता जी दीदी को आपने इस तरह क्यों डाटा था ?

महेशानन्द ने पुत्र की बात का कोई उत्तर न देकर पत्नी के मस्तक पर फिर हाथ फेरा और कहा—उमा ! मुझे क्षमा करो। मैं अभी जाता हूँ और भुवनमोहिनी को लेकर आता हूँ।

१०

बैरिस्टर मदनगोपाल बीहड़ेश्वर महादेव के मन्दिर पर नहीं गये थे। यद्यपि उन्होंने महेशानन्द शास्त्री के ड्राइवर और चपला की सरकस मण्डली के समस्त व्यक्तियों को सजा दिलवाई थी तथापि उन्हें अपनी इस सफलता पर प्रसन्नता न थी। उनके मन में यह बात बैठ गई थी, कि भुवनमोहिनी वास्तव में उनको प्यार नहीं करती थी। उसका स्नेह-प्रदर्शन पिता की आज्ञा का पालन या शिष्टाचार का निर्वाह मात्र था। वास्तव में वह अपने ड्राइवर को ही प्यार करती थी और अन्त में उसके साथ भाग निकली।

विलायत से उच्च शिक्षा प्राप्त कर के लौटने पर भी, वे स्त्रियों को स्वाधीनता देने के पक्षपाती न थे। विलायत में उन्होंने स्त्रियों की स्वाधीनता के कारण समाज का जो रूप देखा था, वह उन्हें अत्यन्त विकृत प्रतीत हुआ था। इसलिए वे इस मामले में और भी कट्टर हो गये थे।

उन्हें भुवनमोहिनी से इतनी घृणा हो गई थी, कि उन्हें बीहड़ेश्वर के मन्दिर पर जो सभा हुई थी वह एक उच्छृङ्खल प्रदर्शन मात्र जान पड़ी थी। यदि दीवान दिग्विजय सिंह की जगह पर वे होते तो सम्भवतः वहाँ एक आदमी भी न जाने पाता। वह स्त्री, जिसको वह अपनी हृदयेश्वरी बनाने का संकल्प कर चुके थे, इस सीमा तक जा सकती है, और इतनी बड़ी माया और प्रपंच का केन्द्र बन सकती है, इस बात पर वे जितना ही गौर करते थे उतना ही वे भुवनमोहिनी पर कुपित होते थे। अन्त में उनका क्रोध इस सीमा तक बढ़ गया था कि यदि उस समय भुवनमोहिनी उनके सामने आ जाती तो शायद वे उस पर घातक प्रहार कर बैठते।

यह सब होते हुए भी उनके मन में यह जानने की इच्छा दब नहीं सकी थी कि बीहड़ेश्वर के मन्दिर में क्या हुआ और उच्छृङ्खल-आन्दोलनकारियों ने भुवनमोहिनी के मुख से क्या कहलवाया ? वे शिवलोक की ओर चल पड़े। उनसे महेशानन्द शास्त्री ने कहा था कि वे मन्दिर में उपस्थित रहेंगे और भुवनमोहिनी को आरती स्पर्श न करने देंगे। उन्हें दीवान दिग्विजय सिंह और राज्य के प्रमुख कर्मचारियों के भी मन्दिर में उपस्थित रहने की खबर थी। यह विचार कि भुवनमोहिनी उनको प्यार नहीं करती, उनके लिए बड़ी ही लज्जा और अपमान का विषय हो गया था। वे स्वस्थ्य थे, सुन्दर थे, और उच्च शिक्षा प्राप्त थे। राज्य में उनकी प्रतिष्ठा थी। वे अच्छे शिकारी थे। खासे

खेलाड़ी थे। पुरुष की ये ही विशेषतायें हैं जो स्त्रियों को उसकी ओर आकृष्ट कराती हैं और जब भुवनमोहिनी उनकी ओर आकृष्ट न हुई तो उन्हें अपनी ये विशेषताएँ कौवे के बदन में खोंसी हुई मोर पंख सी जान पड़ीं। उन्हें अपने आप पर लज्जा मालूम होने लगी। यदि उनका मस्तक तर्क और विवाद का आगार न होता, तो वे अपने हृदय के अविवेक पर अवश्य आत्म-हत्या कर बैठते। आत्महत्या न कर के अपने घर में छिपे रहना ही उन्होंने अधिक श्रेयष्कर समझा। उस समय बीहड़ राज्य में जो कुछ हो रहा था, उसे वे एक तूफ़ान समझ रहे थे और अपने एकान्त भवन में बैठे हुए इस तूफ़ान के निकल जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

जब उन्हें यह निश्चय हो गया, कि अब यह उच्छृङ्खल प्रदर्शन समाप्त हो गया, तब उन्हें उसी वेग से यह जानने की इच्छा हुई कि इस तूफ़ान ने कहाँ और क्या असर डाला है ?

संध्या का समय था, चाँदनी रात थी, आज संध्या वायु सेवन के लिए वे नहीं निकले थे। इसलिए तैयार हो कर छड़ी घुमाते हुए वे अपनी कोठी से बाहर निकले। अनायास उनके पाँव शिवलोक की ओर बढ़ने लगे। उन्होंने सोचा कि महेशानन्द शास्त्री बीहड़ेश्वर के मन्दिर से लौट आए होंगे। उनसे सब बातें मालूम होंगी। भुवनमोहिनी की ओर से सर्वथा उदासीन होते हुए भी वे उसके सम्बन्ध में जानने की इच्छा रखते थे और विविध प्रकार के तर्क-वितर्क करते हुए वे तेजी के साथ शिवलोक की ओर बढ़े जा रहे थे।

वे अकेले जा रहे थे, फिर भी उनके मुँह से ये वाक्य निकल निकल पड़ते थे—"भुवनमोहिनी मैं तुम्हें कभी स्वीकार नहीं करूँगा। मैं तुम्हारे साथ ब्याह करने के लिए तैयार नहीं हूँ। कदापि नहीं !"

मानो भुवनमोहिनी नत मस्तक, कर बद्ध उनके सामने विनीत भाव से खड़ी है और उनसे कह रही है—"प्रियतम ! मुझे क्षमा करो। मेरी जीवन नैया के नाविक, मुझे उस पार ले चलो।"

भुवनमोहिनी की ओर से भी वे ऐसी बातें करते जाते थे, और अपनी ओर से उसका जवाब देते जाते थे। वे ही शब्द जब उनके कानों में पड़ते थे तब वे यह सोच कर संकुचित हो जाते थे, कि यदि रास्ते पर चलने वाला कोई, उन्हें इस प्रकार पागल की तरह बड़बड़ाते सुन लेगा, तो क्या कहेगा। वे निश्चय करते कि वे कोई बात अपने मुँह से अब नहीं निकालेंगे। किन्तु दूसरे ही क्षण उसी विचार धारा में वे बह चलते और उन्मादी से बड़बड़ाने लगते थे।

जिस समय वे शिवलोक के दरवाजे पर पहुँचे, महेशानन्द शास्त्री अपनी कार पर बाहर निकल रहे थे। मोटर की रोशनी बैरिस्टर मदनगोपाल के चिन्ताग्रस्त मुख पर पड़ते ही शास्त्री जी ने कार रुकवाई और बैरिस्टर साहब को उसके अन्दर आने के लिए आमंत्रित किया।

बैरिस्टर मदनगोपाल ने शास्त्री जी के बगल में कार पर बैठते हुए कहा—यह तो आपके शिवलोक में रहने का समय है। इस असमय में आप कहाँ जा रहे हैं ?

"चलिए ! आपको भी ले चलूँ।"

"इस समय मुझे किसी के पास जाने की इच्छा नहीं है। मैं तो सिर्फ आपके पास आया था, कि आपके चरणों के निकट रहने में मन को कुछ शान्ति मिलेगी।"

"बेटा ! शिवलोक में अब शान्ति कहाँ ? शान्ति तो भुवन-मोहिनी के साथ ही चली गई और अब शान्ति का कोई उपाय नहीं है। मैं उसे बुलाने जा रहा हूँ। उचित हो या अनुचित, मान मिले या अपमान ? मैं उसको शिवलोक में ले आऊँगा।"

"आपको क्या हो गया है ?"

"मैं हतबुद्धि हूँ, मुझे कुछ सूझता नहीं है, लेकिन एक बात मैं निश्चय कर चुका हूँ, कि बग़ैर भुवनमोहिनी को शिवलोक में लाए, मैं स्वयं शिवलोक में रह नहीं सकता। यह अपमान का घूँट मुझे पीना ही पड़ेगा। यह गरल पान मुझको करना ही पड़ेगा।"

"आप साधक हैं। मोह के इतने वशीभूत न हों।"

"इसे भी आप एक साधना ही समझें।"

"अच्छा तो मुझे कार से उतर जाने दीजिए। हम और आप दोनों उस स्थान पर पहुँच चुके हैं, जहाँ से हमारा और आपका मार्ग अलग होता है।"

"बेटा उत्तेजना में कोई काम करना अच्छा नहीं होता। दो बयान हैं। एक दल उसको अपराधिनी कहता है और दूसरा दल उसको सर्वथा निर्दोष समझता है। परम्परा को देखते हुए यह ठीक है, कि मर्यादा का उलङ्घन नहीं होना चाहिए। लेकिन पिता का भी तो कुछ कर्तव्य होता है। अपने आश्रय से उसको यहाँ तक वंचित नहीं कर सकता। तुम बुद्धिमान हो, मेरी सहायता करो। भुवनमोहिनी के प्रति तुम्हारा भी कुछ कर्त्तव्य है।"

बैरिस्टर मदनगोपाल मौन हो गये, कार बराबर आगे बढ़ती ही गई। रास्ते में फिर दोनों में कोई बात न हुई। बैरिस्टर मदन-गोपाल के मन में फिर आया कि वह शास्त्री जी से बीहड़ेश्वर की सभा का हालचाल पूछें। लेकिन यह प्रश्न बारबार उनके कंठ तक आकर रह गया। शास्त्री जी के मन में भी कई बार इच्छा हुई, कि वे बैरिस्टर साहब से सभा का वृतान्त बतावें लेकिन उन्हें भी बोलने की इच्छा न हुई। दोनों चुपचाप आगे बढ़ते गये।

सड़क पर लोगों का आना-जाना अब भी जारी था। ज्यों ज्यों कार बस्ती से आगे बढ़ती थी, त्यों त्यों उन्हें चहल-पहल और भीड़ का आसार जान पड़ता था।

जिस पाकड़ के वृक्ष के नीचे बाबा बजरंगी का आश्रम था, वहाँ तक जाने के लिए पहले कोई मार्ग न था। लेकिन पिछले पन्द्रह बीस दिनों से बैलगाड़ियों से लदकर वहाँ इतना सामान आया गया था, कि वहाँ तक जाने का एक खासा रास्ता बन गया था। इस रास्ते को बैलगाड़ी वालों ने आपस में मिलकर खुद ही बनाया था। उस रास्ते पर कितने ही लोग आ-जा रहे थे। कितनी ही बैलगाड़ियाँ आ-जा रही थीं और बैलों के गले में पड़ी हुई घंटियाँ बज रही थीं। अब कार उस जगह पर पहुँची, जहाँ से यह रास्ता सड़क में मिला था। शास्त्री जी ने कार यहीं रुकवा दी और कहा—आगे पैदल चलेंगे।

कार रोक दी गई। शास्त्री जी उतर कर आगे बढ़े और बैरिस्टर मदनगोपाल कार पर इस तरह बैठे रहे कि मानों वह कोई पत्थर की मूर्ति हों।

शास्त्री जी ने उनसे अपने साथ चलने का आग्रह नहीं किया। वे अकेले ही चले गये।

पाकड़ के पेड़ के गिर्द अच्छी चहल-पहल थी। गैस के कितने ही हन्डे बाँस के मजबूत खंभों में टँगे, उस निर्जन बन की, चहल-पहल को आलोकित कर रहे थे। जगह जगह किसानों के बेतरतीब चूल्हे जल रहे थे और अदहरे सुलगे हुए थे। मकाई और गेहूँ की मोटी मोटी रोटियों के आग पर सिंकने की सुगन्ध आ रही थी। मर्द, औरत और बच्चे कहीं दरी बिछाये, कहीं चटाई पर, और कहीं जमीन पर बैठे हुए थे। यह एक मेला था जो भोजन और विश्राम की तैयारी में था। आस-पास गाँवों से जो किसान इस सभा में शरीक हुए थे, रात हो जाने से अपने गाँवों को न जाकर बाबा बजरंगी के आश्रम में लौट आये थे। यहाँ इन लोगों के ठहरने की पूरी व्यवस्था थी। इन लोगों के पानी पीने के लिए एक कुँआ खोदा गया था। और कई एक

खाद्य सामग्री की दूकानें खोली गई थीं। इस भूखी, प्यासी, विश्राम की तैयारी करती हुई भीड़ के बीच में से गुजरते हुए महेशानन्द शास्त्री को एक विचित्र सुख का अनुभव हुआ। उन्हें जान पड़ा, जैसे जनता ने करवट बदली हो। वह अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती हो। इस तरह के दृश्य वे बीहड़ेश्वर के मंदिर के गिर्द शिवरात्रि के दिन प्रायः देखा करते थे। परन्तु वह भीड़ मरने के बाद सुख और शान्ति पाने की कामना से जमा होती थी। और यह भीड़ जीवन में ही सुख और शान्ति पाने की उत्कट लालसा से एकत्रित हुई थी।

भीड़, शास्त्री जी को बहुत ही सजीव और चेतन जान पड़ी। इस भीड़ की उनकी पुत्री भुवनमोहिनी से हमदर्दी थी। यह भीड़ उनकी पुत्री के लिए जान देने को तैयार थी। यह भीड़ उसकी रक्षा के लिए जमा हुई थी। जिसको उन्होंने त्याग दिया था, उसको बीहड़ की जनता ने अपनाया था। उनको जान पड़ा, जैसे भुवनमोहिनी के जन्म के समय ज्योतिषियों ने जो कहा था, कि इसका यश बीहड़ राज्य में युग-युग तक व्याप्त रहेगा, वह बात मानों सच हो रही है।

उनके हृदय ने कहा—महेशानन्द, यह तो गरल पान नहीं है। यह तो अमृत पान है। जैसे पतझड़ की ऋतु में वृक्ष के सब पत्ते झड़ जाते हैं और उनमें नई कोपलें निकलती हैं। वैसे ही महेशानन्द के हृदय से भय, आशंका, अपमान और शास्त्र-मर्यादा के मिथ्या आचरण के भाव निकल गए थे और उनके स्थान पर प्रेम, दया, सहानुभूति और मानवता की नई कोपलें निकल आई थीं। अब उनका पाँव जल्दी जल्दी पड़ने लगा और वे लोगों से पूछते हुए बजरंगी की कुटी की ओर बढ़ने लगे।

गैस के प्रकाश में कितने ही लोगों ने ,उनको पहचाना और

एक दूसरे से कहने लगे कि देखो राज्य पुरोहित महेशानन्द शास्त्री जा रहे हैं।

अभी वे बाबा बजरंगी की कुटी तक पहुँच भी न पाये थे कि भीड़ में से एक गगन भेदी स्वर उठा—"महेशानन्द की जय" और उसी स्वर में तमाम भीड़ बह निकली और फिर तो उनकी जय के कितने ही नारे लगे।

क्या मामला है, यह जानने के लिए बाबा बजरंगी अपनी कुटी से बाहर निकल आये। उनके साथ ही भुवनमोहिनी और चपला भी बाहर निकलीं। तीनों ने देखा कि महेशानन्द शास्त्री बाहर खड़े हैं। भुवनमोहिनी के मुख से एकाएक निकला—"पिता"

"बेटी !"

इतना कहने के बाद महेशानन्द शास्त्री ने गद्गद् कंठ से सिर्फ़ इतना कहा—"बेटी घर चलो।"

११

बीहड़ राज्य में क्या हो रहा है, इसका पता अब तक बीहड़ राज्य के बाहर किसी को न था। लेकिन बीहड़ राज्य में प्रजामण्डल की स्थापना के बाद से ही देश विदेश के समाचार पत्रों में बीहड़ के राज्य कर्मचारियों के जुल्मों के विवरण छपने लगे। जो जुल्म उनकी ओर से नहीं होते थे, उनके भी सनसनी दार भाषा में विवरण छपे। पर इसके साथ ही यह भी सच है कि वहाँ की कितनी ही जुल्म की बातें जो बड़ी ही रोमांचकारी थीं अख़बारों में नहीं पहुँच सकीं। फिर भी इन

सब समाचार पत्रों का बीहड़ नरेश और उनके स्वेच्छाचारी कर्मचारियों पर असर पड़ा। वे चौकन्ने हुए। लेकिन बजाय अपना सुधार करने के, उन्होंने यह कोशिश करनी शुरू की कि इस तरह रियासत को बदनाम करने वाले समाचारों का छपना ही बन्द कराया जाय।

राज्य कर्मचारियों द्वारा किए हुए कतिपय जुल्मों और स्वयं अपने सम्बन्ध में भी, समाचार पत्रों की सैकड़ों कतरनें लिए हुए बीहड़ नरेश अपने उस कमरे में बैठे हुए हैं जिसमें वे रियासत के बाहर से आने वाले लोगों से मिला करते हैं। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी और दीवान दिग्विजय सिंह भी उपस्थित हैं। महाराजा विष्णुदेव सिंह कतरनों को पढ़ते जाते हैं और मन ही मन संतप्त होते जाते हैं। कतरनों में लिखी हुई बहुत सी बातें सत्य हैं। वे कतरनें उनके सामने निर्भय अडिग पड़ी हैं। राज्य के विरुद्ध ज़बान खोलने की बड़ों-बड़ों को अभी तक हिम्मत न हुई थी। लेकिन कागज़ की ये क्षण-भंगुर कतरनें कितनी धृष्ट हैं? महाराजा के ऐब, ये उनके मुँह पर कहती हैं और ज़रा भी नहीं हिचकतीं !

दीवान दिग्विजय सिंह ने कहा—श्रीमान् इन कतरनों को आग के हवाले कीजिए।

महाराजा साहब ने कहा—"मगर दीवान साहब, अगर आग में पड़ने से उन्होंने घी का काम किया तो ?"

"आप के पास फायर ब्रिगेड भी तो हैं।"

दीवान साहब की बातों का कोई ख़्याल न करते हुए महाराजा विष्णुदेव सिंह ने कहा—आख़िर ये समाचार पत्र पहले भी तो छपते रहे होंगे। हमारे पूर्वजों ने इनका मुकाबिला कब और कैसे किया ? इसकी कोई नज़ीर ज़रूर होगी। कृपया इसका पता लगाइये।

"श्रीमान्! ये समाचार पत्र हाल की चीज़ें हैं। शुरू में रियासत में कुछ अंग्रेजी के अख़बार आते थे। उनमें रियासत की बढ़िया बढ़िया इमारतों के चित्र छपते थे, महाराजा के चित्र छपते थे, रियासत के पूर्व इतिहास और वैभव की कहानियाँ छपती थीं। लेकिन जब से देशी भाषा में अख़बार छपने लगे, तब से तो बात ही बदल गई। कितनी ही रियासतों की छीछा-लेदर ये पत्र कर चुके हैं। सिर्फ़ बीहड़ेश्वर महादेव की कृपा से बीहड़ इनके आक्रमणों से बचा था। लेकिन जब से प्रजामंडल कायम हुआ है, तब से यहाँ भी उत्पात मचा हुआ है। आजकल के ज़माने में रियासतों के बाग़ी इसी शस्त्र का प्रयोग करते हैं। यही उनके बम गोले और मशीनगन हैं।"

"मगर मैं देखता हूँ कि ये कहीं ज्यादा कारगर हैं। असली बम गोले और हथियार तो हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। लेकिन ये तो सीधे दिल पर चोट करते हैं। इनका कुछ उपाय होना चाहिये।"

प्राइवेट सेक्रेटरी ने कहा—"हुज़ूर इस संबंध में रियासत को समुचित परामर्श देने के लिए 'जन नायक' सम्पादक श्री चक्र पाणि चौबे ने अपनी सेवाओं की भेंट चढ़ाने की लिए अर्ज़ी भेजी है। उन्हें बुलवाया गया है, और वे यहाँ मौजूद भी हैं।"

'उन्हें बुलवाइए।"

दीवान दिग्विजय सिंह और प्राइवेट सेक्रेटरी ने मिल कर पहले ही से 'जन नायक' सम्पादक चक्रपाणि चौबे को बुलवा रक्खा था और महाराजा से मिलाने का उपयुक्त अवसर खोज रहे थे। आज वह अवसर आप ही आप आ गया था। इसीलिए उन्होंने समाचार पत्रों में छपी महाराजा के विरुद्ध शिकायतों की कतरनों को उनके आगे पेश किया था। इन लोगों ने महा-राजा के सामने सिर्फ़ उन्हीं कतरनों को पेश किया था, जिनमें

महाराजा की विशेष रूप से शिकायतें थीं और उन कतरनों को उनके सामने नहीं जाने दिया था, जिनमें कि रियासत के कर्म-चारियों की अत्यधिक निन्दा थी।

चक्रपाणि चौबे ने तुरन्त ही महाराजा के सामने उपस्थित हो कर उनका अभिवादन किया। बीहड़ के पूर्व राजाओं के वैभव का उन्होंने बखान किया। बीहड़ की भावी उन्नति का उज्ज्वल चित्र उनके सामने उपस्थित किया और इसी सिलसिले में उन्होंने अपने सम्पादकीय ज्ञान, सम्पादकीय जगत में अपनी धाक और अपने चमत्कार पूर्ण सम्पादकीय हथकन्डों का भी जिक्र किया। उनका व्याख्यान समाप्त हो चुकने पर प्राइवेट सेक्रेटरी ने कहा—हुज़ूर इस समय में श्री चक्रपाणि चौबे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो रियासत को बदनामी से बचा सकते हैं। उन्होंने एक प्लैन बनाया है। यदि आप की आज्ञा हो तो ये हुज़ूर के सामने पेश करें।

"किया जाय।"

प्राइवेट सेक्रेटरी ने चौबे जी से लेकर महाराजा के सामने एक छोटी सी कापी उपस्थित की और एक-एक पृष्ठ खोल कर उनको बताना शुरू किया, कि किस तरह समाचार पत्रों के आक्र-मणों का निवारण किया जा सकता है और रियासत को बेहद बदनामी से बचाया जा सकता है। एक प्रस्ताव उनका यह भी था कि रियासत से 'बीहड़-समाचार' नामक एक पत्र निकाला जाय और रियासत की जनता से लगान के साथ २ इसका चन्दा भी वसूल कर लिया जाय ताकि लोग उसको पढ़ने और उस पर अमल करने के लिए मजबूर हो जायँ। इसके अलावा उन सब समाचार पत्रों को अत्याधिक संख्या में खरीदा जाय, जो रियासत के पक्ष का समर्थन करें, और उन सब समाचार पत्रों का रिया-सत में आना रोक दिया जाय जो बाग़ियों का साथ देते हैं।

और इसके साथ ही एक महकमा क़ायम किया जाय, जो समस्त आक्षेपों का उत्तर दे और राज्य की खूबियों को दुनिया भर के समाचार पत्रों में छपवाएँ। इस महकमा के अध्यक्ष श्री चक्रपाणि चौबे बनाये जायँ। चौबे जी इसके लिए तैयार हैं।

दीवान साहब ने प्राइवेट सेक्रेटरी की एक एक बात का समर्थन किया और महाराजा साहब ने तुरन्त इसकी स्वीकृति दे दी। उसी क्षण श्री चक्रपाणि चौबे को नियुक्ति पत्र मिल गया।

चक्रपाणि चौबे ने बीहड़ राज्य के कर्मचारियों पर किये गये आक्षेपों का रियासत के बाहर के समाचार पत्रों में उत्तर देना शुरू किया। कितने ही पत्रों में उत्तर छपे। कितने ही पत्रों में उत्तर नहीं छपे। जिन पत्रों में उत्तर छपते, वे पत्र काफी संख्या में खरीदे जाते। जिन पत्रों में उत्तर नहीं छपते, उनकी सेवा में श्री चक्रपाणि चौबे एक थैली लेकर हाजिर होते और उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त करते।

बीहड़ की सीमा पर रहने वाले कितने ही शहरों में जो बीहड़ की सीमा के अन्तर्गत न थे, कितने ही लोगों ने छोटे मोटे समाचार पत्र निकालने शुरू कर दिए, ताकि बीहड़ से कुछ धन प्राप्त हो। इन पत्रों में प्रायः बीहड़ के विरुद्ध बातें छपा करती थीं और जब रियासत से उन्हें भेंट स्वरूप थैली प्राप्त हो जाती थी, तब वे उन समाचारों का खण्डन छाप देते थे। इस तरह बीहड़ राज्य के पक्ष विपक्ष में समाचार पत्रों में काफ़ी लेख और कहानियाँ छपने लगीं और सारे देश के लोग बीहड़ के राज्य से परिचित हो गये। कुछ ऐसे भी निर्भीक स्वाधीन चेता पत्र-सम्पादक निकले, जिन्होंने चक्रपाणि चौबे द्वारा प्राप्त धन और बीहड़ नरेश की भेंटों को ठुकरा दिया। उन्होंने बीहड़ के जुल्मों को छापना जारी रक्खा। वे सब अखबार रियासत में आने से रोक दिये गये और इस प्रकार उन्होंने अपनी ही आर्थिक हानि की।

दीवान दिग्विजय सिंह और महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी आदि ने एक बार फिर निश्चिन्तता की साँस ली। वे महाराजा के सामने उन तमाम समाचार पत्रों को रखने लगे, जिनमें उनकी व्यक्तिगत और उनकी रियासत के कर्मचारियों की शासन-व्यवस्था की प्रशंसा थी। महाराजा अपने कर्त्तव्य पालन की ओर से और भी उदासीन हो गये। धीरे धीरे उनके दिल में यह विश्वास जम गया कि रियासत के कर्मचारी जो कुछ करते हैं, वह सब बिलकुल ठीक है। उन्हीं के कारण, क्या बीहड़ और क्या बीहड़ से बाहर, सर्वत्र उनकी बड़ी प्रशंसा है।

बीहड़ नरेश ने देखा कि दिल बहलाने के लिए श्रीचक्रपाणि चौबे एक अच्छे साधन हैं। वे उनको प्रायः मिलने के लिए बुलवाते और उनसे तरह तरह की बातें सुन कर अपना दिल बहलाते। कभी कभी चक्रपाणि चौबे का मज़ाक भी उड़ाया जाता। इसे चौबे जी महाराजा की कृपा समझते।

एक दिन श्रीचक्रपाणि चौबे ने कहा—हुज़ूर प्राचीन काल में हर रियासत में कुछ कवि आश्रय पाया करते थे। वे शासक का कीर्ति-गान करते थे। बीहड़ में इसकी बड़ी आवश्यकता है। इसी सिलसिले में श्रीचक्रपाणि चौबे ने बीहड़ के पुराने शासकों द्वारा कवियों को आश्रय देने की, कहानियाँ और उदाहरण बीहड़ के इतिहास से निकालकर दिए। यश विस्तार की, अपने पूर्वजों की यह नीति महाराजा विष्णुदेव सिंह को बड़ी ही पसंद आई और उन्होंने तुरन्त ही श्रीचक्रपाणि चौबे को आज्ञा दी कि वे हिन्दुस्तान भर के चुने चुने कवियों को बुलावें; उनमें से जो कवि अच्छा होगा उसे राज्य कवि का पद दिया जायेगा। और उसको एक पेन्शन बाँध दी जायेगी।

महाराजा की आज्ञा पाते ही श्रीचक्रपाणि चौबे ने बीहड़ राज्य में एक भारी कवि सम्मेलन का आयोजन किया। श्रीचक्रपाणि

चौबे का निमंत्रण पाकर कितने ही नामधारी कवि बीहड़-नरेश की प्रशंसा में छन्द बना बना कर पहुँचे। एक घुड़शाल खाली कराई गई और उसमें ये सब कवि टिका दिए गये और कवि सम्मेलन होने लगा। बीहड़ नरेश को इस कवि सम्मेलन से बड़ा मज़ा मिला।

इस कवि सम्मेलन में विषयेश नाम के एक ऐसे कवि पहुँचे, जो कई पीढ़ियों से राज्य दरबारों में कविता सुनाते आ रहे थे। और यही उनकी जीविका का साधन था। उनके पिता तक जीविका किसी प्रकार चलती रही लेकिन विषयेश के वक्त में सब काम किरकिरा हो गया। जहाँ भी वे गये, खाली हाथ लौटना पड़ा। जिस दिन चक्रपाणि चौबे का निमन्त्रण उनके पास पहुँचा, उस दिन उनकी हालत बहुत ख़राब थी। महीनों से उनके घर में चूल्हा नहीं जला था, वर्षों से उनकी दाढ़ी पर अस्तुरा नहीं फिरा था। क्योंकि कहीं से भी कुछ पैसे नहीं मिले थे। और कहीं से कुछ पैसे मिले भी थे तो वे समाचार पत्रों में कविता भेजे जाने के लिए टिकट खरीदने में व्यय हो गये थे। विषयेश जी चक्रपाणि चौबे के पास कई बार पधारे थे और उनसे उन्होंने निवेदन किया था, कि दरबार में मेरा प्रवेश करा दो। उनकी दयनीय दशा देखकर ही चक्रपाणि चौबे ने उन्हें बुलवाया था। महाराजा विष्णुदेव सिंह स्वयं तो दाढ़ी नहीं रखते थे, तथापि वे दाढ़ी के बड़े प्रेमी थे। दूसरों के मुख पर दाढ़ी उन्हें अच्छी लगती थी, क्योंकि वे उसका मज़ाक बनाकर ख़ुश हो सकते थे। चक्रपाणि चौबे के लिखने पर विषयेश जी अपने दाढ़ी सहित ही इस विचार से आये थे कि उनका दरबार में अच्छा स्वागत होगा। वे इसलिए बुलवाए गये थे कि वे दरबारी कवि हैं। चौबे जी ने सोचा था, आशुकवि होने से वे महाराजा कि प्रशंसा में तत्काल ही छन्द बना सकेंगे।

और चूँकि दरिद्र हैं इसलिए मेरे कहने के अनुसार पूर्ण रूप से आचरण भी करेंगे।

सम्मेलन आरम्भ हुआ। वन्दना के बाद चक्रपाणि चौबे ने इस दढ़ियल कवि को कविता सुनाने के लिए खड़ा किया और उनका परिचय देते हुए कहा—श्रीमान् ये आशुकवि हैं। इन्हें कोई समस्या दी जाय। ये तुरन्त उसकी पूर्ति करेंगे।

विषयेश के मुखपर दाढ़ी बढ़ी हुई थी और भद्दे तरीके से बढ़ी थी। महाराजा ने उनसे दाढ़ी बढ़ाने का कारण पूछा और यही समस्या दे दी। विषयेश ने देवी का सुमिरन किया। उसके बाद महाराजा को सिर झुकाया। उससे बाद श्रीचक्रपाणि चौबे को, दीवान दिग्विजय सिंह को, प्राइवेट सेक्रेटरी तथा समस्त कवियों को, प्रोत्साहन पाने की दृष्टि से अभिवादन करते हुए, उन्होंने अपने काव्य स्वर में यह छन्द सुनाया—

सावन को घन देखत ही,
वन की इतनी सरिता नहिं बाढ़ी।
आँच पै आँच दिये हू जमी,
इस भाँति नहीं कहीं दूध पै साढ़ी॥
परदेशी पिया की अवाई सुने,
इतनी नहिं माँग तियाहू ने काढ़ी।
बीहड़ भूप को देखत ही,
कवि के मुख पै जितनी बढ़ी दाढ़ी॥

चारों तरफ तालियाँ बज उठीं। वाह वाह की गूँज से सम्मेलन भवन मुखरित हो उठा। विषयेश सिर झुका झुकाकर सब का अभिवादन करने लगे। ऐसा सफल कवि सम्मेलन, समस्त कवियों ने कहा कि उन्होंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा था।

इसके बाद ही फिर विषयेश ने महाराजा की प्रशंसा में निम्न-लिखित कवित्त सुनाया।

विश्व में बराबरी तुम्हारी कर सकता कौन,
बीहड़ नरेश तुम विष्णु के भी बाप हो।
शेष के अशेष फन न सकते धरा को धार,
करते न हलकी जो उदार बन आप हो।
नायका है ऐसी नवेली अलबेली कौन,
जिसके मुख पै लगाई चुम्बन की न छाप हो।
डूब जाते रवि मर जाते कवि गर्भ ही में,
आप जो न आते सब पुण्य जाते पाप हो॥

इस पर घण्टों तालियाँ बजती रहीं और वाह वाह से सम्मेलन भवन गूँजता रहा। महाराजा ने तत्काल ही प्राइवेट सेक्रेटरी से विषयेश को भारी इनाम देने की आज्ञा दी। उसी वक्त उनको पगड़ी दी गई, तलवार दी गई और राजसी पोशाक दी गई। तुरन्त ही यह नई पोशाक धारण करके और कमर में तलवार बाँध करके, विषयेश कवि महाराजा की प्रशंसा के पुल बाँधने लगे।

विषयेश के बाद और भी कितने ही कवियों ने कविताएँ सुनाईं। लेकिन उस दिन और सबों का रंग फीका रहा। सम्मेलन समाप्त होने पर ये सब कवि उसी घुड़शाल में अपने निवासस्थान पर आये। कवि सम्मेलन लगातार सात दिन तक होता रहा। उसके बाद महाराजा शिकार खेलने जाने के लिए तैयार हुए। कवि सम्मेलन खत्म हो गया; फिर भी कवि लोगों की विदाई रुकी हुई थी। प्राइवेट सेक्रेटरी ने चक्रपाणि चौबे से महाराजा की ओर से कवियों से यह निवेदन करने को कहा कि अभी कवि लोग ठहरें। जब महाराजा साहब शिकार खेलकर लौटेंगे तब

एक बार फिर कवियों की कविताओं का रसास्वादन करके महाराजा स्वयं उनकी विदाई करेंगे।

जिस दिन महाराजा शिकार खेलने के लिए रवाना होने वाले थे; इत्तिफाक़ से उसी दिन उनका पाला हुआ एक प्यारा कुत्ता मर गया। यह बड़ी दुःखद घटना समझी गई। शिकार का आयोजन स्थगित कर दिया गया और सारी रियासत में मातम छा गया। कुत्ते का बाक़ायदा दाह संस्कार किया गया और राज्य की प्रथा के अनुसार तेरहवें दिन बाल बनवाने की तैयारी हुई। रियासत के नाई पुलिस के सिपाहियों के साथ अस्तुरा ले ले कर निकल पड़े और जहाँ जो मिला वहीं उसकी हजामत बनने लगी।

नाइयों का एक दल उस घुड़शाल में भी पहुँचा जिसमें यह सब कवि जमा थे। एक एक कवि पर दो दो नाई टूट पड़े और उनकी भौंहें तक मूड़ डाली गईं। अभी विदाई नहीं मिली थी। इसलिए कितने ही कवि अपने स्वाभिमान का परिचय न देकर खामोश रह गये।

विषयेश कवि कहीं टहलने गये हुए थे। जब वे घुड़शाल में लौट कर आये और यह काण्ड देखा तो बहुत घबराए। एक समय था, जब दाढ़ी बनवाने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे। उस समय वे दाढ़ी मुड़ाना चाहते थे। इतना ही नहीं कभी कभी तो स्वयं ही दाढ़ी उखाड़ने की बात भी सोचते थे। लेकिन आज उनको इसी दाढ़ी की बदौलत भारी इज्ज़त मिली थी। इसी दाढ़ी की बदौलत उन्हें पगड़ी, तलवार, राजसी पोशाक और अपार धन मिला था। दाढ़ी ही एक ऐसी चीज़ थी जिससे वे राज दरबार में सम्मानित हुए थे, पहचाने जा सके थे। अपनी इस यश-पताका को वे किसी प्रकार नाइयों के हवाले करने के लिए तैयार न हुए। उन्होंने अपने मन में सोचा कि सब कवियों ने

अपना मुंडन करा ही लिया है और जब मैं अपना मुंडन नहीं करवाऊँगा तो निराला कवि समझा जाऊँगा और रियासत के इस नियम के तोड़ने का किसी समुचित कारण पर कविता बना कर महाराजा को सुना दूँगा। वे मुझ से बहुत प्रसन्न होंगे और मुझे कोई बड़ा इनाम देंगे।

बस विषयेश कवि भाग खड़े हुए और पुलिस के सिपाही और कुछ नाइयों ने उनका पीछा किया। जितना ही उन्होंने पीछा किया उतना ही विषयेश भागे। यह दौड़ वहाँ समाप्त हुई जहाँ पाकड़ के पेड़ के नीचे बाबा बजरंगी का आश्रम था और सैकड़ों किसान जमा थे। ये किसान विषयेश की मदद के लिए सामने आये। वे पुलिस के सिपाहियों और नाइयों से मोर्चा लेने के लिए तैयार हो गये। किसानों की भारी जमात देखकर पुलिस के सिपाही वहाँ से लौट आये। लेकिन यह धमकी दे गए कि अभी हम पूरी ताक़त से आएँगे और तुम सब को एक बार देखेंगे।

१२

महेशानन्द शास्त्री को भुवनमोहिनी को शिवलोक में लाए हुए एक महीने से ऊपर हो गया था। इस बीच में बैरिस्टर मदनगोपाल शिवलोक में एकबार भी नहीं आये थे। भुवनमोहिनी से उनको बेहद अरुचि हो गई थी। उसको वे घोर संदेह की दृष्टि से देखते थे। उनकी समझ में यह बात नहीं आती थी कि एक नवयुवती कन्या अपने घर से ग़ायब होने पर पहले अपने ड्राइवर, फिर सरकस मंडली के पतित व्यक्तियों,

फिर बीहड़ राज्य के कर्मचारियों और अन्त में रियासत के उच्छृङ्खल बाग़ियों के हाथ में पड़कर कैसे पवित्र रह सकती है। वह जल्द से जल्द अपनी शादी करके इस संबन्ध में अपनी मानसिक चिन्ता और ग्लानि से छुटकारा पा जाना चाहते थे।

इधर भुवनमोहिनी का यह हाल था कि बैरिस्टर मदनगोपाल के लिए वह पागल थी। सोते-जागते, उठते-बैठते उसके सामने बस एक उन्हीं की तस्वीर थी, और उसके मूक कंठ से उन्हीं के नाम की रटन फूट रही थी। बार बार उसके मन में आता था कि वह उनकी कोठी पर जाय और उनके चरणों में मस्तक रख दे और उनसे कहे—प्रियतम मैं निर्दोष हूँ। मैं तुम्हारा ही हूँ।

कभी कभी तो वह सोचती थी कि जैसे वह शिवलोक से उसी एक मिलन यात्रा के लिए निकल पड़ी है, वह चली जा रही है, रास्ते में लोग उसे देखकर तरह तरह की बातें कर रहे हैं। वह बैरिस्टर मदनगोपाल के द्वार तक पहुँच गई है, दरवाज़ा बन्द है। वह दरवाज़े को धक्का देती है—प्रियतम द्वार खोलो। वह दरवाज़े पर अपना सिर पटकती है। उसके मस्तक से रक्त की धारा बह निकलती है, वह बेहोश होकर गिर पड़ती है और जब उसे होश आता है तब वह देखती है कि उसका अश्रु भरा मुख बैरिस्टर मदनगोपाल की गोद में है। इसी तरह की कल्पनाओं में भुवनमोहिनी बहती उतराती थी।

रात्रि में शैय्या पर अर्द्धनिद्रित अवस्था में इसी तरह के वह स्वप्न देखती और जब जागती तब रोती और फिर सोकर वैसे ही स्वप्न देखने की चेष्टा करती।

उमा ने शिव को पाने के लिए क्या तपस्याएँ की थीं, वह उन सब तपस्याओं को सोचती और अपने प्रियतम को अपने अनुकूल बनाने के लिए वह सब तरह के संकट झेलने को तैयार होती। लेकिन जितना वह सोचती, उतना ही उसे संताप मिलता

और उतना ही बैरिस्टर मदनगोपाल उससे दूर प्रतीत होते। हाय क्या बैरिस्टर साहब उससे कभी प्रेम नहीं करेंगे ? क्या वे उसे कभी स्वीकार नहीं करेंगे ? क्या उनके जीवित रहते हुए ही उसे विधवा का जीवन व्यतीत करना पड़ेगा ?

उसके पिता और माता उसे बहुत समझाते। माता कहती—बेटी, मदनगोपाल ही संसार में एक युवक नहीं हैं। बहुत संभव है कि तेरे भाग्य में कोई और नर रत्न लिखा हो और उसी के लिए यह घटना हुई हो। तू विवेक से काम ले इस तरह पागल मत हो जा।

भुवनमोहिनी माता की बात ध्यान से सुनती लेकिन उसके हृदय में बैरिस्टर मदनगोपाल के लिए जो तूफ़ान उठा था, वह किसी प्रकार शान्त होता हुआ न जान पड़ा। हाय वह क्या करे ?

इस बीच में और भी कितनी ही घटनायें घटीं। वह पाकड़ का वृक्ष जिसके नीचे बाबा बजरंगी ने अपना आश्रम कायम किया था, काट डाला गया। पाकड़ के वृक्ष के गिर्द जो झोंपड़े खड़े थे, सबों में आग लगा दी गई। वहाँ जो लोग प्रजामंडल के नाम से महाराजा के प्रति विद्रोह का झंडा खड़ा करने के लिए जमा हुए थे, वे सब या तो गिरफ़्तार कर लिए गये या गोलियों से भून डाले गये। बाबा बजरंगी गिरफ़्तार करके राज्य के जेल में भेजे गये कि जहाँ से वे किसी तरह निकल नहीं सकते थे।

जिस भूमि पर पहले पहल बाबा बजरंगी के नाम से सरदार सम्पूर्ण सिंह ने पनाह ली थी, जिस भूमि ने चपला और भुवनमोहिनी को कृष्णासागर से तैर करके आने पर अपनी गोद में छिपाया था, जिस भूमि पर प्रजामंडल की स्थापना हुई थी, और जहाँ रियासत की जनता अपने संकटों से त्राण पाने के प्रयत्न में संलग्न देखी गई थी, वह भूमि अब एक श्मशान मात्र रह गई थी।

भुवनमोहिनी बाबा बजरंगी आदि की दुर्दशा की चर्चा ज्यों ज्यों सुनती त्यों त्यों वह अधीर और दुखी होती। हाय वह बाबा बजरंगी के आश्रम को छोड़कर इतनी दूर चली ही क्यों आई ? उसके लिए तो उसके सिवा और कोई मार्ग ही न था। हाय पिता ने उसके ऊपर यह दया क्यों की ? महेशानन्द शास्त्री का यह प्रेम उसे उनको उस उपेक्षा से भी कटु जान पड़ा जो उन्होंने बीहड़ेश्वर के मन्दिर पर आरती के समय दिखाई थी। वह कल्पना करती कि यदि वह भी संकट के समय प्रजामंडल के व्यक्तियों में होती तो कितना अच्छा होता। यदि वह भी घोड़ों के टापों के नीचे कुचली जाती या गोलियों का शिकार हो जाती तो कितना अच्छा होता। एक ही क्षण में वह दुनिया के दुःख से छुटकारा पा जाती और इस प्रकार उसके जन्म लेने का कुछ अर्थ भी हो जाता। अब वह क्या करे ? वह अपना निरर्थक जीवन किस प्रकार सार्थक करे ? तो क्या वह इसी प्रकार घुल घुल कर मरने और संतप्त होने के लिए पैदा हुई है ?

वह प्रायः बिस्तर में पड़ी रहती और इसी तरह की बातें सोचती। दिन प्रति दिन वह क्षीण काय और मलिन होती जाती थी। जिस शिवलोक में उसके अभाव के कारण मनहूसियत छाई हुई थी उसी शिवलोक में अब उसकी उपस्थिति सबके दुख का कारण बन गई थी।

जाड़ा बिलकुल ख़तम हो गया था, धूप में तेज़ी आ गई थी। फसलें कट कर खलिहान में आ गई थीं। लेकिन शिवलोक के बग़ीचों में लगे आम के वृक्षों में बड़े-बड़े फल बड़े-बड़े आँसू से लटके प्रतीत होते थे। शिवलोक से बाहर चहल-पहल थी, लेकिन शिवलोक के अन्दर उदासी छाई हुई थी। इस बीच में महेशानन्द शास्त्री शिवलोक से बाहर नहीं निकले थे। आरती के समय भी बीहड़ेश्वर के मन्दिर में वे नहीं जाते थे। अपने ही

आराधना के कमरे में बैठे शिव की आराधना करते रहते थे और यह सोचते रहते थे कि इस संकट से कैसे उद्धार हो सकता है। उनका पुत्र ही आरती में सम्मिलित हुआ करता था।

एक बार उनके मन में आया कि वे भुवनमोहिनी को आरती के लिए भेजें लेकिन उन्हें भय था, कि यदि भुवनमोहिनी मन्दिर में गई तो कहीं दूसरे लोग उसका अपमान न कर बैठें। एक बार स्वयं पिता के रूप में वे उसका अपमान कर बैठे थे तब दूसरों को कैसे मना कर सकते थे। इधर राज्य कर्मचारियों का व्यवहार उनसे कुछ रूखा हो चला था। दीवान दिग्‌विजय सिंह उनसे विमुख हो चले थे। राज्य कर्मचारियों की यह धारणा हो चली थी कि प्रजामंडल के अन्दोलन में अन्दर ही अन्दर महेशानन्द शास्त्री का भी कुछ हाथ है।

यद्यपि सच यह था कि वे प्रजामंडल का सर्वथा दमन कर चुके थे। यह संस्था बिजली की तरह, बीहड़ राज्य के ऊपर छाई अंधकारमयी दुख-घटा में एक बार चमक कर फिर सदा के लिए लोप सी हो गई थी। अगर इस संस्था की कोई चिनगारी या कुछ भी आग बाकी थी तो वह लोगों की असमर्थता और निराशा की राख के पहाड़ के नीचे दबी थी। अब उसका ऊपर आना असम्भव ही था।

कभी कभी भुवनमोहिनी सोचती कि वह उस जगह पर जाय, जहाँ बाबा बजरंगी बैठा करते थे। वहाँ की मिट्टी को अपने बदन में लगाये और वहाँ से चल कर कृष्णसागर में डूब कर अपना प्राण दे दे, लेकिन वह अपने इस विचार को कार्य का रूप देने का साहस न कर सकी।

भुवनमोहनी की यही मानसिक अवस्था थी जब एक दिन शिवलोक के द्वार पर राज्य की एक पालकी-मोटर आकर खड़ी हुई। पालकी को देखते ही शिवलोक के निवासियों के होश

उड़ गये। वे इस रहस्य को जानते थे। थोड़ी देर बाद ही महाराजा का एक विश्वासपात्र सेवक शिवलोक के अन्दर प्रविष्ट हुआ। महेशानन्द शास्त्री को जब इस पालकी के आने की खबर लगी तब वे सन्न रह गये। इस पालकी का रहस्य, वे जानते थे। इस राज्य में एक प्रथा अति प्राचीन काल से चली आती थी। जिसका नाम था पवाई। इस प्रथा का नियम यह था कि जिस किसी भी व्यक्ति के द्वार पर यह पालकी जा कर रुकती थी, उसको अपनी क्वारी पुत्री को उसमें बैठाल कर राज महल की ओर भेजना पड़ता था। यह लड़की महाराजा की कृपापात्र मानी जाती थी। उसको महल में रहने का स्थान मिलता था और उसके पिता को आदर बक्सा जाता था। कितने ही लोग इस प्रकार के मान के लिए उत्सुक रहा करते थे। कितने ही लोग इसी मान की लालसा में अपनी लड़कियों की बड़ी उम्र तक शादी नहीं करते थे। लेकिन रियासत में कितने ही ऐसे भी लोग थे जो इस प्रथा को रियासत के लिए घोर कलंक की बात समझते थे। महेशानन्द शास्त्री ऐसे ही लोगों में थे। अपने द्वार पर पालकी आई देखकर वे क्रोध से आग बबूला हो उठे। अपमान से उनका हृदय पहले ही से मथ गया था। उनमें अब अधिक बरदाश्त करने की शक्ति न रह गई थी। उन्होंने बाहर निकल कर महाराजा के विश्वासपात्र सेवक को डाँटा और उससे कहा—इसी दम यह पालकी मेरे दरवाजे से हटा ले जाओ। उसके बाद क्रोधावेष में वहीं शिवलोक के द्वार पर खड़े खड़े उन्होंने कहना शुरू किया—"हे भगवान् शंकर! तुम अपनी तीसरी आँख खोलो, अग्नि की वर्षा करो, इतनी अग्नि बरसाओ कि सारा बीहड़ भस्म हो जाय।"

राज्य-कर्मचारी महेशानन्द शास्त्री की इस क्रोधाग्नि के सामने ठहर न सके। वे जैसे आये थे वैसे ही पालकी लेकर चले गये।

यह बहुत बड़ी उपेक्षा थी जो महेशानन्द शास्त्री ने बीहड़ नरेश की की थी। रियासत के अन्दर कोई व्यक्ति कितना ही महत्व का स्थान क्यों न रखता हो, वह पवाई प्रथा की उपेक्षा नहीं कर सकता था। जो इसकी उपेक्षा करता, उसके लिए एक ही सजा थी। वह यह कि वह चौबीस घंटे के अन्दर रियासत खाली कर दे। यदि वह चौबीस घंटे के अन्दर रियासत खाली नहीं करता था तो राज्य के कर्मचारी उसकी पीठ पर कोड़े लगवाते हुए उसे रियासत से बाहर ले जाते थे। उसका माल असबाब जब्त कर लेते थे और उसकी सब तरह से बेइज्ज़ती करते थे।

जब महेशानन्द शास्त्री ने पवाई की पालकी की उपेक्षा की और पालकी चली गई, तब उनके सामने अपनी दुर्दशा की वह तस्वीर भी आई। उन्होंने तुरन्त ही शिवलोक के अन्दर घुस कर उमा से कहा—प्रिये तैयार हो जाओ, शिवलोक इसी समय खाली करना होगा।

उमा को वस्तुस्थिति समझने में देर न लगी, उसके मुँह से कोई शब्द नहीं निकला। सिर्फ़ उसकी आँखों से आँसू निकल आये। पर वह दृढ़ नारी थी। अपने छोटे बच्चे को गोद में लेकर तैयार हो गई।

भुवनमोहिनी उस समय भी अपने कमरे में लेटी हुई थी। उमा ने उसके पास जाकर कहा—बेटी बिस्तर छोड़ो, इसी समय हमको रियासत से दूर भागना है।

माता ने हाथ पकड़ कर भुवनमोहिनी को चारपाई से उठाकर बैठाला और फिर खड़ा कर दिया।

भुवनमोहिनी ने कहा—माता यह सब मुसीबत मेरे इसी शरीर के वास्ते है। रियासत के कुत्ते इस मृतक शरीर के माँस को भक्षण करके ही दम लेना चाहते हैं। इसे उनके हवाले कर दो।

भुवनमोहिनी बिलकुल निराश हो गई। इस जीवन में बैरिस्टर मदनगोपाल से भेंट होने की उसे आशा न थी। अपने ही लिए वह भार स्वरूप थी। अपने साथ अपने माता-पिता और और अपने छोटे भाइयों को मुसीबत के गड्ढे में गिराना नहीं चाहती थी। दर दर की उन्हें ठोकरें खिलाना नहीं चाहती थी। यदि ईश्वर ने उसे सुन्दर शरीर दिया है तो मज़बूत दिल भी दिया है। परिवार के लोगों को वह पीड़ित नहीं होने देगी। वह राजमहल में जायगी। और वहाँ विष खाकर मर जायगी। उसके हृदय ने इस बात को किसी तरह गवारा नहीं किया, कि उसके कारण उसके परिवार के सभी लोग दुखी रहें, और मारे मारे फिरें। वह अपने माता-पिता और अपने भाइयों के भावी संकट की कल्पना करके सिहर गई, और उसने अपने कर्त्तव्य को निश्चित किया। एक बार कर्त्तव्य निश्चित कर लेने से उसमें एक विचित्र शक्ति और साहस आ गया। वह फिर वही भुवनमोहिनी बन गई जिसने पाकड़ के वृक्ष के नीचे बाबा बजरङ्गी को प्रजामंडल का निर्माण करने के लिए प्रेरित किया था। उसने तुरन्त अपने पिता के पास जाकर कहा—पिता जी मुझे उन नर पिशाचों के हवाले कर दीजिए और समझ लीजिए कि मैं मर गई। एक के लिए सबको दुःख के गड्ढे में ढकेल देना कदापि उचित नहीं।

महेशानन्द शास्त्री ने स्नेह से भुवनमोहिनी को अपनी ओर खींचते हुए कहा—बेटी, जिस प्रकार शरीर के एक अँग को काटकर फेंकने से मनुष्य की मौत है उसी प्रकार परिवार के एक व्यक्ति को असहाय छोड़कर भागने में परिवार की मौत है। यदि हम तुम्हें उन राक्षसों के हाथ चुपचाप चले जाने देंगे तो क्या हम एक क्षण भी सुख से सो सकेंगे? क्या हम अपनी अन्तःकरण की अग्नि में झुलस नहीं उठेंगे? इस मुसीबत का सामना करने में ही हम सबों की भलाई है। शायद बीहड़ेश्वर हमारी

परीक्षा लेना चाहते हों। तुम चिन्ता मत करो! बीहड़ेश्वर महादेव सब पार लगावेंगे।

भुवनमोहिनी आगे कुछ बोल न सकी और सिसक-सिसक कर रोने लगी। महेशानन्द शास्त्री ने अपने पिता की बाहों में उसे जकड़ लिया, जैसे वे कह रहे हों—मेरे जीते जी मेरी बेटी को कौन मुझसे छीन सकता है?

१३

महेशानन्द शास्त्री अपने परिवार को अपनी मोटरकार पर बिठला कर अपने नौकर और नौकरानियों को अश्रु भरे नेत्रों से बिदाई देकर और जो कुछ सामान वस्त्राभूषण साथ ले जा सकते थे, लेकर जाने ही वाले थी कि बीहड़ राज्य की पुलिस की लारी आ पहुँची। पुलिस की लारी के पीछे राजमहल के पवाई वालों की ओर से एक पालकीनुमा कार भी भेजी गई थी। यह इसलिए आई थी कि शायद अंतिम घड़ी में महेशानन्द शास्त्री चेत जायँ और यह सम्मान प्राप्त कर लें।

पुलिस के अधिकारियों ने शास्त्री जी को और उनके परिवार के लोगों को मोटरकार पर से उतरने की आज्ञा दी और कहा—आपकी चल और अचल जो भी जायदाद है सब जप्त की जाती है। आप पैदल जहाँ चाहें वहाँ जा सकते हैं।

शास्त्री जी ने क्रुद्ध दृष्टि से उन सब नर राक्षसों की ओर देखा, और अपनी असमर्थता को स्मरण करके अपनी कार से नीच उतर पड़े। उनके परिवार के सब लोग भी उनके साथ ही

उतर पड़े। ड्राइवर ने उनके छोटे बच्चे को गोद में उठाया और वे सब एक ओर चलने को उद्यत हुए।

इसी बीच में उनकी पीठ पर पवाई के कर्मचारियों के कोड़े पड़ने लगे। उनकी, उनके नौकरों की, और उनके दोनों बच्चों की पीठ पर कोड़े लगाये गये। *पवाई प्रथा का नियम यह भी था कि स्त्रियों की पीठ पर कोड़े नहीं लगाये जाते थे। इसलिये भुवनमोहिनी और उसकी माता ये दोनों इस सम्मान से वंचित रहीं।*

कोड़े लगते ही दोनों बच्चे तिलमिला उठे और महेशानन्द शास्त्री ने चपेट में आये हुए सर्प की तरह क्रुद्ध दृष्टि से घूम कर उन सबों की ओर देखा। शास्त्री जी का यह उपेक्षा पूर्ण उग्र रूप देख कर एक बार वे सब सहम गये। शास्त्री जी ने कहा—यदि तुम सब मेरे और मेरे बच्चों के प्राण के ग्राहक हो तो लो हम सब को मार डालो। अब हम एक कदम भी यहाँ से आगे नहीं हटाएँगे।

हिम्मत करके एक गँवार सिपाही ने शास्त्री जी के गले में हाथ लगा कर आगे की ओर ढकेला और दूसरे सिपाही ने उनका हाथ पकड़ कर घसीटना शुरू किया। एक तीसरे सिपाही ने उनके बड़े बच्चे का हाथ पकड़ा, और चौथा उनके छोटे बच्चे को उनके ड्राइवर की गोद से छीनने लगा। छोटा बच्चा चीख उठा। शोर सुन कर आसपास के बंगले से लोग निकल आये। वे यह दयनीय दृश्य देखकर अत्यन्त दुखी हो उठे। लेकिन यह राज्य कर्मचारी जैसे कपड़ों के बने निर्जीव गुड्डों के साथ खेल रहे हों। लाड़ प्यार से पले इन मानव पुतलों पर उन्हें दया नहीं आई, और जिस व्यक्ति के चरणों पर स्वयं महाराजा मस्तक रखते थे, उसका सड़क पर इस प्रकार अपमान करने में उन्हें तनिक भी हिचक न हुई। भुवनमोहिनी अपने भाइयों और अपने पिता की यह दुर्गति देख न सकी। आखिर यह सब उसी

के कारण तो था। उसने तुरन्त पुलिस के प्रधान कर्मचारी के पास जाकर कहा—मेरा शरीर आपके हवाले है, इसे आप जहाँ चाहें वहाँ भेज दें। लेकिन मेरे माता-पिता की इस प्रकार बेइज्ज़ती न करें और भाइयों को इस प्रकार पीड़ित न करें।

पुत्री के शब्द कानों में पड़ते ही महेशानन्द शास्त्री जहाँ खड़े थे वहीं से चिल्लाकर बोले—भुवनमोहिनी ! भुवनमोहिनी ! अपना दिल मजबूत करो ! अब कुछ बाकी नहीं है। इस रियासत में हमें यों भी नहीं रहना है। इस रियासत में एक एक साँस लेना सौ सौ नर्क का आह्वान करना है। इधर आओ मेरे पास आओ।

शास्त्री जी अपनी पुत्री को पकड़ने के लिए झपटे। लेकिन दो सिपाही उन्हें पहले ही से पकड़े हुए थे और तीसरा उनकी पीठ पर कोड़ा जमाने ही वाला था कि पुलिस के बड़े अधिकारी ने कहा—जरा ठहरो।

पिता के विनय, करुणा और आदेश भरे वचनों का कोई ख्याल न करके भुवनमोहिनी पवाई के कर्मचारियों के इशारे के अनुसार उनकी कार में जाकर बैठ गई। उसके कार में बैठते ही ड्राइवर ने कार को घुमाया और कार चल पड़ी। उस कार के जाने के बाद ही पुलिस के सिपाहियों ने महेशानन्द शास्त्री, उनकी पत्नी और बच्चों को घसीट कर शिवलोक के अन्दर कर दिया। और वे सब जिधर से आये थे उसी तरफ को चले गये।

पिछली बार भुवनमोहिनी अपनी इच्छा के विरुद्ध ले जाई गई थी। इस बार वह स्वेच्छा से जा रही थी। कार में वह पिछली सीट पर अकेली बैठी थी। चाहती तो इधर उधर सड़क पर कूद सकती थी। लेकिन उसने कूदने की इच्छा नहीं

की; क्योंकि वह जानती थी कि उसका कुपरिणाम उसके माता-पिता को भुगतना पड़ेगा। उसके कानों में उसके फूल से कोमल छोटे भाई की चीख़ गूँज उठती थी। अपने दोनों प्यारे भाइयों के लिये वह क्या नहीं कर सकती थी। उनके लिये वह आग में कूद सकती थी। उनके लिये वह साँप के मुँह में अपनी अँगुली दे सकती थी। उनके लिये वह सब प्रकार की यातनायें सह सकती थी। अगर उसके भाइयों का कल्याण हो, उसके माता-पिता की रक्षा हो तो उसे अपने मान अपमान की, अपने धर्म की कोई परवाह नहीं थी। यह हाड़ माँस का क्षण-भंगुर शरीर ही तो था जो प्राण निकल जाने पर घृणित शव के रूप में बदला जा सकता है। इस शव के बदले अगर उसके भाइयों के प्राण की रक्षा हो सकती है तो यह कोई मूल्य नहीं है। अपने शरीर को शव के रूप में परिवर्तित करके उसे महाराजा के हाथ में अर्पण करने के लिये वह तैयार हो गई।

उसको यह ख़ूब मालूम था कि इस बार यदि वह रियासत के कर्मचारियों के चंगुल में पड़ी तो फिर छुटकारा और पवित्र बच सकना असंभव है। लेकिन वह जीवित रहते हुए अपनी इच्छा के विरुद्ध अपनी कुल मर्यादा को विनष्ट होते हुए भी देख नहीं सकती थी। इसीलिये उसने अपने आँचल के खूंट में विष की एक फंकी बाँध रखी थी। ताकि वक्त जरूरत पर उसे अपने मुँह में चुप चाप डाल ले।

भुवनमोहिनी अपने आँचल में बँधी हुई विष की इस फंकी को मुट्ठी में किये हुये शान्ति भाव से कार में बैठी हुई चली जा रही थी। जब यह कार बस्ती से बाहर निकली और बीहड़ के किले के रास्ते पर आई तब भुवनमोहिनी ने घूम कर एक बार पीछे की ओर देखा। उसने मन ही मन शंकर स्वरूप अपने पिता को प्रणाम किया और फिर अपनी आँखें बन्द करके

वह अचल हो गई। बीच-बीच में वह आँखें खोल कर देख लेती और फिर आँखें बन्द कर लेती। जैसे घने बादलों में क्षण भर बिजली के चमकने से प्रकाश और फिर घोर अंधकार छा जाता है। वैसे ही भुवनमोहिनी के हृदय में पहले विष का स्मरण करने से जो उसकी मुट्ठी में दबा हुआ था, क्षण भर के लिये एक प्रकार की प्रसन्नता होती और फिर घोर उदासी छा जाती। बीच-बीच में विष का स्मरण आते ही वह आँखें खोलती और बीहड़ की त्रास भरी भूमि को देख कर फिर आँखें बन्द कर लेती। उस समय उसे बीहड़ में जो भी दिखाई पड़ते—चलते-फिरते लोग, पशु-पक्षी और वृक्ष लता सब उसे विवशता असमर्थता, अपमान की तसवीर प्रतीत होते। और वह मन ही मन सोचती—नरक यही है। बीहड़ शायद इसका आधुनिक नाम है।

अब मोटर बड़ी तेजी के साथ जा रही थी। सड़क के इधर-उधर ऊबड़-खाबड़ भूमि थी जिसमें झाड़ियों के छोटे-छोटे झुरमुट थे। बीच-बीच में लम्बे बाँसों के पुंज मिलते थे। जो सड़क से थोड़ा हटकर थे। उन बाँसों के पुञ्जों में बन्दर झूल रहे थे। और विचित्र प्रकार का खेल खेल रहे थे। भुवनमोहिनी ने एक बार फिर अपनी आँखें खोलीं। इस बार उसने बीहड़ेश्वर महादेव के मन्दिर के शिखर को देखने और उनको अंतिम बार प्रणाम करने लिये आँखों को खोला था। शिखर उसे दिखाई पड़ गया। उसने यह नहीं कहा कि हे शंकर मेरी रक्षा करो; क्योंकि उसके सामने अपनी रक्षा का प्रश्न नहीं था। उसने सिर्फ इतना ही कहा—हे शंकर मेरे माता-पिता और भाइयों की रक्षा करो और मुझमें बल दो कि मैं तुम्हारे दिए हुये शरीर को शव के रूप में परिवर्तित करके बीहड़ नरेश को समर्पित कर दूँ।

भुवनमोहिनी की यह प्रार्थना समाप्त भी न हो पाई थी कि सड़क पर कुछ फासिले पर खड़े हुये बाँस के पुञ्ज में से एक बाँस झटके के साथ इतना झुका कि वह मोटर ड्राइवर के सिर में बड़े जोरों से लगा। और उसके साथ ही भुवनमोहिनी को ड्राइवर के बग़ल बैठी हुई चपला दिखाई पड़ी।

चपला को राज्य कर्मचारियों का षडयंत्र मालूम हो गया था। वह जानती थी कि राज्य कर्मचारी कोड़े मार कर शास्त्री जी और उनके बाल बच्चों को बीहड़ नगर से बाहर निकलवाएँगे और भुवनमोहिनी को बल-पूर्वक पकड़कर किले की ओर ले जाएँगे। इसलिए उसी समय से उसने भुवनमोहिनी की रक्षा की सूरत सोचनी शुरू कर दी थी। बड़े तड़के ही वह योद्धा का वेष बनाकर और आवश्यक अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित होकर सड़क के उस हिस्से की ओर आ गई थी। पहले उसने कोई ऐसा वृक्ष तलाश किया जिसकी डाल सड़क के ऊपर हो। ताकि वह उस डाल पर से उस मोटरकार पर कूद पड़े और भुवनमोहिनी को बचा ले। लेकिन यह निर्जीव और कायर भूमि थी। उसमें कोई वृक्ष इतना ऊँचा सिर उठाए हुए नहीं मिला जो उसकी सहायता कर सकता। तब सड़क के किनारे किनारे झाड़ियों में छिपती हुई वह और आगे बढ़ी। बाँस के पुञ्ज सड़क से कुछ हटकर थे। चपला को उन बाँसों पर बन्दरों का खेल देखकर एक उपाय सूझा। पहले वह एक बाँस पर चढ़ी और अपनी शक्ति से, जिस प्रकार उन पर बन्दर झूल रहे थे वैसे ही उसने भी तेजी से झूलना शुरू किया, यहाँ तक कि वह बाँस दोनों तरफ़ की ज़मीन को छूने सा लगा। तब वह एक ऐसे बाँस पर चढ़ी जो झूलने से एक तरफ़ सड़क पर आ जाता था और दूसरी तरफ़ एक झाड़ी को स्पर्श करता था। एक बार जब वह बाँस झाड़ी की ओर गया उसने झाड़ी के भीतर एक मज़बूत पौधे के तने को पकड़ लिया

और बाँस को भी पकड़े हुए उसी में छिप कर बैठ गई। जब पवाई वालों की कार ठीक उस बाँस की सीध में आने को हुई तब चपला ने झाड़ी के वृत्त को छोड़ दिया और स्वयं बाँस के साथ उछल कर सड़क की ओर मोटर में आ गिरी और गिरते ही धक्के से ड्राइवर को हटा दिया और स्वयं उसकी जगह पर बैठ कर मोटर चलाने लगी।

उस कार में ड्राइवर के अलावा उसी के बराबर पर दो व्यक्ति और बैठे थे। वे इस दुर्घटना के लिए तैयार न थे। और ये बहुत ही भयभीत हो उठे। अगर यह एक दूसरे को पकड़ न लेते तो यह बिना गिराए ही मोटर से नीचे सड़क पर चले आते। इस कार की रक्षा के लिए पीछे पुलिस वालों की एक लारी आ रही थी। आगे की दुर्घटना को पुलिस वालों ने देखा। चपला ने भी इन लोगों को आते हुए देखा। लेकिन उनकी परवाह न करके चपला ने कार को मुक्त गति से छोड़ दिया।

भुवनमोहिनी एक विचित्र प्रकार की प्रसन्नता से गद्‌गद् हो गई लेकिन साथ ही उसको यह आशंका भी हुई कि कहीं इसका कुपरिणाम उसके माता-पिता को न भोगना पड़े। इसलिए वह उदास हो कर बोली—चपला तू ने यह क्या किया ? इससे क्या मेरे माता-पिता की रक्षा होगी ? मुझे भय है कि कहीं उनका संकट और न बढ़े !

"बहन डरो मत, मैंने उनकी रक्षा की भी पूरी व्यवस्था कर ली है। अब उनका कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा। तुम किसी बात की परवाह मत करो और जैसा मैं कहूँ वैसा ही करो।"

भुवनमोहिनी ने पीछे की ओर घूम कर देखा—ड्राइवर अब भी सड़क पर पड़ा हुआ था और पुलिस वालों की लारी द्रुत

गति से दौड़ी चली आ रही थी। भुवनमोहिनी सिहर उठी। उसने कहा—चपला।

इससे अधिक वह बोल न सकी। चपला ने पीछे की ओर घूम कर देखा और भुवनमोहिनी के भय का कारण समझ कर बोली—बहन, तुम्हें बीहड़ेश्वर पर विश्वास है।

"हाँ।"

"तो चिंता मत करो। बीहड़ेश्वर हम सब की रक्षा करेंगे।"

रियासत का ड्राइवर सड़क के एक ओर गिर गया था। दर्द से घसिट कर वह सड़क के बीचोबीच में आ गया था और दर्द से कराह रहा था। पुलिस की लारी के मार्ग में वह एक भारी बाधक सिद्ध हुआ। पुलिस वालों को उसके लिए अपनी लारी रोकनी पड़ी और उसको उठाकर लारी में रखना पड़ा। इस काम के करने में कुछ देर लगी। इधर चपला ने पवाई वाली मोटर इतनी तेज़ की कि वह पल मारते ही पुलिस वालों की आँखों से ओझल हो गई। ये दोनों आदमी जो चपला के बगल में एक दूसरे को पकड़े बैठे हुए थे। जब ज़रा होश में आये और परिस्थित को ठीक समझ न सके तो भय से कंपित स्वर में चपला से बोले—आप कौन हैं ?

चपला ने अति घृणित भाव से उन दोनों की ओर देखते हुए कहा—"प्रजामंडल।"

"हैं ! प्रजामंडल ! उसके तो सब आदमी या तो गिरफ़्तार कर लिए गये या गोलियों से मार डाले गये और उनके घरों में आग लगा दी गयी।"

"जी हाँ, मैं उन्हीं लोगों की प्रेत-आत्मा हूँ जो गोली के घाट उतारे गये हैं।"

"प्रेत-आत्मा ! प्रेत !"

"हाँ, हाँ, प्रेत ! पिशाचिनी, मैं पिशाचिनी हूँ, मैं सबको कच्चे ही खा जाऊँगी। तुम्हारी रियासत के दम्भी कर्मचारियों को मिट्टी में मिला दूँगी। पीड़ित प्रजा की प्रेतात्मा हूँ। मेरा मुकाबला कोई नहीं कर सकता।"

ये दोनों व्यक्ति सिहर उठे और भय से अपने आप ही मोटर से कूद कर दोनों ने अपने हाथ पाँव तोड़ लिए। और इस प्रकार पुलिस वालों की लारी के मार्ग में नई बाधाएँ उपस्थित कीं। आगे जहाँ से सड़क मुड़ी हुई थी वहाँ मोड़ के दूसरी ओर चपला ने कार रोक दी और भुवनमोहिनी से कहा—उतरो, जल्दी करो।

भुवनमोहिनी जैसे ही कार से उतरी, उसने देखा, कि उसका वह ड्राइवर जो उसके अपहरण के अपराध में गिरफ्तार किया गया था और जिसको काले पानी की सजा हुई थी सड़क पर खड़ा हुआ, उसको प्रणाम कर रहा है। उसको देखकर भुवनमोहिनी आश्चर्य कंपित स्वर से बोली—"केशव तुम यहाँ कैसे?"

ड्राइवर का नाम केशव था। उसने कुछ कहने के लिए मुँह खोला ही था कि चपला ने कहा—यह वादविवाद का समय नहीं है। पुलिस के कुत्ते हमारे पीछे हैं। केशव ! तुम अपने पूर्व कार्यक्रम के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करो।

यह कहते हुए चपला ने भुवनमोहिनी का हाथ पकड़ा और उसको घसीटती हुई जंगली नाले की ओर चली गई। नाले के अन्दर से दोनों ने पवाई की कार को और उसके पीछे-पीछे पुलिस की लारी को जाते हुए देखा।

कोई पौन मील जाकर यह नाला खेतों में निकलता था। दोनों छिपे छिपे उन खेतों तक मुश्किल से २ फर्लांग गई होंगी कि उन्हें एक बहल मिली। दोनों उस बहल में सवार हुईं।

बहल पर परदा डाल दिया गया और एक किसान ने उसको हाँकते हुए, बीहड़ की उबड़-खाबड़ भूमि पार करते हुए, विक्रमपुर की ओर बढ़ाया।

अन्दर भुवनमोहिनी आश्चर्य चकित हुई, चपला से पूछ रही थी—मैं स्वप्न देख रही हूँ या जो कुछ हो रहा है वह सब सही है। तुम्हारी पवाई के कार में कूद पड़ने की बात तो मेरी समझ में आती है, लेकिन यह मेरी समझ में नहीं आता कि केशव इस मोड़ पर हमारी रक्षा को तैयार खड़ा हुआ हमें कैसे मिला ?

चपला ने कहा—भुवनमोहिनी यह एक लम्बा किस्सा है। लेकिन अब हमारे पास कोई काम नहीं है और रास्ता लम्बा है इसलिए मैं तुम्हें इस किस्से को बताऊँगी; क्योंकि वक्त काटने के लिए भी तो हमें कुछ चाहिए।

बहल तेजी से चली जा रही थी। बैलों के गले में बँधी घंटियाँ बज रही थीं और बहल के अन्दर बैठी चपला भुवनमोहिनी को ड्राइवर के उद्धार की कहानी सुना रही थी। चपला ने बताया कि किस प्रकार उसने जेल के दारोगा से मैत्री की, किस प्रकार उसने उसके यहाँ आना जाना बढ़ाया और किस प्रकार जब एक रात वह सो रहा था, उसने उसकी चाभियाँ लेकर जेल का फाटक खोलकर अन्दर घुस गई और उसने बारकें खोलकर भुवनमोहिनी के ड्राइवर और अपने मंडली के समस्त कर्मचारियों को छुड़ाया।

उसके बाद चपला ने उसी जेल के अन्दर बाबा बजरंगी से अपनी मुलाकात की बात बतलानी शुरू की।

"भुवन बहन, जब मैं बाबा बजरंगी की काल कोठरी के द्वार पर पहुँची और द्वार खोलने लगी, तब उन्होंने पूछा—

रात है या दिन ! उनकी कोठरी इतनी अंधेरी थी कि उन्हें दिन और रात का पता न था। वह उसमें इतने दिन जीवित कैसे पड़े रहे यही सोच कर मुझे आश्चर्य हो रहा है। उनकी बातों का उत्तर न देकर जब उस काल कोठरी के अन्दर मैं गई और उनके चरणों को स्पर्श करके बोली—बाबा, मैं चपला हूँ। जेल का फाटक मैंने खोल दिया है। इस वक्त पहरेदार सोये हुए हैं। जल्दी जेल के बाहर चलो। तब उन्होंने कहा—चपले मैं तुम्हारे साहस की प्रशंसा करता हूँ। लेकिन मैं छिपकर जेल से बाहर नहीं चल सकता और मेरे साथ प्रजामण्डल के जितने कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार हुए हैं उन सब को भी जेल के बाहर नहीं निकलना चाहिये। मैंने यही निश्चय किया है, कि जब तक ज़िन्दा रहूँगा इस जीवन में सत्य और अहिंसा का पालन करूँगा। सत्य और अहिंसा की नींव पर ही प्रजामण्डल कायम है। इसी उसूल से राज्य के सारे निवासियों की रक्षा हो सकती है। इसलिये मुझे जेलखाने से बाहर निकलने के लिये मत कहो। मुझे यहीं पड़ा रहने दो। जिनको मेरे सिद्धान्त पर दृढ़विश्वास न हो और जो सब प्रकार के कष्ट सहन करने के लिये तैयार न हों, उनको निकल जाने दो। मुझे विश्वास है कि एक न एक दिन तुम भी इस बात को स्वीकार करोगी कि बीहड़ ही नहीं समस्त संसार में अगर शान्ति स्थापित की जा सकती है तो अहिंसा द्वारा ही स्थापित की जा सकती है।

इसके बाद चपला ने भुवनमोहिनी को बताया कि किस प्रकार उसने प्रजामण्डल के अन्य कार्य कर्त्ताओं से भेंट किया और उनसे जेल के बाहर निकलने को कहा। लेकिन वे लोग बिना बाबा बजरंगी की आज्ञा बाहर निकलने के लिये तैयार न हुए तब मैं अपनी सरकस मंडली के कर्मचारियों और तुम्हारे ड्राइवर को लेकर बाहर निकल आई।

भुवनमोहिनी ने कहा—चपला मेरा ख़्याल है कि बाबा बजरंगी ने जो बातें कही हैं, वही ठीक हैं। हिंसा का मुकाबला हम हिंसा से नहीं कर सकते, उससे तो हिंसा और बढ़ती है। अन्याय और अनाचार को संसार से मिटाने के लिये मेरी भी समझ में यही मार्ग है कि हम धैर्य और साहस के साथ प्रेम पूर्वक अपनी बात को जनता के सामने रक्खें और सब प्रकार के जुल्मों को सहें।

चपला ने कहा—भुवन ! ज़रा यह तो सोचो जब तुम पवाई की कार पर सवार हुई थीं तो तुम्हारा यह सिद्धान्त कहाँ गया था ? क्या तुम अपने माता-पिता और भाइयों पर होते हुए ज़ुल्म को देख सकती थीं ? हर मनुष्य के जीवन में एक क्षण ऐसा आता है जब वह अन्याय को, अनाचार को, ज़ुल्म को सहन नहीं कर सकता और बदला लेने के लिए, मारने और मरने के लिए तैयार हो जाता है। तुम्हीं सोचो, जब तुम्हारा दिल इतना मज़बूत नहीं है कि जब तुम अपने भाइयों पर होते हुए ज़ुल्म को नहीं देख सकती हो; तो तुम यह कैसे सोचती हो कि रियासत की अनपढ़ प्रजा इस प्रकार के ज़ुल्मों को देख सकती है। क्या माता अपनी आँखों के सामने अपने बेटे की; पति अपनी आँखों से अपनी पत्नी की और पिता अपनी आँखों से अपनी पुत्री की बेइज़्ज़ती देख सकता है ?

भुवनमोहिनी ने कहा—चपला ! तुम्हारी बात में कुछ तथ्य जान पड़ता है। लेकिन मैं सोचती हूँ कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। मैं सोचती हूँ कि मुझे अपने पिता के साथ मौजूद रहना चाहिए था और सारे परिवार का बलिदान हो जाने देना चाहिए था। उनकी मुसीबत मुझे देखनी चाहिए था और सब कुछ सहना चाहिए था। मैं सोचती हूँ कि शास्त्री परिवार का यह बलिदान बीहड़ राज्य की प्रजा में एक नई जान फूंक देता।

वह सोचने लगी—हाय मेरी कायरता से माता-पिता का यह अपमान हुआ। इस घटना से अवश्य ही बीहड़ की प्रजा में मुर्दनी छा गयी होगी। जब बाबा बजरंगी ने यह समाचार सुना होगा तो निश्चय ही वे अधीर हो उठे होंगे।

भुवनमोहिनी फूट-फूट कर रोने लगी और अपने आप को कोसने लगी।

इस प्रकार दोनों में तब तक बातें होती रहीं जब तक वह बहल विक्रमपुर की प्राचीर के अन्दर नहीं पहुँच गई।

१४

विलायत जाने के पहले मदनगोपाल की शादी विक्रमपुर के राज्य पंडित की कन्या से होने वाली थी। सब बातें करीब-करीब तय हो गई थीं। मदनगोपाल ने राज्य पंडित की कन्या को देखा था, और पसंद भी किया था। लेकिन विलायत से वापस आने पर उनका झुकाव भुवनमोहिनी की ओर हो गया था। भुवनमोहिनी उन्हें राज्य पंडित की कन्या से कहीं अधिक सुन्दर, सुशील और अपने स्वभाव के अनुकूल जान पड़ी थी।

विलायत से जब वे लौट कर आये थे तब विक्रमपुर के राज्य पंडित ने उन्हें अपने यहाँ कई बार आ कर भोजन करने के लिये आमंत्रित किया था। लेकिन वे कुछ न कुछ कह कर टाल देते थे और अन्त में जब राज्य पंडित की ओर से यह प्रस्ताव किया गया कि पूर्व निश्चय के अनुसार शादी अब हो जानी चाहिए, तब बैरिस्टर मदनगोपाल ने स्पष्ट रूप से शादी

के संबंध में अस्वीकृति दे दी। इस बात से विक्रमपुर के राज्य पंडित और उनके परिवार को बहुत दुख पहुँचा। उस तारीख से उन्होंने बैरिस्टर मदनगोपाल के यहाँ का आना जाना बिलकुल छोड़ दिया था और वे अपनी कन्या के लिए कोई और वर तलाश करने में लग गये थे।

भुवनमोहिनी के निगाह से हट जाने के बाद, बैरिस्टर मदन-गोपाल के सामने फिर विक्रमपुर के राज्य पंडित की सुशीला कन्या की सुन्दर सुकुमार छवि उपस्थित हो गई। उन्होंने सोचा कि मैंने इस युवती की अवहेलना करके बहुत भूल की! वास्तव में उनकी रुचि के अनुकूल यही पत्नी हो सकती है। उन्हें अपने आप पर रोष आया। वे भुवनमोहिनी की ओर क्यों आकृष्ट हुए और उनको महेशानन्द पर भी रोष आया। उन्हें जान पड़ा, जैसे उनको भुवनमोहिनी के जाल में फँसाने का प्रयत्न महेशा-नन्द की ओर से ही हुआ था। जितना ही वे इन सब बातों को सोचते उतना ही पश्चात्ताप से अन्दर ही अन्दर सन्तप्त हो उठते और उनके अन्तःपट पर विक्रमपुर के राज्य पंडित की कन्या का लजीला मुखड़ा अंकित हो उठता। वे सोचते कि वह युवती कितनी दुखी होगी। वह उन्हीं के नाम की माला जपती होगी। उन्होंने वादा करके भी उसके साथ विवाह करना क्यों अस्वीकार कर दिया। उनके इस उपेक्षा भाव से उस युवती के दिल पर कितनी चोट पहुँची होगी? वे सोचते कि सम्भवतः इसी का दंड है जो विधि ने भुवनमोहिनी के हाथों उन्हें दिलवाया है। जिस प्रकार उन्होंने राज्य पंडित की कन्या की उपेक्षा की है वैसे ही भुवनमोहिनी ने उनकी उपेक्षा कर उनको दंड दिया है।

इस अन्तर्द्वन्द्व को वे अपने हृदय के अन्दर अधिक समय तक सीमित नहीं रख सके। उन्होंने निश्चय किया कि उन्हें विक्रमपुर चलना चाहिए। राज्य पंडित से मिल कर क्षमा माँगनी

चाहिए और उनके निकट किए गये अपने वादे को पूरा करना चाहिए। यही सोचकर एक सुनहली संध्या को वे विक्रमपुर के लिए रवाना हो गये।

राज्य पंडित और उनके परिवार के लोगों ने पहले तो उनकी उपेक्षा की; लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि बैरिस्टर साहब अपनी भूल समझ गये हैं और उसके लिए वे पश्चात्ताप कर रहे हैं, तब वे उनसे प्रसन्न हो गये। उन दिनों करीब छः महीने से राज्य पंडित की कन्या गौरी की उपासना कर रही थी। बीहड़ की लड़कियाँ गौरी की उपासना अनुकूल वर पाने के लिए किया करती थीं। मदनगोपाल जब उसके द्वार पर आये तो उसने समझा की गौरी उसके ऊपर प्रसन्न हो गईं। इसीलिए उन्होंने मदनगोपाल को यहाँ आने के लिए प्रेरित किया है। राज्य पंडित की इस कन्या को उसके परिवार के लोगों ने खूब अच्छी तरह सजा कर एक बार फिर मदनगोपाल के सामने उपस्थित किया। मदनगोपाल ने उसकी ओर देखा। दोनों ने लज्जा से अपनी आँखे नीची कर लीं और दोनों ने एक दूसरे की मूक चितवन को समझा। राज्य पंडित की कन्या ने मदन-गोपाल की चितवन का अर्थ निकाला—"प्रियतमे! मैं अपराधी हूँ, मुझे क्षमा करो।" मदनगोपाल ने अपनी इस प्रेयसी की चितवन का अर्थ निकाला—"प्रियतम! जो कुछ हुआ है, अच्छे ही के लिए हुआ है, इससे हमारा और तुम्हारा स्नेह बन्धन दृढ़ होगा।"

उस समय दोनों के हृदय एक विचित्र गति से स्पन्दित हो उठे। दोनों के मन की बहुत बड़ी मुराद पूरी हो गई। उन्हें जान पड़ा, जैसे दो पक्षी जिन्हें विधि ने एक शाख पर एक घोंसले में रहने के लिए बनाया हो, अलग-अलग जंगल में भटकने से बच गये। उस समय उन दोनों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था।

विक्रमपुर में रात गुजारने के बाद, दूसरे दिन सबेरे बैरिस्टर मदनगोपाल प्रसन्न चित्त घोड़े पर सवार बीहड़ को वापस आ रहे थे। उनके आगे-आगे एक बहली जा रही थी, हाँकने वाला बैलों को बेरहमी से पीटते हुए लिए जा रहा था। फिर भी बैलों के गले में जो घंटियाँ पड़ी थी, इस निर्जन में प्रातःकालीन छवि का यशोगान करती सी प्रतीत हो रही थीं। बहली में परदा पड़ा हुआ था।

बैरिस्टर मदनगोपाल को जान पड़ा, जैसे बहली में कोई किसान अपनी प्रियतमा को लिए जा रहा है। उन्होंने सोचा कि एक दिन वे भी सुन्दर बहली लेकर आवेंगे, लेकिन उनकी बहली का परदा स्वर्ण के तारों द्वारा जटित होगा। उनके बहली के बैल शंकर के नाँदिए के समान सुन्दर होंगे और उनकी बहली के साथ मित्रों और संबंधियों का खासा जलूस होगा।

जिस रास्ते से बहली जा रही थी वह क़रीब का रास्ता था। बैरिस्टर साहब उमंग में भरे हुए थे; इसलिए उन्होंने अपने घोड़े की बाग़ को दूर के रास्ते की ओर मोड़ दिया। वे फ़ासिले से बहली की ओर देखते हुए और उसमें जुते हुए बैलों के गले में पड़ी हुई घंटियों की मधुर ध्वनि सुनते हुए और विवाह के सुखद कल्पना में बहते हुए, घोड़ा दौड़ाते चले जारहे थे।

अब वे बीहड़ जाने वाली पक्की सड़क के निकट आये। उस सड़क पर उन्होंने जो कुछ देखा, उससे उनका हृदय धक से रह गया। उन्होंने देखा कि भुवनमोहिनी सड़क के किनारे खड़ी हुई है। उसके पास एक और सुन्दरी स्त्री अद्भुत पोशाक में खड़ी हुई है। इस स्त्री को पहचानने में उनको देर न हुई। यह चपला थी। पोस्टरों पर और समाचार पत्रों में इसके अनेक वेष में अनेक चित्र वे देख चुके थे। वे पूर्व से पश्चिम को आ रहे थे।

इन स्त्रियाँ का मुख पूर्व की ओर था। सूरज की किरणों की वजह से ये दूर तक नहीं देख सकती थीं और अपनी निगाह नीचे किए हुए थीं। लेकिन उन्हीं किरणों के मुख पर पड़ने से पत्तियों की छाया होते हुए भी बैरिस्टर मदनगोपाल इन दोनों के मुखड़ों को दूर से ही खूब अच्छी तरह देख सकते थे।

भुवनमोहिनी पहले से दुर्बल हो गई थी और चिन्ता की रेखायें उसके मुखड़े पर अंकित थीं। तथापि वह उन्हें विक्रमपुर के राज्य पंडित की कन्या से बहुत अधिक छविमान प्रतीत हुई। प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश में उन्हें उसका मुखड़ा बहुत भोला और बहुत ही सुन्दर प्रतीत हुआ और चपला भी उन्हें कम सुन्दर प्रतीत न हुई।

उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास ली और अपने घोड़े की चाल को तेज़ किया। पहले वे, जहाँ ये दोनों युवतियाँ खड़ी थी, वहीं से सड़क पकड़ना चाहते थे लेकिन अब उन्होंने और आगे से सड़क पकड़ने का निश्चय किया। उन्होंने फिर एक दीर्घ निःश्वास ली और विधि के विधान को कोसा। आह! यदि भुवनमोहिनी में कुल-मर्यादा के वे भाव होते जो राज्य पंडित की कन्या में है। लेकिन फिर उन्होंने सोचा कि गुलाब में काँटे भी होते हैं। इस दुनिया में गुण और अवगुण सर्वत्र एक में मिले रहते हैं। कलङ्क ही चाँद की शोभा है। सत्य और असत्य, हिंसा और अहिंसा, प्रेम और घृणा ये सब संसार में साथ-साथ चलते हैं। यह संसार इन्हीं सब विरोधी प्रवृत्तियों का ताना बाना है। रूप की अरूप से, अरूप की रूप से ही महत्ता है। ये दोनों ही एक दूसरे के सहायक हैं। प्रेम घृणा के अर्थ को स्पष्ट करता है और घृणा प्रेम के निर्मल स्रोत को जीवित रखती है। असत्य सत्य को गौरव प्रदान करता है, और सत्य गौरव के शिखर पर चढ़कर असत्य की क्षुद्रता को आकर्षक रूप देता है। ये सब चीज़ें विश्व निर्माता के पृथक-पृथक

स्वरूप हैं, और इन्हीं सब चीज़ों से मानव जीवन सुन्दर और सरस है।

इस प्रकार उन्होंने दार्शनिक आवेग में आकर एक बार फिर सोचा कि भुवनमोहिनी भुवनमोहिनी ही है, उनके जीवन को वही आलोकित कर सकती है। उनके संसार को वही सरस बना सकती है। उनके घोड़े का मुँह उस ओर घूमा जा रहा था, लेकिन फिर बैरिस्टर मदनगोपाल ने घोड़े की लगाम को कड़ी ही रखा और वे आगे चले गये। तब एकाएक उनकी दृष्टि दोनों युवतियों के पास खड़े हुए एक पुरुष पर भी पड़ी। उसको पहचानने में भी उनको देर न लगी। यह पुरुष वही केशव था, जिसको उन्होंने आजन्म काले पानी की सज़ा दिलवाई थी। तो क्या यह जेल से निकल भागा और क्या इसी से मिलने के लिए भुवनमोहिनी यहाँ इस एकान्त जंगल में आई हुई है। क्षण भर पहले उनके हृदय में भुवनमोहिनी को क्षमा कर देने, और उसे अपनाने का जो भाव उठा था वह फिर तीक्ष्ण घृणा के रूप में बदल गया। उनके मन में आया कि इसी दम वह उस स्थान पर पहुँचें और तीनों के ऊपर अपने घोड़ों के टापों की वर्षा करा दें।

एकाएक उन्होंने देखा कि वह केशव कार में बैठ गया और उन्हें जान पड़ा जैसे वे दोनों युवतियाँ भी कार में बैठ गईं और कार हवा से बातें करने लगी।

उन्हें जान पड़ा कि उन्हें देखकर ही ये सब अज्ञात दिशा की ओर भाग निकले हैं। ओह! कैसी विश्वासघातिनी यह नारी है। बैरिस्टर मदनगोपाल क्रोध से जल उठे।

अब उनमें वह ताज़गी नहीं रह गई जैसी कि तब थी जब वे विक्रमपुर से चले थे। अब उनके घोड़े में भी वह तेज़ी नहीं थी। उनको पक्की सड़क पर आने की हिम्मत न हुई। पराजित योद्धा की सी थकी-थकी चाल से वे ऊबड़-खाबड़ झाड़ियों के बीच से

अपने घोड़े को चलाने लगे। उनके घोड़े की चाल भी धीमी थी, मानों वह उनको अपनी पीठ पर लादे महीनों इसी तरह चलता रहा हो और थकान से चूर हो।

यद्यपि मदनगोपाल ने जब इस दृश्य को देखा था, वह मुश्किल से एक या डेढ़ मिनट का रहा होगा लेकिन उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि शायद उन्होंने घंटों यह दृश्य देखा हो। अपने मन में वे अपनी भावना के अनुसार कल्पना करने लगे कि यह केशव जेल से कैसे निकल भागा? महेशानन्द ने अपनी पुत्री को उसके साथ इस एकान्त बन में आने की आज़ादी क्यों दे दी? वेश्या की पुत्री चपला इसे कहाँ मिल गई? जल्दी से जल्दी वे बीहड़ पहुँच कर इन सब बातों की जाँच करने का विचार करने लगे। कभी वे सोचते कि दीवान साहब के पास चलना चाहिए, कभी सोचते पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह से मुलाक़ात करनी चाहिए, और कभी सोचते, कि महेशानन्द शास्त्री के पास ही चलकर उनसे जवाब तलब करना चाहिए।

बीच-बीच में उनके मन में यह ख्याल भी उठता कि हमें इन बातों से क्या करना है। भुवनमोहिनी को मुझसे क्या वास्ता है। जब महेशानन्द शास्त्री को अपनी नेकनामी और बदनामी का कोई डर नहीं है, तब उसकी मुझे क्या फ़िक्र पड़ी है? इसी सिलसिले में उन्होंने भुवनमोहिनी के प्रति अपने मन के रोष का समर्थन करते हुए मन ही मन यह तर्क किया कि महेशानन्द शास्त्री का परिवार ही ऐसा है। उनके पिता भी इसी तरह के आदमी थे। भुवनमोहिनी की माता भी एक ग़रीब रसोइया की लड़की है। ऐसे उच्छृङ्खल परिवार से सदाचारी कन्या का जन्म होना ही असम्भव है। ऐसे परिवार से सम्बन्ध स्थापित करना अपने सिर पर निश्चय ही कलङ्क मोल लेना है। वे उनसे किसी किस्म का ताल्लुक नहीं रखेंगे।

बैरिस्टर मदनगोपाल इस तरह शास्त्री परिवार की निन्दा और उपेक्षा भी करते और उसकी ओर खिंचते भी। वे अपने विचारों में इतने तल्लीन हो गये थे कि उन्हें सड़क का ध्यान ही न रहा, कि वह कहाँ छूट गई। लगाम ढीली हो जाने से घोड़ा भी अपनी गति से चल रहा था।

एकाएक घोड़ा भड़का और वे गिरते-गिरते बच गये। उनका ध्यान भङ्ग हो गया। उन्होंने देखा कि सामने उनकी ओर पीठ किये हुए एक दुबला पतला आदमी हवा में तलवार घुमा रहा है। घोड़े को वहीं रोक कर वे उस आदमी को देखने लगे। सर पर वह राजसी पगड़ी बाँधे हुए था। गर्द से मैली हुई उसकी सफ़ेद शेरवानी एँड़ी तक हवा में लहरा रही थी। उसकी कमर में कमर बन्द पड़ा था। कभी-कभी जब उसके चेहरे का कुछ हिस्सा उनकी ओर घूमता, तब उन्हें जान पड़ता कि उसकी हजामत वर्षों से नहीं बनी। उन्होंने सोचा कि यह शिवा जी का वेष बनाये यहाँ पर कौन तलवार चलाने का अभ्यास कर रहा है? ज़रूर यह आदमी पागल है। नहीं तो इस एकान्त में इस तरह से हास्यास्पद कसरत क्यों करता? घोड़े को वे धीरे-धीरे उसकी ओर ले गये और आगे बढ़ाकर घोड़े को ठीक उसके सामने खड़ा किया। बैरिस्टर मदनगोपाल को देखते ही वह आदमी हक्का बक्का हो गया। जहाँ का तहाँ वह खड़ा रह गया और भय से थर थर काँपने लगा। उसके हाथ से तलवार छूट गई।

"तुम कौन हो और यह क्या कर रहे हो?"

"मैं कोई नहीं हूँ। कुछ नहीं कर रहा हूँ। आप…आप…!! यह कहता हुआ वह आदमी ज़मीन से अपनी तलवार उठा कर भाग चला। बैरिस्टर मदनगोपाल ने उसकी ओर अपना घोड़ा बढ़ाया और आवाज़ लगाई—डरो मत, ज़रा ठहरो! मुझे बताओ

तो, तुम यह क्या कर रहे हो ? मैं तुम्हारी मदद ही करूँगा, मुझे अपना मित्र समझो।

वह आदमी रुक गया। उसने कहा—आपको कविता से प्रेम है।

"हाँ, हाँ बहुत।"

"तो आपने विषयेश कवि का नाम जरूर सुना होगा। मैं विषयेश हूँ। यह पोशाक और यह तलवार मुझे बीहड़ के महाराजा ने प्रदान की है; लेकिन बीहड़ राज्य के कर्मचारी, मेरी बेइज्ज़ती करने पर तुल गये हैं। वे पकड़ कर जबरदस्ती मेरी दाढ़ी मुड़वाना चाहते हैं। मैं उनसे भाग निकला हूँ। एक जगह कुछ लोगों ने मेरी मदद करने की चेष्टा की थी लेकिन राज्य के कर्मचारियों ने उनको गोलियों की बौछारों से मार डाला है और उनके झोपड़ों में आग लगा दी है। सरस्वती देवी की कृपा से शायद मुझे कुछ दिन ज़िन्दा रहना है। इसलिए मैं अपनी पोशाक सहित बच गया हूँ और इन झाड़ियों के जंगली बेर खाता भटक रहा हूँ। बीहड़ के राज्य कर्मचारियों को यह मालूम नहीं है कि कवि की वाणी में कितना ज़ोर होता है। कवियों के छन्दों ने बड़े-बड़े राजाओं के तख़्ते उलट दिए हैं। कभी-कभी तो मेरे मन में आता है कि कुछ ऐसे छन्दों की रचना करूँ जो बीहड़ के समस्त राज्य-कर्मचारियों को छठी का दूध याद करा दें। मगर मैं सोचता हूँ कि इससे महाराजा का ही अपकार होगा, जिन्होंने कि मुझे यह मान प्रदान किया है। चूँकि राज्य कर्मचारी मेरे पीछे पड़े हैं इस लिए यहाँ एकान्त में मैं तलवार चलाने का अभ्यास कर रहा हूँ। यह मेरी रक्षा का एक अच्छा अहिंसात्मक उपाय है। जब मैं देखूँगा कि तलवार से रक्षा नहीं हो सकती है तब जरूर ही छन्द बनाऊँगा और यह आप समझ रखें कि मेरा एक ही

छन्द सारे बीहड़ में आग लगा देगा। यह बहुत बड़ी हिंसा होगी। पर मुझे करनी ही पड़ेगी।"

बैरिस्टर मदनगोपाल को जान पड़ा कि जरूर ही यह आदमी पागल है। उन्होंने कहा कि तुम किसी क़िस्म की चिन्ता मत करो, और मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें राज्य कर्मचारियों से बचाऊँगा।

"नहीं, नहीं अब मैं बीहड़ नहीं जाना चाहता। महाराजा ने मुझे इस पोशाक के अलावा एक थैली भी प्रदान की थी। लेकिन जब यह दुर्घटना हुई, तो वह थैली उस मेहमान के घर में छूट गयी जिसमें महाराजा ने मुझे टिकाया था। शायद ही मुझे वह थैली वहाँ मौजूद मिले ? मेरे बिस्तरे के नीचे थैली रखी हुई थी। अधिकाँश कवि दूसरे कवियों का भाव अपहरण करने में ही निपुण नहीं होते बल्कि वे दूसरे कवियों की अर्जित सम्पत्ति को भी मौक़ा मिलने पर हड़प लेते हैं। मेरे साथ वहाँ अनेक कवि ठहरे थे; इसलिए कोई आशा नहीं है।"

ये दोनों बात चीत करते चले जा रहे थे। मदनगोपाल को बातचीत के सिलसिले में चक्रपाणि चौबे का परिचय मिला और उन्हे मालूम हुआ कि रियासत में राज्य के विरुद्ध छपने वाले समाचारों का जवाब देने के लिए एक नया महकमा खोला गया है। वे विषयेश कवि को अपने साथ लिए हुए बीहड़ आये और उनके साथ ही शिवलोक में पहुँचे।

महेशानन्द अपने परिवार के साथ अपने आराधना के कमरे में बैठे थे। शिवलोक में ऐसी उदासी छाई थी मानों कोई बड़ी भारी गमी हो गई हो। बैरिस्टर मदनगोपाल ने बहुत दिनों के बाद शिवलोक में पदार्पण किया था और वे बड़े रोष में थे। लेकिन महेशानन्द शास्त्री की यह दशा देख कर उनका रोष

करुणा में बदल गया। उन्होंने सोचा, शास्त्री परिवार को ज़रूर बातों का पता है। इसीलिए सब उदास हैं। उन्होंने पूछा—

"अब तो आपको कोई संदेह नहीं रहा।"

"पहले भी नहीं था। सिवाय बीहड़ नरेश के ऐसा कुकृत्य और कौन कर सकता है ?"

"ग़लत, बिलकुल ग़लत, मैं ने उसको विक्रमपुर के इलाके में आपके ड्राइवर के साथ देखा है। आपने व्यर्थ में इस नालायक लड़की के पीछे राज्य से शत्रुता मोल ली है।"

बैरिस्टर मदनगोपाल के इस अंतिम वाक्य का कुछ ख्याल न करते हुए महेशानन्द शास्त्री ने एक विचित्र उन्माद की हँसी हँसकर कहा—आपने उसे राज्य के बाहर और मेरे ड्राइवर के साथ देखा है ? सच ! सच ! सचमुच देखा है ?"

"हाँ ! कहता तो हूँ।"

महेशानन्द शास्त्री ने बीहड़ेश्वर के मन्दिर की ओर मुँह करके अपना मस्तक झुकाया और कहा—बीहड़ेश्वर महादेव ! धन्य हो, तुमने मेरी पुत्री की रक्षा कर ली। उसको बेइज्ज़ती से बचा लिया।

महेशानन्द शास्त्री की उस समय की यह शिव-बन्दना बैरिस्टर मदनगोपाल को बड़ी ही कुरूप जान पड़ी। उन्होंने अपने मन में कहा कि राज्य के कर्मचारी इन्हें जो दंड देते हैं वह इनके अनुरूप ही है। पुत्री के प्रेम में ये यहाँ तक अन्धे हो गये हैं कि इनको उचित, अनुचित किसी बात का भी ध्यान नहीं है।

वे वहाँ से एक उपेक्षा के भाव से उठे और शिवलोक के बाहर जाने को उद्यत हुए। उसी समय एक नौकर ने महेशानन्द के हाथ में एक लिफ़ाफ़ा लाकर दिया। उसमें लिखा था—"शास्त्री जी ! आप इस पत्र को देखते ही विक्रमपुर चले आएँ। आपकी

पुत्री वहीं जा रही है। राज्य कर्मचारियों के चंगुल से निकल चुकी है। प्रजामंडल।"

इस पत्र को बैरिस्टर मदनगोपाल ने भी देखा और पूछा—शायद आप अपनी पुत्री के दर्शन करने वहाँ भी जायँ।

"सोचता तो हूँ कि वहीं जाना चाहिए। बीहड़ में सिवाय अपमान के और क्या है।"

"हूँ !" बैरिस्टर मदनगोपाल ने मनही मन कहा—ओफ़ ! कितना नीच और पाखंडी है, यह शंकर का पुजारी।

१५

बैसाख की पूर्णिमा थी। यह दिन बीहड़ में बड़े महत्व का होता है। रात-रात भर किसान लोग खुले खेतों में उत्सव करते हैं, नाचते और गाते हैं। इस वर्ष भीषण अकाल पड़ जाने से अच्छी फसल न हुई थी, लगान की वसूली में बीहड़ राज्य के कर्मचारियों की ओर से बड़ी सख़्ती की जा रही थी। भूख से अधिकांश जनता पीड़ित थी। इसलिए जनता में यह दिन मनाने का उत्साह नहीं था। फिर भी पुरानी परिपाटी के अनुसार परम्परा को बनाये रखने के ख्याल से कितने ही गाँवों से ढोल बजाने की आवाज़ें आ रही थीं।

लेकिन बीहड़ के क़िले के अन्दर आज बड़ा समारोह था। यों तो किले में रोज ही रात रात भर नृत्य गान और नाटक आदि हुआ करते थे। लेकिन आज इन सब बातों का विशेष रूप से

आयोजन किया गया था। दूर-दूर से नर्तकियाँ, गवैए और भाँड़ बुलाये गये थे। महाराजा भी विशेष उमंग में थे, उन्हें किसी बात की चिन्ता न थी। राज्य का काम सुचारु रूप से चल रहा था उनके सुपुर्द मानों एक काम था, आनन्द करना, दिल बहलाना और इस काम को वे पूरे मनोयोग के साथ करना चाहते थे; इसमें कोई कसर नहीं रखना चाहते थे।

संध्या होते ही ठीक समय पर वे अपने विलास भवन में पहुँचे।

यह एक बड़ा थियेटर हाल था। हजारों आदमियों के बैठने की इसमें जगहें थीं, इसकी छत नीले रंग से पुती थी और उसमें से जगह ब जगह चाँद और तारों की शकल में बिजली की अगणित बत्तियाँ झाँक रही थीं। दीवारों पर सुन्दर-सुन्दर मन लुभाने वाले बड़े-बड़े चित्र बने थे। चित्रों के बीच में बड़े-बड़े आइने लगे थे, जिनसें हाल के अन्दर जो कुछ होता था सब प्रतिबिंबित हो उठता था।

पूर्णिमा के दिन प्रथम तीन घंटे तक महल की रानियाँ, राज्य के प्रधान कर्मचारी और आमंत्रित धनी मानी व्यक्ति उत्सव में शरीक हो सकते थे। उन सब लोगों के बैठने के लिए अलग-अलग जगहें बनी हुई थीं। रानियाँ महाराजा के सिंहासन के बाईं ओर चिक की आड़ में छज्जे पर बैठती थीं। आमंत्रित सरदार दाहिने ओर सिंहासन के बराबर पड़ी हुई कुर्सियाँ की कतार पर बैठते थे। कुर्सियों की इन कतारों के ऊपर एक छज्जा था जिनमें रानियों के अतिरिक्त सरदारों की स्त्रियाँ और अन्य आमंत्रित स्त्रियाँ बैठती थीं। राज्य कर्मचारियों के बैठने की जगहें, रानियों के छज्जे के नीचे महाराजा के बाँई ओर थी। महाराजा के ठीक सामने बढ़िया इरानी क़ालीन बिछा हुआ था जिसपर नाच गान होता था।

ज्यों ही महाराजा अपने इस विलास भवन में आये, एक गवैए ने मङ्गल गान गाया। उसके बाद परदा उठा और कालीदास का मालविकाग्निमित्र नाटक पौन घंटे में खेला गया। नाटक की समाप्ति पर राज्य से और राज्य के बाहर से चुनी हुई नर्तकियाँ एक एक करके और कभी-कभी पचास पचास तक के दल में मंच पर आने लगीं और विविध रूप से नृत्य दिखाकर महाराजा का और वहाँ उपस्थित व्यक्तियों का मन मोहने लगीं। इस बीच में महाराजा के गिर्द इत्र, पान, तम्बाकू और सिगरेट के दौर पर दौर चलते रहे।

तीन घंटे बाद यह कार्यक्रम समाप्त हुआ। रानियाँ अपने अपने महलों को चली गईं। राज्य के प्रधान कर्मचारी अपने काम पर चले गये। विशेष आमंत्रित व्यक्ति भी विदा कर दिये गये। महाराजा, उनके ख़ास खास व्यक्ति और उनके घनिष्ट परिचित सरदार ही अब वहाँ रह गये थे। अब दिल बहलाव के विशेष खेल और नाटक प्रारम्भ हुए।

मंच पर अब एक एक करके विविध प्रकार के अश्लील दृश्य उपस्थित किये जाने लगे। सबसे पहले एक नाटक खेला गया। जिसमें एक पति अपनी प्रियतमा के प्रेम से व्याकुल जब परदेश से घर आता है तब देखता है कि उसकी प्रियतमा एक अन्य पुरुष के साथ आनन्द क्रीड़ा में संलग्न है। स्त्री उसके आँखों के सामने ही उस पर-पुरुष को अपने घर से निकाल देती है और बड़े हाव भाव भरे मधुर वचनों से अपने परदेशी प्रियतम से कहती है—यह कुछ नहीं है आपकी जागृत अवस्था का स्वप्न है। आम तौर पर जब लोग सो जाते हैं तब स्वप्न देखते हैं लेकिन परदेशों में रहनेवाले प्रियतम जागते रहते हैं और स्वप्न देखते रहते हैं। यह आपका वही जागने का सपना है। यह कहती हुई विविध प्रकार से काम चेष्टाएँ करती हुई वह स्त्री अपने झीने पट को खिसकाती

है और अर्द्ध नग्न अवस्था में अपने परदेशी प्रियतम का आलिङ्गन करने के लिए बढ़ती है। वह पति भी अपनी उद्दाम वासना के वशीभूत होकर यह विश्वास कर बैठता है, कि मैं सचमुच स्वप्न देख रहा हूँ। मेरी पत्नी साक्षात् सती सीता है, उसको माफ़ कर देता है। फिर परदा गिरता है।

इसी तरह के विविध अश्लील खेल होते हैं। श्री कृष्णजी आते हैं और चीर हरण का नाटक करते हैं और विविध प्रकार की रासलीलाएँ होती हैं।

ज्यों ज्यों रात बीतती है खेलों की अश्लीलता बढ़ती जाती है और शराब का दौर पर दौर चलता है जिससे वे लोग खूब नशे में आ जाते हैं। अब महाराजा को अत्यन्त प्रिय अश्लील खेल "टटोल टटोल" शुरू होता है। बैसाख की इस पूर्णिमा के खेल में सम्मिलित होने के लिए कितने ही राज्य कर्मचारी और सरदार अपने घरों की युवती स्त्रियों को महाराजा की भक्ति का ख्याल करके अपने घरों से आने देते हैं और खुद भी सम्मिलित होते हैं। आज इस खेल में पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह भी प्रथम बार सम्मिलित होने के लिए बुलाये गये थे। महाराजा की उनपर विशेष कृपा जो हुई थी। कप्तान रिपुदमन सिंह का दाहिना हाथ काट डाला गया था क्योंकि उसी हाथ में गोली लगी थी और उसका ज़हर तमाम बाँह में फैल गया था। यदि हाथ काट नहीं डाला जाता तो विष के समस्त शरीर में प्रवेश कर जाने का भय था। यह काम कप्तान साहब का ही था, जिन्होंने राज्य-काज में अपना हाथ कटाया था। इसलिए वे विशेष रूप से सम्मिलित किए गये थे और महाराजा के ख़ास कृपापात्रों में हो गए थे।

सबसे पहले महाराजा का इशारा पाते ही उनके एक विश्वास पात्र सेवक ने बिजली की बत्तियों का मेन स्विच खींचकर

उन्हें बुझा दिया। उसके साथ ही महाराजा ने आर्डर दिया 'होशियार'! महाराजा के मुँह से होशियार शब्द निकलते ही खेल में सम्मिलित होने के लिए जितने स्त्री व पुरुष आमन्त्रित किए जाते थे वे सब अपनी मान प्रतिष्ठा अपने हाथों में ले लेते थे। उस समय इतना अन्धकार हो जाता था कि उन्हें किसी प्रकार की लज्जा या सङ्कोच का भाव नहीं होता था।

खेल में पुरुष-पात्रों में प्रायः महाराजा के विश्वासी सेवक और उनके कृपापात्र सरदार होते थे। स्त्री-पात्रों में महाराजा की पासवानें, बाहर की आमन्त्रित नर्तकियाँ, या सरदारों की बहनें-बेटियाँ और पत्नियाँ सम्मिलित होती थीं। पुलिस-कप्तान रिपुदमनसिंह ने अपनी भक्ति का परिचय यहाँ तक दिया था कि वे अपने परिवार की सभी युवतियों के साथ इस खेल में सम्मिलित हुए थे।

महाराजा ने फिर आज्ञा दी—"टटोल टटोल।" यह आज्ञा पाने पर पुरुष-स्त्रियाँ दोनों एक दूसरे को टटोल कर पहचानने का प्रयत्न करते थे। इस प्रयत्न में कितने ही पुरुषों ने अनुभव किया कि उनका स्पर्श कितनी ही स्त्रियों से हो गया है। इसे वे अपना सौभाग्य समझते थे। क्योंकि इस आज्ञा का अर्थ था कि प्रत्येक पुरुष अन्धकार में टटोल कर अपने मन के मुवाफिक किसी युवती को अपनी बाहों में आबद्ध कर ले। और प्रत्येक युवती भी ऐसा ही करे। लेकिन 'टटोल टटोल' के खेल में स्त्रियाँ बेचारी प्रायः संकुचित हो जहाँ की तहाँ खड़ी रहती थीं और कोई न कोई पुरुष ही उन्हें टटोल कर और यह निश्चय कर के कि यह स्त्री है उसका आलिङ्गन कर लेता था। जिस स्त्री को एक पुरुष पा जाता था उसको दूसरा पुरुष नहीं पकड़ता था। कितने स्त्री-पुरुष ऐसे भी होते थे जो किसी को न पाकर अन्धकार में दीवार ही टटोलते रहते थे।

'टटोल टटोल' की आज्ञा दे चुकने के बाद महाराजा ने एक बार फिर कहा—'होशियार' और इसके साथ ही बिजली की बत्तियाँ जगमगा उठीं। अब महाराजा खिलखिला कर हँस पड़े। जो लोग जहाँ थे वहीं संकुचित हो कर खड़े रह गये। बिजली के तीव्र प्रकाश में वहाँ उपस्थित समस्त लोगों ने देखा कि पुलिस-कप्तान रिपुदमन सिंह स्वयं अपनी ही बहन को अपनी बाहों में आबद्ध किये खड़े हैं।

महाराजा के प्रति उनकी भक्ति उसी समय काफ़ूर हो गई और वे इस मज़ाक को सहन न कर सके। उन्होंने अपना अकेला हाथ इस तरह चलाया मानों वे जेब से पिस्तौल निकालने की चेष्टा कर रहे हों। मगर वहाँ पिस्तौल कहाँ ? उन्होंने क्रोध और रोष पूर्ण दृष्टि से महाराजा की ओर देखा और जहाँ के तहाँ बैठ गये। महाराजा ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़े।

इस खेल के समाप्त होने पर और कितने ही इसी प्रकार के अश्लील खेल खेले गये और शराब के दौर पर दौर चलते रहे। पुलिस-कप्तान रिपुदमन सिंह को कई अर्द्ध नग्न स्त्री-पुरुष उठाकर वस्त्र पहनने के कमरे में ले गये और यह अश्लील खेल महाराजा के और भी मनोरंजन का कारण हुआ। इसके बाद मंच पर विविध देशों और जातियों की स्त्रियों ने अपने स्वस्थ, सुडौल शरीरों का प्रदर्शन किया। अर्द्ध नग्नावस्था में उन्होंने अनेक प्रकार के कामोत्तेजक नृत्य दिखलाए।

बैसाख की पूर्णिमा का यह आनन्दोत्सव स्नान-क्रीड़ा के बाद समाप्त होता था। यह स्नान-क्रीड़ा भी एक प्रकार का दिल-बहलाव का खेल ही थी। जब चन्द्रमा कुछ फीका पड़ता हुआ पश्चिम में क्षितिज पर पहुँचा और पूर्व में उषा की लाली फूटीं, तब महाराजा और उनके सब व्यसन-सखा किले के अन्दर बने हुए संगमरमर के तालाब पर आये। तालाब के चारों ओर दूध की सी शिलाएँ मढ़ी हुई थीं और उन शिलाओं से पानी की तलेटी तक तालाब संगमरमर का ही ढलवाँ बना हुआ था। स्त्रियाँ विविध पोशाकों और विशेष कर भीने वस्त्रों में तालाब के गिर्द बैठ गईं। पुरुष तालाब में उतरे और तैरने लगे। महाराजा के लिए चाँदी का एक कोच रखा गया और वे उस पर बैठे। ये सब पुरुष मगर मच्छ कहे गये और तालाब के गिर्द जो स्त्रियाँ बैठीं थीं वे सब मछलियाँ कही गईं। ये सब युवतियाँ अपने पैरों को तालाब में लटकाकर बैठी थीं और पानी में पैर विशेष प्रकार से चला रही थीं। एक खास किस्म का बाजा बज रहा था और उसी बाजे के सहारे ये युवतियाँ अपना पैर चलाती थीं। तालाब के अन्दर तैरते हुए मगर मच्छ पैर पकड़ कर उन स्त्रियों को पानी में घसीट ले जाते थे। जो स्त्री एक बार पानी के अन्दर चली जाती वह फिर ऊपर नहीं चढ़ने पाती थी क्योंकि जब वह चढ़ने के लिए कोशिश करती तब उसे कोई न कोई दूसरा मगर मच्छ फिर उसकी टाँग पकड़ कर घसीट ले जाता था। कितनी ही स्त्रियाँ जब तालाब के अन्दर से पुरुष वेषधारी मगर मच्छों द्वारा खींची जाती थीं तब वे बड़े जोर से चीखती थीं और तैरना न जानने से, पानी में डूबने के भय से अपने खींचने वाले पुरुष के बदन में एक विचित्र प्रकार से लिपट जाती थीं। इस प्रकार का दृश्य महाराजा को विशेष रूप से पसन्द आता था। जो स्त्री जितना ही अधिक चीखती थी वह उन्हें उतनी ही प्यारी मालूम होती थी। यह जल-क्रीड़ा महाराजा को बड़ी ही पसन्द थी। उन्होंने आज्ञा दी कि यह खेल तब तक जारी रहे जब तक सब लोग थक न जायँ।

सूरज काफ़ी निकल आया था। सुनहली धूप किले के अन्दर के मैदान में छागई थी और किले के बाहर से लोगों के कानों में "दुहाई महाराजा की, दुहाई महाराजा की" के शब्द पड़ने लगे।

क्रमशः ये शब्द बढ़ते गये। और आवाजें इतनी जोर से आने लगीं कि महाराजा को जल-क्रीडा का खेल स्थगित करना पड़ा।

अब उनके शयन का समय हो गया था। सेवकों ने कर बद्ध नत मस्तक उनके सामने आकर कहा—सरकार शयन को चलिए।

लेकिन "दुहाई महाराजा की, दुहाई महाराजा की" आवाज़ों ने उनकी नींद को हर लिया था। वे जानना चाहते थे कि सबेरे ही सबेरे किले के बाहर कौन लोग कहाँ से आकर इस प्रकार चिल्ला रहे हैं और रंग में भंग कर रहे हैं। उन्होंने अपने एक विश्वासी सेवक को यह जाँचने के लिए भेजा कि वह देख कर बताए कि क्या मामला है ?

जल्द ही सेवक लौटकर आया और बोला—सरकार किले के फाटक पर बड़ी भारी भीड़ जमा हुई है। जितनी बड़ी सभा प्रजामंडल वालों ने बीहड़ेश्वर के मंदिर के सामने की थी उससे भी भारी जान पड़ती है। शायद लोग फाटक तोड़ कर किले के अन्दर घुसना चाहते हैं। फाटक पर पुलिस के सिपाहियों का एक दल खड़ा है और बाहर से फौज भी बढ़ी चली आ रही है।

क्या मामला है यह जानने के लिए महाराजा स्वयं उठे। परन्तु कुछ सोच समझ कर बजाय फाटक की ओर जाने के वे अपने शयनागार को चल पड़े। वहाँ उपस्थित समस्त लोगों ने देखा कि वे कुछ उदास हो गये। एक सेवक ने आगे बढ़कर कहा—महाराजा शयन को चलिए। यह सब तो रियासत में होता ही रहता है।

महाराजा शयन को चले गये और अपनी पलंग पर पड़ रहे; लेकिन उनको नींद नहीं आई। 'महाराजा की दुहाई' के गगन-भेदी नारे लग रह थे और किले की दीवारों से टकरा कर

प्रतिध्वनि चारों तरफ गूँज रही थी। प्रयत्न करने पर भी महाराजा शयन न कर सके। शयनागार से बाहर निकल कर उन्होंने तत्काल ही प्राइवेट सेक्रेटरी को बुलवाया।

प्राइवेट सेक्रेटरी ने आकर बतलाया कि सारे बीहड़ के किसान जमा हैं। बात यह है कि वे लगान नहीं देना चाहते। कहते हैं कि भीषण अकाल पड़ गया है, इस साल कुछ पैदा नहीं हुआ है। इसलिए राज्य कर नहीं देते। ऐसी बात प्रजा की ओर से कभी नहीं कही गई। जान पड़ता है कि यह भी प्रजामंडल वालों की तरफ़ से किया हुआ कोई फसाद है।

महाराजा ने पूछा—दीवान साहब कहाँ है ?

"सरकार दीवान दिग्विजय सिंह और फौज़ के कमाण्डर साहब फाटक पर मौजूद हैं। पुलिस और फौज भी है। दीवान साहब की राय है कि गोली चला कर इस भीड़ को तितर-बितर कर दिया जाय। लेकिन कमाण्डर साहब कहते हैं कि जब तक भीड़ वार न करेगी या किसी किस्म की ज्यादती उसकी ओर से नहीं होगी तब तक मैं गोली चलाने का हुक्म नहीं दे सकता।"

"कमाण्डर साहब ठीक कहते हैं", महाराजा ने कहा, और वे प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ किले के उस हिस्से में आये जहाँ से यह भीड़ देखी जा सकती थी।

महाराजा को देखते ही भीड़ से बड़े ज़ोरों की आवाज़ उठी—महाराजा की जय, महाराजा की जय, महाराजा विष्णुदेव सिंह की जय।

और समस्त भीड़ ने महाराजा का अभिवादन किया। महाराजा ने हाथ जोड़ कर भीड़ के अभिवादन को स्वीकार किया!

बीहड़ के इतिहास में यह पहला मौका था जब राजा ने प्रजा को और प्रजा ने राजा को आमने सामने देखा था। राजा

'टटोल टटोल' की आज्ञा दे चुकने के बाद महाराजा ने एक बार फिर कहा—'होशियार' और इसके साथ ही बिजली की बत्तियाँ जगमगा उठीं। अब महाराजा खिलखिला कर हँस पड़े। जो लोग जहाँ थे वहीं संकुचित हो कर खड़े रह गये। बिजली के तीव्र प्रकाश में वहाँ उपस्थित समस्त लोगों ने देखा कि पुलिस-कप्तान रिपुदमन सिंह स्वयं अपनी ही बहन को अपनी बाहों में आबद्ध किये खड़े हैं।

महाराजा के प्रति उनकी भक्ति उसी समय काफ़ूर हो गई और वे इस मज़ाक को सहन न कर सके। उन्होंने अपना अकेला हाथ इस तरह चलाया मानों वे जेब से पिस्तौल निकालने की चेष्टा कर रहे हों। मगर वहाँ पिस्तौल कहाँ ? उन्होंने क्रोध और रोष पूर्ण दृष्टि से महाराजा की ओर देखा और जहाँ के तहाँ बैठ गये। महाराजा ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़े।

इस खेल के समाप्त होने पर और कितने ही इसी प्रकार के अश्लील खेल खेले गये और शराब के दौर पर दौर चलते रहे। पुलिस-कप्तान रिपुदमन सिंह को कई अर्द्ध नग्न स्त्री-पुरुष उठाकर वस्त्र पहनने के कमरे में ले गये और यह अश्लील खेल महाराजा के और भी मनोरंजन का कारण हुआ। इसके बाद मंच पर विविध देशों और जातियों की स्त्रियों ने अपने स्वस्थ, सुडौल शरीरों का प्रदर्शन किया। अर्द्ध नग्नावस्था में उन्होंने अनेक प्रकार के कामोत्तेजक नृत्य दिखलाए।

बैसाख की पूर्णिमा का यह आनन्दोत्सव स्नान-क्रीड़ा के बाद समाप्त होता था। यह स्नान-क्रीड़ा भी एक प्रकार का दिल-बहलाव का खेल ही थी। जब चन्द्रमा कुछ फीका पड़ता हुआ पश्चिम में क्षितिज पर पहुँचा और पूर्व में उषा की लाली फूटीं, तब महाराजा और उनके सब व्यसन-सखा किले के अन्दर बने हुए संगमरमर के तालाब पर आये। तालाब के चारों ओर दूध की सी शिलाएँ मढ़ी हुई थीं और उन शिलाओं से पानी की तलेटी तक तालाब संगमरमर का ही ढलवाँ बना हुआ था। स्त्रियाँ विविध पोशाकों और विशेष कर झीने वस्त्रों में तालाब के गिर्द बैठ गईं। पुरुष तालाब में उतरे और तैरने लगे। महाराजा के लिए चाँदी का एक कोच रखा गया और वे उस पर बैठे। ये सब पुरुष मगर मच्छ कहे गये और तालाब के गिर्द जो स्त्रियाँ बैठीं थीं वे सब मछलियाँ कही गईं। ये सब युवतियाँ अपने पैरों को तालाब में लटकाकर बैठी थीं और पानी में पैर विशेष प्रकार से चला रही थीं। एक खास किस्म का बाजा बज रहा था और उसी बाजे के सहारे ये युवतियाँ अपना पैर चलाती थीं। तालाब के अन्दर तैरते हुए मगर मच्छ पैर पकड़ कर उन स्त्रियों को पानी में घसीट ले जाते थे। जो स्त्री एक बार पानी के अन्दर चली जाती वह फिर ऊपर नहीं चढ़ने पाती थी क्योंकि जब वह चढ़ने के लिए कोशिश करती तब उसे कोई न कोई दूसरा मगर मच्छ फिर उसकी टाँग पकड़ कर घसीट ले जाता था। कितनी ही स्त्रियाँ जब तालाब के अन्दर से पुरुष वेषधारी मगर मच्छों द्वारा खींची जाती थीं तब वे बड़े जोर से चीख़ती थीं और तैरना न जानने से, पानी में डूबने के भय से अपने खींचने वाले पुरुष के बदन में एक विचित्र प्रकार से लिपट जाती थीं। इस प्रकार का दृश्य महाराजा को विशेष रूप से पसन्द आता था। जो स्त्री जितना ही अधिक चीख़ती थी वह उन्हें उतनी ही प्यारी मालूम होती थी। यह जल-क्रीड़ा महाराजा को बड़ी ही पसन्द थी। उन्होंने आज्ञा दी कि यह खेल तब तक जारी रहे जब तक सब लोग थक न जायँ।

सूरज काफ़ी निकल आया था। सुनहली धूप किले के अन्दर के मैदान में छागई थी और किले के बाहर से लोगों के कानों में "दुहाई महाराजा की, दुहाई महाराजा की" के शब्द पड़ने लगे।

क्रमशः ये शब्द बढ़ते गये। और आवाजें इतनी जोर से आने लगीं कि महाराजा को जल-क्रीडा का खेल स्थगित करना पड़ा।

अब उनके शयन का समय हो गया था। सेवकों ने कर बद्ध नत मस्तक उनके सामने आकर कहा—सरकार शयन को चलिए।

लेकिन "दुहाई महाराजा की, दुहाई महाराजा की" आवाजों ने उनकी नींद को हर लिया था। वे जानना चाहते थे कि सबेरे ही सबेरे किले के बाहर कौन लोग कहाँ से आकर इस प्रकार चिल्ला रहे हैं और रंग में भंग कर रहे हैं। उन्होंने अपने एक विश्वासी सेवक को यह जाँचने के लिए भेजा कि वह देख कर बताए कि क्या मामला है ?

जल्द ही सेवक लौटकर आया और बोला—सरकार किले के फाटक पर बड़ी भारी भीड़ जमा हुई है। जितनी बड़ी सभा प्रजामंडल वालों ने बीहड़ेश्वर के मंदिर के सामने की थी उससे भी भारी जान पड़ती है। शायद लोग फाटक तोड़ कर किले के अन्दर घुसना चाहते हैं। फाटक पर पुलिस के सिपाहियों का एक दल खड़ा है और बाहर से फौज भी बढ़ी चली आ रही है।

क्या मामला है यह जानने के लिए महाराजा स्वयं उठे। परन्तु कुछ सोच समझ कर बजाय फाटक की ओर जाने के वे अपने शयनागार को चल पड़े। वहाँ उपस्थित समस्त लोगों ने देखा कि वे कुछ उदास हो गये। एक सेवक ने आगे बढ़कर कहा—महाराजा शयन को चलिए। यह सब तो रियासत में होता ही रहता है।

महाराजा शयन को चले गये और अपनी पलंग पर पड़ रहे; लेकिन उनको नींद नहीं आई। 'महाराजा की दुहाई' के गगन-भेदी नारे लग रहे थे और किले की दीवारों से टकरा कर

प्रतिध्वनि चारों तरफ गूँज रही थी। प्रयत्न करने पर भी महाराजा शयन न कर सके। शयनागार से बाहर निकल कर उन्होंने तत्काल ही प्राइवेट सेक्रेटरी को बुलवाया।

प्राइवेट सेक्रेटरी ने आकर बतलाया कि सारे बीहड़ के किसान जमा हैं। बात यह है कि वे लगान नहीं देना चाहते। कहते हैं कि भीषण अकाल पड़ गया है, इस साल कुछ पैदा नहीं हुआ है। इसलिए राज्य कर नहीं देते। ऐसी बात प्रजा की ओर से कभी नहीं कही गई। जान पड़ता है कि यह भी प्रजामंडल वालों की तरफ़ से किया हुआ कोई फसाद है।

महाराजा ने पूछा—दीवान साहब कहाँ है ?

"सरकार दीवान दिग्विजय सिंह और फौज के कमाण्डर साहब फाटक पर मौजूद हैं। पुलिस और फौज भी है। दीवान साहब की राय है कि गोली चला कर इस भीड़ को तितर-बितर कर दिया जाय। लेकिन कमाण्डर साहब कहते हैं कि जब तक भीड़ वार न करेगी या किसी किस्म की ज्यादती उसकी ओर से नहीं होगी तब तक मैं गोली चलाने का हुक्म नहीं दे सकता।"

"कमाण्डर साहब ठीक कहते हैं", महाराजा ने कहा, और वे प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ किले के उस हिस्से में आये जहाँ से यह भीड़ देखी जा सकती थी।

महाराजा को देखते ही भीड़ से बड़े जोरों की आवाज़ उठी—महाराजा की जय, महाराजा की जय, महाराजा विष्णुदेव सिंह की जय।

और समस्त भीड़ ने महाराजा का अभिवादन किया। महाराजा ने हाथ जोड़ कर भीड़ के अभिवादन को स्वीकार किया!

बीहड़ के इतिहास में यह पहला मौका था जब राजा ने प्रजा को और प्रजा ने राजा को आमने सामने देखा था। राजा

आनन्द से चूर था और प्रजा दुख से चूर थी। राजा के आनन्द की थकावट प्रजा को बड़ी ही कुरूप और असह्य जान पड़ी और प्रजा के दुख की थकान राजा को और भी अधिक कुरूप और अधिक भद्दी जान पड़ी।

"यही बीहड़ के किसान हैं।" महाराजा ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी से पूछा।

"हाँ महाराजा।"

भीड़ में किसी के तन पर वस्त्र नहीं था। स्त्रियाँ फटे और मैले वस्त्र पहने बड़ी मुश्किल से अपनी लज्जा ढके खड़ी थीं। काफी आयु हो जाने पर भी कितने ही लड़के और लड़कियाँ अभी तक नग्न थे। उनके शरीर कृश थे, उनके केश और मुखड़े जले भुने जंगल से दिखाई पड़ रहे थे। उनकी आँखें धँसी हुई थीं और देखने से जान पड़ता था कि उनकी पीठें उनके पेट से मिली हुई हैं। उनके शरीर में खून और माँस का कुछ पता नहीं चल रहा था। जान पड़ता था कि युग-युग के नर कंकाल दुनिया भर के स्मशानों से उठकर बीहड़ के किले के फाटक के सामने आकर खड़े हो गए हैं।

बड़ी देर तक किले की बुर्ज पर से महाराजा यह दृश्य देखते रहे और मन ही मन न जाने क्या-क्या सोचते रहे। प्रजा तबाह हो गई थी। उन्हें जान पड़ा कि जैसे उनके राज्य-महलों में जो सफेदी है वह प्रजा की हड्डियों की ही पालिश है। उनके गिर्द जो राज्य कर्मचारी या सरदार या उनका मन बहलाने वाली युवतियाँ हैं उन सबों के मसूड़े प्रजा के रक्त से लाल हो रहे हैं। इस प्रकार कब तक चल सकता है? मैं अब तक बीहड़ के राज्य सिंहासन पर बैठा हूँ और जिन्दा हूँ? यह कैसे सम्भव हो सका है? महाराजा विष्णुदेव सिंह अधीर हो उठे।

प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ वे किले के नीचे दफ्तर में उतर आये। दीवान दिग्विजय सिंह व फौज के कमाण्डर बुलवाए गए। दीवान साहब ने आते ही कहा—कमाण्डर साहब को भीड़ पर गोली चलाने की आज्ञा दीजिए। महाराजा ने उपेक्षा के भाव से दीवान साहब की ओर देखते हुए कहा—नहीं, गोली चलाने की आज्ञा नहीं दी जा सकती।

"महाराजा यह भीड़ किले के अन्दर घुस आएगी और लूट मार मचा देगी।"

"घुस आने दीजिए," रोष के स्वर में महाराजा ने कहा। दीवान साहब चुप हो गये। उन्होंने अपनी जेब से बढ़िया सोने की फाउन्टनपेन निकाली और एक कागज पर अपना स्तीफा लिखा और महाराजा के सामने पेश कर दिया।

दीवान साहब का स्तीफा हाथ में लेने के बाद महाराजा ने कहा—रियासत में आग लगा कर अब आप भाग निकलना चाहते हैं? मुझे मालूम न था कि प्रजा इतनी दीन हो गई है?

"महाराजा ये लोग दरिद्र नहीं है। दरिद्रता का स्वांग रचे हुए हैं। ये सब अपनी पूँजी को अपने घरों में जमीन के अन्दर गाड़ देते हैं और लगान देने में हमेशा हीला हवाला करते हैं। कई साल का बकाया पड़ा है और अब राज्य कोष में एक पैसा भी नहीं हैं। आप ही सोचें कि अगर इनसे लगान न लिया जायेगा तो राज्य का कार्य कैसे चल सकता है?"

इधर दीवान साहब महाराजा से ये बातें कर रहे थे। उधर भीड़ में से आवाजें उठ रही थीं—"दुहाई महाराजा की! इस वर्ष बहुत भीषण अकाल पड़ा है। हमारे घर में एक दाना भी पैदा नहीं हुआ है। हमारे पास कुछ खाने को नहीं है।"

महाराजा साहब ने दीवान साहब से कहा—नम्रता पूर्वक समझा बुझा कर भीड़ को हटाइए और उन लोगों से कह दीजिए कि उनके कष्ट पर विचार किया जायेगा।

लेकिन भीड़ किसी भी प्रकार टस से मस न हुई। सूरज सिर पर आया और ढलने लगा लेकिन भीड़ ज्यों की त्यों बैसाख की लपलपाती धूप में खड़ी रही। अंत में महाराजा को एक बार फिर भीड़ के सामने आना पड़ा। उन्होंने फिर भीड़ का अभिवादन स्वीकार किया और यह आज्ञा दी कि भीड़ में से कोई पाँच व्यक्ति किले के अन्दर आ सकते हैं और महाराजा से मिलकर कह सकते हैं कि वे क्या चाहते हैं ?

तत्काल भीड़ से पाँच व्यक्ति समस्त भीड़ की रजामन्दी से किले के फाटक के अन्दर दाखिल हुए। पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह, दीवान दिग्विजय सिंह और फौज के कमाण्डर भी किले के अन्दर पहुँचे।

महाराजा ने उन पाँचों व्यक्तियों से बड़ी देर तक बातें की और उनकी बातों का अपने राज्य कर्मचारियों के मुख से उत्तर सुना और अपने सामने दोनों का वादविवाद सुना।

अंत में महाराजा ने इन पाँचों व्यक्तियों को अपनी मोहर लगाकर एक आज्ञा पत्र दिया, उसमें लिखा हुआ था—"बीहड़ के समस्त किसानों का, इस वर्ष का, लगान माफ किया जाता है। इसके अतिरिक्त बीहड़ के अन्दर खास खास जगहों पर राज्य की ओर से, बाहर से अनाज मँगाकर उसकी दूकानें खोली जायेंगी और दूसरे वर्ष फसल के अवसर पर चुका देने के वादे पर प्रत्येक ग्राम वासी को उधार अन्न मिल सकेगा।"

इन पाँचों व्यक्तियों ने बाहर आकर समस्त भीड़ को इस पर्चे को दिखलाया और महाराजा की आज्ञा पढ़कर सुनाई। महाराजा की जय जय कार से एक बार और आकाश गूँज उठा।

महाराजा की जय जय कार की गूँज अभी खत्म भी न होने पाई थी, कि दीवान साहब ने कहा—श्रीमान् आपने यह सब तो कर दिया लेकिन आप यह सोचें कि राज्य का कार्य कैसे चलेगा ? राज्य कोष में एक पैसा भी नहीं है। कर्मचारियों का वेतन आदि कैसे दिया जायेगा। फिर इस वर्ष दशहरे पर अँग्रेज़ी सरकार के बड़े बड़े अधिकारियों को बीहड़ में मेहमानी करने के लिए भी बुलाया गया है। उनके स्वागत में खर्च करने के लिए बीस लाख का बजट बन कर तैयार है। यह रकम कहाँ से आयेगी ?

दीवान साहब की बातें सुनकर महाराजा बड़े सोच में पड़ गये। बहुत देर तक वे वहाँ के वहीं अपना सिर झुकाये अपने दोनों हाथों से उसे पकड़े बैठे रहे। अन्त में उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास लिया और कहा—देखा जायगा।

महाराजा अपने शयनागार को चले आये। उन्हें किसी तरह नींद न आई। वह पलङ्ग पर पड़े पड़े तब तक करवटें बदलते रहे जब तक कि शाम न हो गई।

१६

दिन भर जो महाराजा देवता बने हुए थे, शाम होते ही फिर उन्होंने राक्षस का रूप धारण कर लिया। किले के अन्दर फिर उसी प्रकार के अश्लील और कामुकता पूर्ण खेलों की तैयारी होने लगी। जैसे कि बैसाख की पूर्णमासी वाली पिछली रात को हुये थे। बैसाख के पूर्णमासी के सिलसिले में राजमहल में यह चहल-पहल कई दिनों तक जारी रहती थी।

रियासत के अन्दर के रहने वाले सर्व साधारण की बहू बेटियों को राज्य के कर्मचारी पालतू पशुओं की तरह हाँक लाते थे, लेकिन सरदारों और प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करने का उनको साहस नहीं होता था इसलिए ऊँचे घरानों की स्त्रियों को कौशल से विविध षडयंत्रों द्वारा उनके घरों से बहका कर ले आते थे और महाराजा के हवाले कर देते थे !

जिस किसी भी युवती पर महाराजा की नज़र पड़ जाती थी और वे नशे में उसकी चर्चा कर देते थे, राज्य के कर्मचारी, खास कर उनके निकटवर्ती सेवक अपने विविध प्रपंचों और षडयंत्रों का जाल फैला उसे फाँस ही लाते थे।

जिस युवती तक किसी भी प्रकार उनकी पहुँच नहीं हो सकती थी उसके लिए पवाई की पालकी भेजी जाती थी। यह अधिकार बीहड़ राज्य के अन्दर सिर्फ महाराजा को प्राप्त था। महाराजा बीहड़ राज्य के अन्दर साक्षात् बीहड़ेश्वर महादेव के अवतार माने जाते थे। उनको सब कुछ कर सकने का अधिकार था। बीहड़ निवासियों के दिल में चाहे अपनी असमर्थता के कारण हो और चाहे अपनी लज्जा को ढाँकने का और कोई बहाना न मिल सकने के कारण हो, यही बात बैठी हुई थी कि बीहड़ नरेश के स्पर्श से कोई युवती पतित नहीं हो सकती। किसी स्त्री का सतीत्व नष्ट नहीं होता। किसी की कुल मर्यादा भंग नहीं हो सकती। वे साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं। जैसे भगवान् कृष्ण के साथ विहार करते हुए अगणित गोपियाँ कुल बधुएँ बनी रहीं। वैसे ही बीहड़ नरेश की वासना का शिकार होने पर भी बीहड़ की युवतियाँ अपनी कुल मर्यादा में रह सकती थीं। क्योंकि बीहड़ नरेश और देवता में कोई अन्तर नहीं था। यह तो मानों वैसी ही बात है कि स्त्रियाँ अपने पति की भी पूजा करती हैं

और देवता की भी पूजा करती हैं। बीहड़ नरेश उनके लिए साक्षात् परमेश्वर ही के स्वरूप थे।

जब महाराजा को यह जान पड़ा कि भुवनमोहिनी उन्हें किसी प्रकार नहीं मिल सकती तब उन्होंने आदेश दिया कि महेशानन्द शास्त्री के द्वार पर पवाई की पालकी भेजी जाय। महाराजा को ख्याल था कि महेशानन्द शास्त्री पवाई की कदापि उपेक्षा नहीं करेंगे, और भुवनमोहिनी को तत्काल ही किले की ओर रवाना कर देंगे। अपने राज्य गुरु की कन्या को इस प्रकार बुलाने के लिए उन्हें दुःख था पर वे विवश थे। महाराजा यह सोच रहे थे कि उनके वियोग की घड़ी अब युगों की पीड़ा न रहकर पल की क्रीड़ा में बदलने वाली है। ज्यों ज्यों दिन ढलता था और संध्या निकट आती थी वे सोचते थे कि आज भुवन-मोहिनी सुसज्जित वस्त्राभूषण से हमारे विलास सदन में प्रवेश करेगी, और आज एक नया ही आनन्द आयेगा।

शाम के चार बज चुके थे। महाराजा ने नित्य की प्रथा के अनुसार स्नान ध्यान किया और अपने दफ्तर के कमरे में राज्य का कार्य देखने के लिए गये। उस समय वहाँ दीवान दिग्विजय सिंह, महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी आदि लोग उपस्थित थे। दीवान साहब ने महाराजा के सामने दशहरे का बजट उपस्थित किया। इस बार दशहरे में ब्रिटिश सरकार के कई बड़े-बड़े पदाधिकारी आमंत्रित किये गये थे और उनके स्वागत सत्कार में बीस लाख रुपये का अनुमान किया गया था। दीवान दिग्विजय सिंह ने महाराजा से निवेदन किया—प्रजा से लगान तो किसी प्रकार वसूल नहीं किया जा सकता; क्योंकि आप इसके संबंध में फरमान निकाल ही चुके हैं। राज्य कोष में एक पैसा भी नहीं है। इसलिए अब क्या करना चाहिए ?

महाराजा इस समय दूसरे मानसिक धरातल पर थे। उनके हृदय में भुवनमोहिनी के मिलन की आँधी उठ रही थी और उन्हें झकझोरे डालती थी। वे किसी प्रकार कागजों पर दस्तखत करके अपने विलास सदन को जाना चाहते थे। उन्हें ख्याल था कि भुवनमोहिनी आज उनका स्वागत करने के लिए वहाँ तैयार मिलेगी और बहुत दिन की उनकी मुराद पूरी होगी।

"देखा जायगा" कहते हुए महाराजा ने बजट देखा भी नहीं और प्राइवेट सेक्रेटरी की तरफ इशारा किया कि और कोई कागज़ है या और कोई बात कहनी है? प्राइवेट सेक्रेटरी ने कुछ और कागज़ात उनके सामने रक्खे और उन्होंने हस्ताक्षर किया। इसके बाद उन्होंने दीवान दिग्विजय सिंह से कहा और कुछ कहना है?

"राज्य में एक भीषण घटना हो गई है। सरकस वाली चपला महेशानन्द शास्त्री की पुत्री भुवनमोहिनी को न जाने कहाँ भगा ले गई है। पुलिस बड़ी सरगर्मी से तहकीक़ात कर रही है। कहा जाता है कि वह उसे विक्रमपुर में ले गई है।"

महाराजा, दीवान दिग्विजय सिंह से विक्रमपुर के सरदार अभयराज सिंह की कितनी ही शिकायतें सुन चुके थे, और उनसे पहले ही से असंतुष्ट थे। पिछली बार दशहरे के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए उन्हें नहीं आमंत्रित किया गया था। महाराजा जिस सरदार से अत्यधिक नाराज़ होते थे, उससे अपनी नाराज़गी इसी प्रकार प्रकट करते थे। लेकिन फिर भी अभयराज सिंह नहीं सम्हले।

उन्होंने कहा—"ऐं! अभयराज सिंह में इतनी हिम्मत की है कि उन्होंने पवाई की सम्पत्ति पर छापा मारा है। इसका मजा उनको जल्दी ही चखाना चाहिए। तुरन्त ही उनको सूचना दीजिए कि वे भुवनमोहिनी को क़िले में हाजिर कर जायँ। यदि ज़रा भी

आज्ञा पालन में आना-कानी करें या सिर उठायें तो गिरफ़्तार कर लिए जायँ। भुवनमोहिनी को बलपूर्वक यहाँ लाया जाय और यदि वह लड़ाई पर आमादा हों तो जल्दी से जल्दी फौज भेज दी जाय और उनका मिज़ाज इसी समय ठीक कर दिया जाय।

"बहुत अच्छा" कहकर दीवान दिग्विजय सिंह ने उनको सिर झुकाया। महाराजा उठ कर खड़े हो गये और किले के अन्दर अपने विलास सदन को चले गये।

विलास सदन के अन्दर बिजली की अगणित बत्तियाँ जगमगा रहीं थीं नर्तकियाँ अपने पैरों में घुँघुरू बाँध रही थीं और वाद्य यंत्रों के स्वर मिलाये जा रहे थे।

महाराजा के प्रवेश करते ही वाद्य यंत्र बज उठे। नर्तकियों के पैरों के घुँघुरुओं से मधुर ध्वनि आने लगी और उस रात्रि का कार्य-क्रम प्रारम्भ हुआ।

विक्रमपुर के सरदार अभयराज सिंह के ऊपर महाराजा क्रोधाग्नि से मन ही मन में सुलग रहे थे। वे किसी से कुछ नहीं बोले, किसी की तरफ उन्होंने देखा भी नहीं। लेकिन उस खेल में जितने और लोग जमा हुए थे उन सबों ने अत्यन्त सावधानी के साथ अपना कार्य-क्रम प्रारंभ किया। तीन घंटा का कार्य-क्रम समाप्त हो जाने के बाद महाराजा की पाशविक और पैशाचिक लीला शुरू हुई। शराब की कुछ घूँटे गले के नीचे उतरते ही उनका चित्त स्वस्थ्य हो गया और वे यह कल्पना करके हँसने लगे कि भुवनमोहिनी को अभयराज सिंह स्वयं लिये हुए हाजिर होंगे और किले के फाटक पर घंटों नाक रगड़ेंगे। उन्होंने यह भी कल्पना की कि भुवनमोहिनी किले के अन्दर दाखिल हो रही है, और अभयराज सिंह किले के फाटक पर नाक रगड़ रहे हैं। यह ख्याल कर के महाराजा हँस पड़े।

जब सब लोगों पर शराब का नशा चढ़ चुका और उन सबों के पाँव लड़खड़ाने लगे तब बिजली की बत्तियाँ गुल कर दी गई और 'टटोल टटोल' की कामुक क्रीड़ा आरंभ हुई।

पिछली रात इस खेल में पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह की बहन माधवी भी शरीक थी। कहना यह चाहिए कि इसी बहिन की बदौलत रिपुदमन सिंह इतने ऊँचे पद पर पहुँचे थे।

रिपुदमन सिंह खास अवसरों पर अपनी बहन को महल में लाते थे और महाराजा के यहाँ उसका मान बहुत बढ़ गया था। वे यह कदापि नहीं समझ सकते थे कि महाराजा उनकी बहिन को कुदृष्टि से देख सकते हैं; क्योंकि वे उनके एक विश्वास पात्र सेवक थे। उसकी सगाई जहाँ तै हुई थी, वहाँ से टूट गई और अब वह इस कोशिश में थी कि महाराजा प्रसन्न हो कर उसके साथ शादी कर के उसको अपनी खवास बना लें। महाराजा ने उसे अपनी खवास तो नहीं बनाया लेकिन उसे वे अपने हाथों का खिलौना बनाये रहे। वह बड़ी चंचल थी। महाराजा को लुभाने के लिए सब प्रकार की कोशिशें करती थी। किले के अन्दर के विविध अश्लील खेलों में वह बराबर शरीक होती थी।

बहन का यहाँ तक पतन हो गया था इसका भाई को पता न था; इसलिए वे और भी निश्चिन्त थे।

रिपुदमन सिंह की बहन 'टटोल टटोल' के खेल में अनेक पुरुषों के साथ अर्द्ध नग्न अवस्था में देखी गई थी। स्वयं महाराजा ने उसे देखा था, और बहुत से लोगों ने भी उसे देखा था। लेकिन तब उसे किसी किस्म की लज्जा या अपमान का अनुभव नहीं हुआ था। वह उसे खेल या विनोद ही समझती थी।

लेकिन कल जब उसने अपनी बाहों में स्वयं अपने सगे भाई को आबद्ध किया तो उसकी खवास बनने की महत्त्वाकाँक्षा मिट

गई और वासना के पहाड़ के नीचे दबा हुआ उसका स्त्रीत्व जाग पड़ा। जैसे एकाएक भड़ककर ज्वालामुखी से अँगारों का तूफ़ान उठने लगता है, वैसे ही उसके हृदय से स्त्रीत्व का प्रचण्ड ज्वालामुखी फट पड़ा था। बिजली की रोशनी में जब उसकी और उसके भाई की आँखें चार हुई थीं, उसी वक्त उसने अपनी आँखें बन्द कर ली थीं, और निश्चय किया था कि अब उसकी आँखें बन्द ही रहेंगी। जिस समय उसका स्त्रीत्व महाराजा विष्णुदेव सिंह के मजाक के इस भारी ठेस से जागा था, उस समय विष्णुदेव सिंह को उसका वह स्वरूप और भी सुन्दर और आकर्षक प्रतीत हुआ था। इसलिए वे आज के भी टटोल टटोल के खेल में इस घटना की पुनरावृत्ति की आशा कर रहे थे। वे सोचते थे, आज फिर दोनों एक साथ देखे जायँ तो कितना अच्छा हो। लेकिन महाराजा के लाख प्रयत्न करने पर भी रिपुदमन सिंह आज के खेल में शरीक होने नहीं आये थे। परन्तु उनकी बहन माधवी विवश थी। इधर कई रोज से आमंत्रित होकर वह किले में ही रह रही थी और एकाएक किले से जाने का साहस न कर सकती थी। अपने स्त्रीत्व की प्रचंडाग्नि को अपने दिल में छिपाये वह किले में बैठी रही और जब सन्ध्या हुई तो उसने और दिनों की अपेक्षा कहीं अधिक शृङ्गार किया और कहीं अधिक सुन्दर झीने पट पहने। उसके हृदय में यह आँधी उठ रही थी कि वह कामुक महाराजा को दिखलायेगी कि स्त्रियाँ इस तरह खिलौने की वस्तु नहीं हैं। उनके भी दिल होता है, और उनकी भी इच्छाएँ होती हैं। वह किले के अन्दर इस तरह का वासना वेष्ठित घृणित जीवन व्यतीत करने के लिए नहीं आई थी। उसने तो महाराजा को अपना हृदय सौंपा था, और उनकी हृदयेश्वरी बनने के लिए आई थी। उसे जान पड़ा, जैसे महाराजा ने उसके साथ बहुत बड़ा विश्वासघात किया

है। उनको इस विश्वासघात का अपराधी ठहराने और अपने भाई के प्रति जो अन्याय हो गया था उसका, प्रायश्चित करने की पूरी तैयारी करके आज अंतिम बार वह इस खेल में शरीक हुई थी। अपने कमर में आज वह एक कटार खोंस कर आई थी।

जिस वक्त बत्तियाँ बुझा दी गईं, "टटोल टटोल" का खेल शुरू हुआ और सब स्त्री-पुरुष एक दूसरे की ओर लपके। उस वक्त माधवी ने एक काम किया। उसने अपनी नंगी कटार को अपने कपड़ों के भीतर से बाहर निकाला। इस कलङ्क से अपने कुल को मुक्त करने के लिए वह तैयार हो गई। जितने पुरुष उसका स्पर्श करने आये उन सब को उसने घृणा के साथ उनका हाथ पकड़ कर, दूर हटा दिया। कितने ही लोगों के शरीर पर उसके कटार की नोक लग गई और खून निकल आया, और वे चीख उठे। यह चीख सुनकर महाराजा हँस पड़े। उन्होंने समझा ज़रूर किसी स्त्री ने किसी अवाञ्छित पुरुष के चिकोटी काटी है।

अब महाराजा के मुँह से होशियार शब्द के निकलते ही बिजली की बत्तियाँ जल उठीं। लोगों ने देखा कि माधवी ने किसी का आलिङ्गन नहीं किया और वह अपने हाथ में कटार लिए महाराजा के ठीक सामने खड़ी है। उसका उस समय का वेष साक्षात् चण्डी का वेष था। उसकी आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं। उसके चेहरे पर अपमान और घृणा से उत्पन्न क्रोध की रेखाएँ स्पष्ट हो हो उठती थीं।

उसने किसी को कुछ कहने सुनने का मौका नहीं दिया। उस विद्युत प्रकाश में अपने गिर्द कामुक स्त्री और पुरुषों के बीच में वह स्त्रीत्व के प्रचण्ड ज्वालामुखी सी दहकती हुई सबको प्रतीत हुई। दूसरे ही क्षण उसकी कटार उसके हृदय के

अन्दर पहुँच चुकी थी, और उसके बदन से खून के फौवारे उठ कर चारों तरफ फैल रहे थे। खून की गरम-गरम छींटें महाराजा के मुख और उनके कपड़ों पर पड़ीं। वे सहम गये। इस विनोद का यहाँ तक परिणाम हो सकता है इसे कभी महाराजा ने नहीं सोचा था। एक साधारण कन्या अपने अपमान का इस तरह प्रायश्चित कर सकती है। इसका उन्होंने अब तक अन्दाज़ा नहीं लगाया था। उसी वक्त महाराजा की यह पैशाचिक लीला समाप्त हो गयी। इस घटना का उनके ऊपर बहुत बड़ा असर पड़ा। अपने उस विलास भवन में उन्हें जान पड़ा कि जैसे इस अबला के खून के अपराधी स्वयं वही हैं। उन्होंने किसी से कुछ कहा सुना नहीं और माधवी की खून से तर लाश को कालीन पर छटपटाती हुई छोड़ कर वे अपने शयनागार में चुपचाप चले गये। उस दृश्य को देखने का साहस वे न कर सके।

१७

विक्रमपुर के सरदार अभय राज सिंह ने बीहड़ नरेश महाराजा विष्णुदेव सिंह के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। विक्रमपुर नगर के बाहर प्राचीनकाल की बनी हुई पत्थर और गारे की एक दृढ़ प्राचीर थी। इस प्राचीर के अन्दर विक्रमपुर नगर बसा हुआ था। प्राचीनकाल में इस प्राचीर द्वारा नगर की कई बार रक्षा हुई थी। विक्रमपुर के सरदार अपनी बहादुरी के लिए बीहड़ के इतिहास में विख्यात थे; उन्होंने बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी थीं और बड़े-बड़े मोर्चे लिए थे। आज विक्रमपुर

में उसी पुराने जमाने का एक दृश्य उपस्थित था। सरदार अभयराज सिंह ने नगर के चारो तरफ़ के फाटकों को भीतर से बन्द करवा दिया और प्राचीरों के पीछे चारों तरफ उनके हथियारबन्द सिपाही प्राचीर में बने झरोखों से बन्दूकों का निशाना लगा कर बैठ गए। विक्रमपुर नगर के चारो ओर बीहड़ नरेश महाराजा विष्णुदेव सिंह की फ़ौजे पड़ी थीं बड़े-बड़े डेरे और खेमे लग गये थे। किसी भी क्षण दोनों ओर से धड़ाधड़ गोलियाँ चलनी शुरू हो जा सकती थीं। स्थिति बड़ी नाजुक हो उठी थी। इसकी सूचना दोनों ओर से ब्रिटिश सरकार के रेज़ीडेन्ट को दी गई। ब्रिटिश राज्य के बड़े-बड़े अधिकारियों के पास भी खबरें भेजी गईं।

जब से भारतवर्ष में अंग्रेज़ी राज्य क़ायम हुआ है देशी रियासतों में आपस की लड़ाई और विद्रोह और हमला का डर जाता रहा है। तब से रियासतों के रहने वाले लोग सैनिक शिक्षा की ओर असावधान से हो गये थे। रियासतों में थोड़ी बहुत फौज़ें रहा करती थीं। वह केवल राज्य का सैनिक स्वांग बनाए रहने के लिए या रियासत के अन्दर होने वाले उपद्रवों को दबाने के लिए थीं। इस इरादे से रियासतों में सैनिक संगठन नहीं किया जाता कि उनको अब कभी किसी संगठित सेना से मुकाबिला करना पड़ेगा।

इसमें संदेह नहीं कि बीहड़ नरेश के पास एक अच्छी संगठित सेना थी। १९१४-१५ ई० की लड़ाई में उनके पिता स्वर्गीय बीहड़ नरेश ने ब्रिटिश सरकार की अच्छी मदद की थी। उन दिनों उन्हें सेना बढ़ाने और सैनिक संगठन करने का शौक लग गया था और उस शौक को उन्होंने अपने चरमसीमा पर पहुँचा भी दिया था। यूरोप की लड़ाई समाप्त हो जाने के बाद जैसा कि हिन्दुस्तान में सर्वत्र हुआ था वैसा ही बीहड़ में भी सैनिक

जोश कम हो गया, और बीहड़ राज्य की सेना में भी बड़ी भारी शिथिलता आ गई, उसकी संख्या भी बहुत कम कर दी गई।

लेकिन फिर भी विक्रमपुर के मुकाबले में तो ज़मीन आसमान का अन्तर था। एक समय था, जब विक्रमपुर के सरदार बीहड़ की सेना के कमाण्डर होते थे और बाहर के हमला करने वालों से वीरता के साथ लड़ाई में लड़ते थे। लेकिन अंग्रेजी राज्य कायम होने के बाद उन्हें फौज रखने की मनाही हो गई थी। वे कुछ हथियारबन्द सिपाही अपनी रक्षा के लिए और इलाके का इन्तजाम करने के लिए रख सकते थे। उन सिपाहियों की तादाद मुश्किल से पचीस-तीस की थी लेकिन विक्रमपुर के सभी निवासी हथियारबन्द थे। प्राय: सभी के घर में बारूद और छर्रा से चलाई जाने वाली पुराने ढङ्ग की दो नली बन्दूकें मौजूद थीं। विक्रमपुर में एक छोटा सा बन्दूक बनाने का कारखाना भी था। वह कारख़ाना बन्द पड़ा था। रातोरात वह फिर जगाया गया। पुराने कारीगर ढूँढ़ ढूँढ़ कर के बुलवाये गये और वहाँ जो हथियार पड़े थे उनकी मरम्मत होने लगी। मोरचा लगी हुई पुरानी तलवारें निकाली गईं, बल्लम और भाले निकाले गये और भीतर कसबे के रहने वाले मर्द, औरत और जवान हथियार बाँधने और लड़ाई के लिए तैयार होने लगे। उनमें सरदार अभयराज सिंह के लिए प्राण देने की इच्छा पैदा हो गई।

उस समय ऐसा जान पड़ा कि जैसे सारा विक्रमपुर ही एक बड़ी भारी फ़ौज की छावनी है। जितने लोग विक्रमपुर में बसे हुए थे उनके पूर्वज विक्रमपुर के सरदार के सैनिक रह चुके थे। विक्रमपुर के सरदारों का यही काम था कि वे अपनी निजी सेना रखते थे और दूर दूर तक लड़ाई के लिए जाते थे। उस राज्य के या बाहर के राज्य से जो उनसे मदद की प्रार्थना करते थे उनके लिए वे लड़ने को तैयार हो जाते थे। देश के किसी

कोने में अगर कोई स्त्री उनके पास मदद के लिए पत्र लिख कर भेजती थी तो वे खुद एक सज्जित सेना लेकर उसकी रक्षा के लिए वहाँ पहुँच जाते थे। यद्यपि यह परिपाटी अब टूट गई थी लेकिन उसकी कहानियाँ अब भी बाकी थीं। विक्रमपुर में कितने ही लोग अब भी जीवित थे, जो इस तरह की कितनी ही लड़ाइयाँ लड़ चुके थे।

चपला ने भुवनमोहिनी के साथ विक्रमपुर में उपस्थित होकर सरदार अभयराज सिंह से जिस समय अपनी रक्षा की प्रार्थना की, उस समय उनका क्षत्रित्व जागृत हो उठा। उन्होंने तत्काल ही कहा—बहनो जब तक तुम विक्रमपुर में हो और जब तक विक्रमपुर का एक भी मर्द बचा ज़िन्दा है तुम्हारी तरफ़ कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता।

उसी समय उन्होंने अपने महल के अन्दर जाकर अपना सैनिक वेष बनाया, अपने पचीसों सिपाहियों को तैयार किया। और विक्रमपुर के अन्दर डुग्गी पिटवा दी कि नगर के अन्दर जितने हथियार उठा सकने वाले पुरुष हैं वे सब अपने अपने हथियार लेकर हर तरफ़ की प्राचीरों में डट जायँ। हम बीहड़ नरेश से लड़ाई लड़ेंगे।

सरदार अभयराज सिंह बीहड़ की मरु भूमि में शीतल जल के स्रोत से थे। बचपन ही से उन्होंने अपने पूर्वजों की वीरता की कहानियाँ सुनी थीं और उन्होंने अपने आपको उसी साँचे में ढाला था। वे उदार थे, दयालु थे, क्षमाशील थे, हमदर्द थे। हर एक की बातें सुनते थे और सहायता के लिए तैयार हो जाते थे। अपने इलाके के अन्दर वे न्याय करते थे और अपनी प्रजा का पालन करने में वैसे ही रत रहने की चेष्टा करते थे, जैसे कि राम और हरिश्चन्द्र करते रहे होंगे। यही वजह थी कि वे बड़े ही लोकप्रिय थे और घर-घर में उनके नाम की चरचा थी।

लगान की वसूली में उन्हें सख़्ती नहीं करनी पड़ती थी। प्रायः वे लगान वसूल भी नहीं करते थे। हर साल दशहरे पर उनके यहाँ एक जलसा होता था। उस जल्से में विक्रमपुर के रहने वाले समस्त किसान जमा होते थे। विक्रमपुर के बड़े-बड़े व्यापारी और महाजन भी जमा होते थे। वे सब अपनी इच्छाओं से उनको सोने चाँदी के सिक्के नज़र देते थे। उसी नज़र से इतना रुपया इकट्ठा हो जाता था कि उनका सारा प्रवन्ध हो जाता था। फिर वे बहुत बड़े मितव्ययी और त्यागी स्वभाव के सरदार थे। इसीलिए बीहड़ के भीतर उन्हें कभी रुपये की हाय हाय नहीं रहती थी। साल में दो बार उनको बीहड़ नरेश को पचास-पचास हज़ार रुपये की भेंट देनी पड़ती थी। यह वास्तव में उनके इलाके की मालगुजारी थी। बीहड़ में और भी कितने ही सरदार थे जिनका इलाका विक्रमपुर से बड़ा था और मालगुजारी भी ज्यादा देते थे। लेकिन प्रायः ऐसा भी होता था कि उनकी मालगुजारी बीहड़ के ख़जाने में नहीं पहुँचती थी। लेकिन चाहे अकाल पड़े, चाहे अनाज न हो, अभयराज सिंह अपना पाई-पाई का हिसाब चुका देते थे और यही वजह थी कि बीहड़ नरेश या उनके कर्मचारियों से वे किसी प्रकार दबते नहीं थे।

बीहड़ के राज्य में सताये जाने पर अनेकों कारीगर, लोहार-सोनार विक्रमपुर में जा बसते थे। सरदार अभयराज सिंह उनकी रक्षा करते थे। विक्रमपुर की सीमा में पहुँच जाने पर मनुष्य ही नहीं पशु और पक्षी तक भी अभय हो जाते थे। उन पर फिर कोई किसी किस्म का वार नहीं कर सकता था। इस प्रकार विक्रमपुर एक ऐसी जगह थी, जहाँ पर जीवन सुरक्षित था। जहाँ मनुष्यों में परस्पर प्रेम था। जहाँ एक का दूसरे से सहानुभूति का व्यवहार था। जहाँ राजा और प्रजा दोनों एक

दूसरे की मर्यादा का ख्याल रखते थे। दोनों एक दूसरे का आदर करते थे।

बीहड़ राज्य के अन्दर कोई भी ऐसा व्यक्ति या प्राणी न था, जिसने सरदार अभयराज सिंह के गुणों की प्रशंसा न की हो और कोई ऐसा व्यक्ति या प्राणी न था जो सरदार अभयराज सिंह के निकट संपर्क में आया हो और उस पर उनका प्रभाव न पड़ा हो। यही वजह थी कि बीहड़ में जब यह चरचा फैल गई कि दीवान दिग्विजय सिंह ने सरदार अभयराज सिंह को गिरफ़्तार करने के लिए फौजें भेजी हैं तब सारे बीहड़ में एक असंतोष की आँधी सी आ गई, और हर एक व्यक्ति उनके संकट में हाथ बँटाने के लिए विक्रमपुर की ओर चल पड़ा।

जब तक विक्रमपुर का फाटक खुला रहा, लोग धड़ाधड़ उसके अन्दर जाते रहे; लेकिन जब उन्हें आशंका हुई कि बीहड़ नरेश के भेजे हुए फौजी सिपाही भी फाटक के अन्दर घुसने वाले हैं तब चारों ओर के फाटक बन्द कर दिए गये। लेकिन अब भी दूर दूर के निवासियों का विक्रमपुर में आना जारी रहा। ये लोग विक्रमपुर नगर के गिर्द जमा हो गये और पत्थर की प्राचीर के बाहर जीवित मानवों की एक दृढ़ प्राचीर बन गई।

दीवान दिग्विजय सिंह ने अपने दस्तख़त से एक पत्र सरदार अभयराज सिंह के पास भेजा था, वह और उसका जवाब, दोनों को छपवा कर सारे बीहड़ निवासियों को बँटवाया गया। जो इस पत्र को पढ़ता था वही दीवान दिग्विजय सिंह की निन्दा और सरदार अभयराज सिंह की प्रशंसा करता था। एक अन्याय और जुल्म करने पर अमादा था और दूसरा अन्याय और जुल्म का मुकाबला करने के लिए प्रस्तुत था। लोगों की हमदर्दी स्वभावतः सरदार अभयराज सिंह के साथ थी।

जब विक्रमपुर के गिर्द घेरा डाले दीवान दिग्विजय सिंह को एक हफ़्ता हो गया और अभयराज सिंह पर उसका असर न हुआ, तब वे बहुत ही विवश हो उठे। उन्हें जान पड़ा, जैसे शीघ्र ही गोली नहीं चलवाई गई और विक्रमपुर के गिर्द जमा हुई भीड़ तितर-बितर नहीं की गई और विक्रमपुर खोद कर फेंक नहीं दिया गया तो बीहड़ राज्य की सत्ता का ख़ात्मा हो जायेगा। उनकी धाक और शान मिट्टी में मिल जायेगी। उनके पास महाराजा का आज्ञापत्र था। वे अपनी स्वेच्छानुसार काम करने के लिए स्वाधीन थे। मगर उन्हें झिझक थी तो सिर्फ़ इस बात से कि अँग्रेज़ रेज़ीडेन्ट ने उन्हें सलाह दी थी कि जहाँ तक हो सके, ख़ूनख़राबा बचाया जाय और पारस्पारिक समझौते की सूरत निकाली जाय।

विक्रमपुर के चारों ओर फौज पड़ी हुई थी उसको विक्रमपुर की प्राचीर के अन्दर और प्राचीर के बाहर से जनता के नारे सुनाई पड़ रहे थे। प्राचीर के अन्दर वाले लोग नारे लगा रहे थे—"सरदार अभयराज सिंह की जय" और प्राचीर के बाहर वाले लोग नारे लगा रहे थे—"बाबा बजरंगी की जय" जो लोग प्राचीर के बाहर हजारों की तादाद में जमा थे उनकी कोशिश यह थी कि गोली न चले। लेकिन वे यह भी चाहते थे कि भुवनमोहिनी और चपला बीहड़ नरेश के जालिम कर्मचारियों के हवाले न की जाएँ। उनकी माँग यह थी कि रियासत की ओर से यह घोषणा की जाय कि पवाई की प्रथा उठा दी गई, और दीवान प्रजा की राय से नियुक्त किया जायगा। प्राचीर के अन्दर के निवासियों की कोई खास माँग न थी। वे केवल शरणार्थी की रक्षा के भाव से प्रेरित थे और प्राण रहते गोली का जवाब गोली से देने के लिए तैयार थे। लेकिन वे गोली भी नहीं चला सकते थे। उन्हें प्राचीर के बाहर जमा हुई राज्य के निवासियों

के घायल होने का डर था। दीवान दिग्विजय सिंह सिर्फ़ इस-लिए गोली चलवाना चाहते थे कि उनकी शान कायम रहे। जब उनको और कोई सूरत नज़र नहीं आई तब उन्होंने यही तय किया कि बाहर जमा हुई भीड़ पर लाठी चार्ज कराके उसको तितर-बितर करा दिया जाय। तब तोपें लगवा कर प्राचीरों को उड़वा दिया जाय और अभयराज सिंह के समुचित दंड दिया जाय।

उन्होंने पुलिस कप्तान रिपुदमन सिंह को लाठी चार्ज करवाने की आज्ञा दी। लेकिन कप्तान रिपुदमन सिंह अब वे पहले वाले रिपुदमन सिंह नहीं रह गये थे। किले के अन्दर महाराजा के विलास सदन में जो घटना हुई थी उससे वे बिलकुल बदल गये थे। अब उनकी सहानुभूति जनता के साथ थी। उन्होंने पुलिस को लाठी चार्ज करने का आर्डर देने से इनकार कर दिया।

दीवान दिग्विजय सिंह ने उनको तुरन्त बरख़ास्त करा दिया और जब तक नया कप्तान नियुक्त न हो तब तक के लिए उन्होंने पुलिस कमाण्डरी खुद ही अपने हाथ में ले ली। उन्होंने सिपा-हियों को विक्रमपुर के प्रधान गेट पर जमा हुए लोगों पर लाठी चार्ज की आज्ञा दी।

दीवान साहब की आज्ञा के अनुसार पुलिस के सिपाहियों के एक दल ने बाहर की निहत्थी जनता पर लाठी चलाई और दूसरे फाटक पर पुलिस के घुड़सवारों ने निहत्थी जनता पर अपने घोड़े दौड़ाये। उस समय ज़ोर से "बाबा बजरंगी की जय" के नारों से आकाश गूँज उठा और इसका शोर-गुल बीहड़ नगर तक सुनाई पड़ा। इस लाठी चार्ज और जनता पर घोड़े दौड़ाने से सिवाय इसके कि फौज से फाटक तक रास्ता खुल गया और कोई विशेष लाभ न हुआ। निहत्थी जनता में कुछ ऐसा जोश और हिम्मत आगई कि बजाय भागने के वे लोग ख़तरे

की ओर और भी अधिक बढ़ने लगे। घायलों की चीत्कार से आकाश गूँज उठा।

बाहर यह कोहराम मच रहा था, अन्दर सरदार अभयराज सिंह अपने बहादुर भक्तों को जमा करके उनसे यह प्रस्ताव कर रहे थे कि निहत्थे व्यक्तियों पर इस तरह का ज़ुल्म देखा नहीं जाता। अगर सब लोगों की राय हो तो फाटक खोल दिया जाय और हम लोग आगे बढ़कर फौज का मुकाबला करें।

भुवनमोहिनी ने कहा—सरदार साहब अभी थोड़ा और धैर्य धारण कीजिए, आप लोग जब बाहर निकल कर लड़ेंगे तो बाहर जितने निहत्थे लोग जमा हुए हैं उनमें से अधिकाँश लोग गोली के शिकार हो जाएँगे।

"पर उनका यह दुख तो देखा नहीं जाता और फिर अधिक दिनों तक हम लोग इस छोटे नगर के अन्दर नहीं रह सकेंगे। नगर के अन्दर जो खाद्य सामग्री है, वह इतनी काफ़ी नहीं है कि हम लोग एक हफ़्ता से और अधिक टिक सकें"

विक्रमपुर के अन्दर एक छोटा सा प्रेस भी था जिसमें सब की राय से इस आशय की नोटिस छपवा कर प्राचीर के बाहर जनता में गिराया गया।

"अभयराज सिंह से सहानुभूति रखने वाले बीहड़ के प्यारे मनुष्यो ! रियासत के जालिम कर्मचारी तुम्हारे बलिदान और त्याग को नहीं समझ सकते। इसलिए निवेदन है कि आप सब लोग प्राचीर से हट कर किले की मार से बाहर चले जाने की कृपा करें ताकि इन जालिमों को किले के अन्दर से समुचित जवाब दिया जा सके।"

इस विज्ञप्ति से बाहर की जनता पर कोई असर न हुआ और इसके उत्तर में सब ओर से एक स्वर में गगन भेदी आवाजें उठीं—"बाबा बजरंगी की जय।"

भुवनमोहिनी इस नारे को सुन सुन कर गद्गद् हो गई। जनता के इस त्याग और बलिदान में जो बल है, वह बड़ी से बड़ी फौजों द्वारा कदापि व्यक्त नहीं किया जा सकता। मन ही मन वह बाबा बजरंगी की फिलासफी की प्रशंसा करने लगी।

जहाँ पुलिस ने लाठी चार्ज किया था, और घुड़सवारों ने घोड़े जनता पर दौड़ाये थे ठीक वहीं, फाटक के सामने तोपें लाकर खड़ी की गईं। दीवान दिग्विजय सिंह के आदेशानुसार बीहड़ की सेना के कमाण्डर साहब ने तोपचियों को आज्ञा दी कि वे तोपें दागकर प्राचीर और फाटकों को उड़ा दो।

लेकिन तोपचियों ने तोपों को चलाने से इनकार कर दिया। तब उन्होंने आवेश में आकर अपनी सेना की एक टुकड़ी को तोपचियों पर गोली चलाने की आज्ञा दी। लेकिन सिपाही पत्थर की मूर्ति जैसे जहाँ के तहाँ खड़े रहे गये।

अब तो बड़ी विषम परिस्थिति आ गई। कमाण्डर साहब की समझ में न आया कि वे क्या करें, वे तत्काल ही अपने डेरे में रिटायर हो गये और महाराजा साहब को टेलीफोन किया—"अभयराज सिंह लड़ाई के लिए तैयार है। उसकी रक्षा के लिए बीहड़ की निहत्थी जनता विक्रमपुर में अपनी जान देने को जमा हुई है और इधर हमारी फौज के सिपाही उन पर गोली चलाने से इनकार कर रहे हैं। बड़ी नाजुक हालत है, क्या किया जाय?"

जिस समय कमाण्डर साहब का यह टेलीफोन मिला, महाराजा विष्णुदेव सिंह अपने दफ़्तर में बैठे हुए थे। इधर कई दिनों से रास रंग उनको भूल सा गया था। वे सिर्फ एक इच्छा से प्रेरित थे कि किसी प्रकार सरदार अभयराज सिंह का दमन किया जाय और जितना ही इस कार्य में देर लगती थी उतना ही वे बेचैन होते थे। भूख प्यास और नींद सब उनको भूल गई थी। वे अभयराज सिंह की पराजय के समाचार की प्रतीक्षा में

थे लेकिन फिर भी उन्हें ऐसा समाचार मिला जो स्वयं उन्हीं के लिए लज्जा जनक था।

टेलीफोन एक ओर रख कर महाराजा विष्णुदेव सिंह अपने दोनों हाथों पर सिर रक्खे कुछ देर तक सोचते रहे और उन्हें कोई उपाय न सूझा। उनकी हालत उस पिता की सी हो उठी थी जो अन्त में हार मान कर अपने उदंड पुत्र के सामने मस्तक झुका देता है। उन्हें जान पड़ा, जैसे यह बाबा बजरंगी की बहुत बड़ी जीत हुई है।

तत्काल ही उन्होंने अपनी कार तैयार करायी और उस जेलखाने की ओर चल पड़े जिसमें उस समय बाबा बजरंगी कैद थे। महाराजा को आते हुए देखकर फौरन जेल का फाटक खोल दिया गया और वे जेल के दारोग़ा के साथ उस कमरे में पहुँचे जिसमें बाबा बजरंगी बैठे हुए थे। महाराजा के आदेशानुसार जेल के दारोग़ा वहाँ से चले गये।

कोठरी का दरवाजा खोल दिया गया, उसके अन्दर कुछ रोशनी आ गई थी। महाराजा ने उस क्षीण रोशनी में देखा कि बाबा बजरंगी एक कोने में बैठे मकाई का एक डंठल चबा रहे हैं। पिछले कई दिनों से जेलख़ाने के कर्मचारियों की ओर से उन्हें यही ख़ूराक दी गई थी। मकाई के दाने वे स्वयं चबा लेते, और उसका डंठल कैदियों को चबाने के लिए उनकी गुफाओं में फेंक देते थे। मानो वे कैदी मनुष्य न हों; पशु हों।

जेल के कुप्रबन्ध पर महाराजा को क्षोभ हुआ। उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास लिया।

उनको देखकर भी बाबा बजरंगी ने मानों नहीं देखा। उन्हें नहीं पहचाना और वे उनसे कुछ बोले भी नहीं। तब महाराजा ने अपनी ही ओर से कहा—सरदार सम्पूर्ण सिंह तुम जीते मैं हारा।

बाबा बजरंगी ने मकाई का एक कौर काटते हुए कहा— आपका आशय मैं नहीं समझ सका।

"मेरा आशय स्पष्ट है। मैं अपराधी हूँ तुमसे उसकी क्षमा प्रार्थना करने आया हूँ। तुम्हारे साथ बेशक मैंने अन्याय किया है। मैं चाहता हूँ तुम मुझको क्षमा कर दो।"

बाबा बजरंगी ने खड़े होकर उस कोठरी में अपने सिर पर झूलते हुए एक छीकें पर मकाई के डंठल को रखा, और इतमिनान से बैठ कर कहा—मैंने तो आपको उसी दिन क्षमा कर दिया था, जिस दिन मेरा सर्वस्व अपहरण किया गया था। मेरे दिल में आप के लिए किसी किस्म का मैल न पहले था न आज है।

"सम्पूर्ण सिंह मुझे साफ़-साफ़ बताओ कि तुम क्या चाहते हो। यदि तुम कहो तो मैं राज्य सिंहासन छोड़कर इस राज्य से दूर निकल जाऊँ।"

"मैं यह नहीं चाहता ?"

"फिर क्या चाहते हो ? फिर यह कुहराम क्यों मचा हुआ है ? यह प्रजामण्डल क्या बला है ? आखिर राज्यसत्ता को उलट फेंकने का यह संगठित आन्दोलन क्या है ?"

"यह तो आपको कर्त्तव्य की ओर ध्यान दिलाने का एक संकेत मात्र है। मनुष्य मकान इसलिए निर्माण करता है कि वह उसके अन्दर जाड़ा गर्मी और बरसात से बच कर रहे। लेकिन जाड़ा-गर्मी और बरसात से मकान मनुष्य की रक्षा नहीं कर सकता तो वह मकान उसके लिए बेकार है। राज्य व्यवस्था का निर्माण इसीलिए होता है, कि उससे मनुष्य निश्चिन्त होकर अपने विभिन्न व्यापारों और कामों की उन्नति करे। लेकिन जब राज्य व्यवस्था उसकी उन्नति में बाधक होती है, और उसकी रक्षक के बजाय उसकी भक्षक बन जाती है, तब स्वभावतः मनुष्य के

मन में राज्य व्यवस्था बदलने की इच्छा उत्पन्न होती है। यही इच्छाएँ बड़ी बड़ी क्रान्तियों का रूप ग्रहण करतीं हैं। सत्ताधारी इनको विद्रोह कहते हैं। लेकिन वास्तव में ये विद्रोह नहीं हैं। ये तो राज्य सत्ता के लिए एक संकेत मात्र हैं कि उसमें कुछ खराबी आगई है। वह अपना सुधार करे। नहीं करेगी तो स्वयं नष्ट हो जायगी।"

महाराजा ने बाबा बजरंगी की इन सब बातों को ध्यान पूर्वक सुना और पूछा—तो मुझे क्या करना चाहिये ? बीहड़ को इस वर्तमान संकट से उबारने का कोई उपाय है ?

"क्यों नहीं है ?"

"मुझे बताते क्यों नहीं।"

"मैं जेल के अन्दर सड़ रहा हूँ। मुझे मालूम नहीं कि कहाँ क्या हो रहा है ? जब तक मैं जेल के बाहर न निकलूँ और बाहर की परिस्थिति न देखूँ और समझ न लूँ तब तक मैं आपको क्या सलाह दे सकता हूँ। यदि इसी समय मुझे आप जेल के बाहर जाकर परिस्थिति को समझने दें तो मैं यथा संभव शीघ्र ही आपके सामने अपनी राय रख सकता हूँ।"

महाराजा ने तुरन्त ही बाबा बजरंगी को जेल से मुक्त किये जाने की आज्ञा दी और स्वयं अपनी कार में विक्रमपुर पहुँचवाया। और वहीं से टेलीफ़ोन द्वारा दीवान और कमाण्डर से बातें करते रहे।

वहीं से महाराजा ने फौज के कमाण्डर को टेलीफोन किया— मैंने बाबा बजरंगी को जेल से मुक्त कर दिया है, उन्हें घटनास्थल पर भेज रहा हूँ। वे जैसे चाहें वैसे उन्हें वस्तुस्थिति का अवलोकन करने दीजिए। वे जिससे मिलें, उनसे मिलने दीजिए और दीवान साहब से जो कुछ पूछें वे उनको उत्तर दें। यदि वे विक्रमपुर के अन्दर जाकर वहाँ के निवासियों से मिलना चाहें

तो उन्हें जाने दीजिए। जब वे परिस्थिति से अवगत होकर फिर मेरे पास लौट आवेंगे तब मैं आपको बतलाऊँगा कि आपको क्या करना चाहिए ? तब तक इसी तरह घेरा डाले पड़े रहिए और जिन सिपाहियों ने हुक्म अदूली की है उन्हें वहाँ से हटा लीजिए।

अभयराज सिंह से महाराजा इतने असन्तुष्ट हो उठे थे कि वे उनके सामने कदापि झुकना न चाहते थे। अगर सिवाय समझौते के और कोई सूरत नहीं थी तो वे सम्पूर्ण सिंह से समझौता क्यों न करें ? इसीलिए उन्होंने जेल में जाकर बाबा बजरंगी से मुलाकात की थी। उन्होंने सोचा, सम्पूर्ण सिंह उतना बुरा नहीं है। उसके दिल में उनकी भक्ति थी। और यह अभयराज सिंह ! यह उनसे प्रतिद्वन्दिता करना चाहता है। देखूँगा इसको।

वे टेलीफोन पर बैठे बड़ी देर तक दीवान और कमाण्डर से मंत्रणा करते रहे। और इसी तरह सोचते रहे।

१८

विक्रमपुर के राज्य पंडित की कन्या माधवी को जब मालूम हुआ कि बीहड़ के राज्य पुरोहित की कन्या भुवनमोहिनी आज कल विक्रमपुर में मौजूद है, तब वह उससे मिलने के लिए उत्सुक हो उठी। माधवी को मालूम था कि बैरिस्टर मदनगोपाल भुवनमोहिनी के रूप पर मुग्ध होकर ही उसकी ओर से विमुख हुए हैं। इसलिए भुवनमोहिनी के प्रति उसके हृदय में रोष था।

लेकिन जब एक दिन बैरिस्टर मदनगोपाल स्वयं ही विक्रमपुर में उपस्थित हुए, और उन्होंने अपने अपराध को स्वीकार किया और माधवी के प्रति अपने प्रेम को फिर से प्रगट किया और उसी पर दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की, तब माधवी का भुवनमोहिनी के प्रति जो रोष था वह करुणा में बदल गया। उसे भुवनमोहिनी पर दया आई। बैरिस्टर मदनगोपाल के उसके साथ शादी का प्रस्ताव अस्वीकार कर देने पर, जो मनोव्यथा उसकी हुई थी। माधवी ने सोचा कि यही मनोव्यथा अब भुवनमोहिनी को मिली होगी। बेचारी युवती कितनी दुखी होगी। उसकी कल्पनायें, उसका सोने का संसार, उसकी उमंगें सब मिट्टी में मिल गई होंगी। उसे भुवनमोहिनी के प्रति बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई।

फिर भुवनमोहिनी पर यही एक मुसीबत न थी। राज्य कर्मचारियों द्वारा उसका अपहरण और उसका विक्रमपुर में चपला के प्रयत्न से बच कर आना, यह सब माधवी को मालूम था। कुछ उसकी सहानुभूति के कारण और कुछ यह जानने के इरादे से कि भुवनमोहिनी और बैरिस्टर मदनगोपाल का सम्बन्ध एक प्रकार से निश्चित हो चुका था, फिर विच्छेद क्यों हुआ ? वह भुवनमोहिनी से मिलने के लिए आतुर हो उठी।

महेशानन्द शास्त्री और विक्रमपुर के राज्य पुरोहित ये दोनों निकट सम्बन्धी थे। दोनों का एक दूसरे के यहाँ आना जाना था। दोनों के घरों की स्त्रियाँ विशेष पर्वों पर या विशेष उत्सवों पर एक दूसरे के यहाँ आती जाती थीं। भुवनमोहिनी और माधवी में बहुत स्नेह था। हफ्ते में एक बार दोनों जरूर आपस में मिलती थीं। दोनों के आपस का मेल जोल उस तारीख से बन्द हो गया था जिस तारीख को बैरिस्टर मदनगोपाल ने माधवी के साथ शादी का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था। इस घटना से माधवी भुवनमोहिनी से बहुत कुपित हो गई थी। कोई दूसरी

स्त्री होती तो उसे इतना रोष नहीं होता, लेकिन जब उसकी सहेली ही उसके प्रेम में बाधा स्वरूप उपस्थित हुई, तब वह एक विचित्र ईर्षाग्नि से जल उठी। वह यही सोचती। हाय उसने भुवनमोहिनी से इतनी घनिष्ठता क्यों बढ़ाई। भुवनमोहिनी उसे साक्षात् पिशाचिनी सी जान पड़ी। प्रथम बार जब उसने भुवनमोहिनी के अपहरण का समाचार सुना था तब वह बहुत ही प्रसन्न हुई थी। वह सोचती थी कि ईश्वर ने उसको अच्छा दंड दिया है।

लेकिन अब बात दूसरी थी। अब उसका प्रियतम फिर उसे मिल गया था और भुवनमोहिनी के तो प्राणों के लाले पड़ रहे थे। यही कारण था कि भुवनमोहिनी के प्रति उसका घृणा भाव प्रेम और श्रद्धा में परिवर्तित हो गया था, और वह बहुत उत्साह से उससे मिलने गई थी।

विक्रमपुर के सरदार की हवेली के एक भाग में चपला और भुवनमोहिनी ठहरी हुई थीं। जिस समय माधवी वहाँ पहुँची, दोनों खिड़की से बाहर झाँक कर विक्रमपुर से बाहर पड़ी हुई बीहड़ राज्य की फौज और प्राचीर के बीच में जमा हुई बीहड़ के निवासियों को देख रही थीं। दोनों आनन्द से गद्‌गद् थीं।

माधवी को देखते ही भुवनमोहिनी उसकी ओर लपकी और अपनी बाहों में उसको भर कर फूट-फूट कर रोने लगी। दोनों सहेलियों को समय के एक अज्ञात कर ने एक दूसरी से दूर फेंक दिया था। आज वही कर उन्हें करीब लाया था। दोनों पूर्ववत् स्नेह से सगी बहनों के समान आपस में मिल रही थीं।

बड़ी देर तक दोनों चुपचाप पास-पास बैठी रहीं। उसके बाद अनायास दोनों में बैरिस्टर मदनगोपाल के विषय में चरचा छिड़ गई। माधवी ने बतलाया कि किस प्रकार उन्होंने विलायत

जाने के पूर्व उसके साथ शादी करने का वचन दिया था और किस प्रकार विलायत से लौटने पर वे उससे विमुख हो गये। अपने इस लम्बे बयान में माधवी ने जान बूझकर एक बात कहना छोड़ दिया था। वह यह कि उनके विमुख हो जाने का कारण भुवनमोहिनी स्वयं तुम थीं। उसके कथन के इस अभाव को भुवनमोहिनी ने स्वयं पूरा किया।

उसने माधवी को अपने और निकट खींचते हुए कहा—"प्रिय सखी! बैरिस्टर साहब और तुम्हारे बीच में भेद उत्पन्न हो जाने का कारण मैं हूँ। इसका अपराध मेरे सिर पर है। विलायत से लौटने के बाद मेरे यहाँ उनका आना जाना बढ़ा। मेरे पिता ने मुझे उनसे मिलने जुलने की स्वतंत्रता दी, उसका परिणाम स्वाभाविक ही था। मुझसे और उनसे प्रेम हो गया और उन पर मैं दीवानी हो उठी। लेकिन मेरी प्यारी सखी यदि मैं जरा भी यह जानती होती कि तुम्हारी और बैरिस्टर साहब की शादी होने वाली है तो मैं कदापि इस हद तक नहीं जाती। प्रिय सखी जो कुछ हुआ है, अनजाने में हो गया है, मुझे क्षमा करो।

माधवी के हृदय में भुवनमोहिनी के प्रति अनायास आज जो करुणा का भाव उदय हुआ था वह और भी अधिक स्निग्ध हो उठा। उसने आँखों में बड़े-बड़े आँसू, हृदय में विजय का गर्व, रोमों में पुलक और अधरों में मुसुकान भरे हुए कहा—"नहीं तुम बैरिस्टर साहब से शादी करलो, मैंने तो अब आजन्म कारी रहने का ही व्रत ले लिया है।"

भुवनमोहिनी ने उसके गालों पर एक हल्की चपत जमाते हुए कहा—पगली नादानी न कर। इसके पहले कि वह किसी और पर आकर्षित हों, तू अपने गहरे प्रेम-पाश से उन्हें जकड़ ले। अनजाने में मैं उनके साथ शादी कर सकती थी, उनके लिए प्राण

दे सकती थी; लेकिन अब मैं जान गई हूँ। मैंने अपने हृदय को संयम के बन्धन से बाँधा है, बाबा बजरंगी मेरे सहायक होंगे।

भुवनमोहिनी के मुख से 'बाबा बजरंगी' का शब्द निकला ही था कि विक्रमपुर की प्राचीर के बाहर से बड़े जोर से "बाबा बजरंगी की जय। बाबा बजरंगी की जय" के नारे लगने लगे, तो क्या मेरे मुख से निकला हुआ यह शब्द बाहर की जनता के कानों में पड़ गया, कि वह एकाएक बजरंगी की जय चिल्ला उठी।

भुवनमोहिनी को जान पड़ा, जैसे बीहड़ की सारी जनता की सहानुभूति उसे मिल रही है। तत्काल दोनों सहेलियाँ खिड़की के पास जा बैठीं, जहाँ पहले ही से चपला बैठी बाहर की भीड़ की ओर देख रही थी।

तीनों ने देखा कि लोगों में बड़े जोर की कशमकश जारी है। बीहड़ राज्य की फौज और पुलिस के घेरे को पार करके एक सरकारी मोटरकार किला के फाटक के पास आकर खड़ी है और उस कार से बाबा बजरंगी अपना क्षीण शरीर लिये उतर रहे हैं। तीनों ने यह देखा कि फौज के कमाण्डर, दीवान दिग्विजय सिंह और कितने ही राज्य के अफसर वहाँ पहुँच गये हैं और वे सब बाबा बजरंगी से बातें कर रहे हैं और जनता बाबा बजरंगी की जय! बाबा बजरंगी की जय! के नारे लगा रही है। इसके बाद तीनों ने बाबा बजरंगी को दीवान दिग्-विजय सिंह के साथ उनके कैम्प के अन्दर जाते देखा। चपला अपने कमरे के अन्दर से निकल कर बाहर आई और वहाँ पहुँची, जहाँ सरदार अभयराज सिंह बैठे हुए थे। उस समय चपला और भुवनमोहिनी दोनों बहुत प्रसन्न थीं। दोनों के हृदय संकट समाप्त हो जाने की आशा से धकधका रहे थे। हर्षोन्माद से दोनों ने एक दूसरी को लिपटा लिया।

अभयराज सिंह की पत्नी का स्वर्गवास हुए कोई पाँच साल हो गये थे। चाहते तो अन्य सरदारों की तरह वे भी कई शादियाँ कर सकते थे। और कितने ही अन्य सुन्दरियों को बीहड़ नरेश की तरह अपनी हवेली में डाल सकते थे। लेकिन वे एक पत्नी व्रती थे। उन्होंने स्वर्गीया पत्नी की एक संगमरमर की मूर्ति बनवा कर, हवेली के जनाने हिस्से में स्थापित करा दी थी। जब उनका मन कभी किसी प्रकार डिगता था, तब वे तुरन्त उस मूर्ति के सामने जाकर उपस्थित हो जाते थे, प्रेम से उस मूर्ति को मस्तक झुका कर कहते थे—स्वर्ग की देवी, मेरी अरमानो की प्रतिमे! मुझे प्रकाश दिखला।

आज जब एक विचित्र भाव से बिजली की तरह लपक कर चपला उनके पास आई और जब धीमे स्वर से उनके कानों के पास मुँह ले जा कर उसने कुछ कहा तब उन्हें अपनी छाती पर रक्खी संयम और एक पत्नीव्रत की शिला हटती हुई सी जान पड़ी। उन्होंने मन ही मन अपने जनाने महल में स्थापित अपनी स्वर्गीया पत्नी की संगमरमर की मूर्ति का आह्वान किया। लेकिन उस समय उन्हें जान पड़ा कि जैसे वह मूर्ति उनसे कह रही हो—प्रियतम चपला को मैंने ही तुम्हारे पास भेजा है।

इतने ही में हाँफता हुआ विक्रमपुर का एक स्वयं सेवक उस कमरे में आ पहुँचा और सरदार अभयराज सिंह के सामने उप-स्थित हो कर उनसे बोला—"श्रीमान् बाबा बजरंगी फाटक के अन्दर आना चाहते हैं।" इसके पहले कि सरदार साहब कुछ बोलें, चपला ने तेजी से कहा—"फाटक खोल दो" और वह बिजली के समान ऊपर के कमरे से उछल कर नीचे के आँगन में जा खड़ी हुई और वहाँ से पलक मारते ही फाटक पर पहुँच गई।

चपला ज्योंही चली गई सरदार अभयराज सिंह को जान पड़ा जैसे उनका प्राण उनके शरीर से निकल गया हो। उनका

जीवन उनकी उमंग सब कुछ वही है और उन्हें छोड़ कर चली गई है। वे मूर्ति की भाँति जहाँ के तहाँ बैठे रहे।

फाटक खोल दिया गया। भीड़ जहाँ की तहाँ रोक दी गई और बाबा बजरंगी विक्रमपुर के अन्दर घुसे। हवेली से निकल कर जिस सड़क से हो कर चपला आनन फानन फाटक पर पहुँची थी, वह काफ़ी दूर थी। फाटक से सरदार अभयराज सिंह के कमरे तक आने में बाबा बजरंगी और चपला को कोई पन्द्रह मिनट का समय लगा। सड़क के दोनों ओर से बाबा बजरंगी की जय के नारे लग रहे थे। चपला अपने विचित्र वेष में थी और बाबा बजरंगी के बराबर-बराबर चल रही थी। देखने वालों को ऐसा जान पड़ रहा था कि जैसे आकाश से कोई परी पृथ्वी पर, किसी की तपस्या से प्रसन्न हो कर उसे इन्द्रलोक में ले जाने के लिए उतरी हो।

बहुत दिनों के बाद सरदार अभयराज सिंह और सरदार सम्पूर्ण सिंह में भेंट हुई थी। बीहड़ राज्य के इन दोनों सरदारों में आपस में बड़ी घनिष्ठता थी और बड़ा प्रेम था। दोनों यह चाहते थे कि बीहड़ नरेश एक आदर्श शासक हों। जब वे गद्दी पर नहीं बैठे थे, तब उनके व्यवहार को देखकर, दोनों को यह आशा हुई थी कि जब वे शासन सूत्र अपने हाथ में लेंगे तो अपने पूर्वजों के कलंक को धो देंगे। लेकिन गद्दी पर बैठने के बाद ही उनकी ये आशायें निराशा में परिणित हो गईं। ये दोनों सरदार आदर्श से डिगने वाले न थे। दोनों राज्य में अपनी सहृदयता अपनी प्रजा प्रियता के लिए प्रसिद्ध थे। दोनों अपने-अपने इलाके में बड़े ही लोक-प्रिय थे। सरदार अभयराज सिंह को राज्य कर्मचारी और स्वयं महाराजा काफ़ी खतरनाक समझते थे। लेकिन सरदार सम्पूर्ण सिंह अभयराज सिंह से सर्वथा भिन्न थे, वे बात सुनना जानते थे; किन्तु बात सुनाना नहीं जानते थे। अपनी प्रजा के मुख से कड़ी बातें सुन लेते थे। लेकिन स्वयं किसी सेवक को भी कड़ी बात नहीं कहते थे। उन्होंने अपने घर में बन्दूक, तलवार और हथियार बन्द सिपाही भी नहीं रक्खा था। लगान स्वरूप जो उन्हें मिल जाता था उसे ले लेते थे और जो उन्हें नहीं मिलता था उसके लिए परेशान नहीं होते थे। वे अपनी दीन प्रजा के दुःख दर्द को समझते थे। जो कुछ उनके खज़ाने में रहता था, उसे सबों को लुटा देते थे। उनकी यह उदारता, उनका यह प्रेम बीहड़ राज्य के कर्मचारियों को कायरता ही जान पड़ा और वे उन पर सब तरह से ज्यादती करने लगे और उनके विरुद्ध महाराजा के कान भरने लगे। इसका नतीजा एक दिन यह हुआ कि उनका इलाका जब्त कर लिया गया। परिवार सहित जिस अपराध में महेशानन्द शास्त्री अपने शिवलोक से बाहर निकाले गये थे उसी अपराध में वे भी बाहर निकाले गये। उनकी एक बहन थी जिसकी किसी प्रकार शादी न हो सकी थी। उसके लिए बीहड़ेश्वर के यहाँ से पवाई की पालकी भेजी गई। सरदार सम्पूर्ण सिंह ने उसे अपना बड़ा अपमान समझा। उन्होंने उस पालकी को दरवाज़े से लौटा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वे; उनकी पत्नी, उनकी लड़कियाँ और पाँच साल का लड़का चौबीस घंटे के अन्दर रियासत खाली करने के लिए विवश किए गए। सरदार सम्पूर्ण सिंह ने यह आज्ञा मानने से भी इनकार कर दिया। तब वे जेलखाने में डाल दिए गए।

पति के गिरफ़्तार हो जाने के बाद बेचारी स्त्री एक विश्वासी नौकर के साथ बीहड़ के बाहर चली गई। फिर कोई पता नहीं चला कि उसका और उसके छोटे-छोटे बच्चों का क्या हुआ और वे कहाँ हैं? जेलखाने से निकलने के बाद प्रजामंडल कायम करने पर उन्होंने पता लगाने की चेष्टा की; लेकिन उनका

कहीं सुराग न लगा; उन्होंने अनुमान किया, सम्भवतः उनकी पत्नी और बच्चे रियासत के बाहर बहुत दूर कहीं किसी तीर्थ में मर मरा गए हैं और अब शायद ही कभी उनसे भेंट हो। सरदार अभयराज सिंह ने उनसे कहा कि यह सब घटना इतनी जल्दी हो गई कि मैं आपकी कुछ भी सहायता न कर सका। बाबा बजरंगी ने कहा—भाई, जो कुछ हो गया उसकी चिन्ता मत करो, शायद यह अच्छे ही के लिए हुआ है। ईश्वर को इस शरीर से कुछ और ही काम लेना है; इसीलिए उसने यह खेल रचा है।

इस प्रकार परस्पर कुशल क्षेम के बाद दोनों सरदारों ने मौजूदा स्थिति पर विचार करना शुरू किया। बाबा बजरंगी ने दीवान दिग्विजय सिंह की ओर से समझौते की जो शर्तें पेश की गई थीं उनको सरदार अभयराज सिंह के सामने रखा। पहली शर्त यह थी कि अभयराज सिंह हथियार डाल दें और आत्मसमर्पण कर दें। दूसरी शर्त यह थी कि तीन आदमी प्रजा की ओर से और तीन आदमी राज्य की ओर से चुने जायँ और राज्य का सबसे बड़ा न्यायाधीश उसका सभापति हो। इन सात आदमियों की समिति शासन व्यवस्था के बारे में जो निर्णय कर दे वह राजा और प्रजा दोनों को स्वीकार हो। तीसरी यह कि पवाई कि प्रथा उठा दी जाय।

सरदार अभयराज सिंह किसी प्रकार हथियार रखने के लिए तैयार न होते थे और दोनों सरदार इस पर वादविवाद कर रहे थे। अन्त में चपला ने उनको समझाया कि यह शर्त आपकी शान के खिलाफ़ नहीं है और फिर मैं सोचती हूँ कि यदि इसी प्रकार विक्रमपुर के गिर्द राज्य का घेरा पड़ा रहा तो शीघ्र ही हम लोग अन्न पानी के बगैर मर जायेंगे।

सरदार अभयराज सिंह ने चपला की ओर देखा। उस

समय वह अपने सहज नारी वेष में थी। एक सुन्दर वासन्ती साड़ी उसने धारण कर रक्खी थी। साड़ी के भीतर से उसके शरीर की सुन्दरता फूटी पड़ती थी उसने अपने जूड़े में कनैल के दो फूल खोंस रखे थे। वे दोनों फूल अभयराज सिंह को अनंग के तीर से प्रतीत हुए। उन्होंने फिर अपने जनाने महल में स्थापित अपनी स्वर्गीया पत्नी की प्रस्तर मूर्ति का आह्वान किया। उन्हें जान पड़ा जैसे वह प्रस्तर की मूर्ति उनसे कह रही है—प्रियतम चपला जो कह रही है वही ठीक है।

अभयराज सिंह ने कहा—चपला तुम बीहड़ नरेश के स्वभाव से परिचित नहीं हो। उनका चित्त बड़ा ही चंचल है। क्षण क्षण में उनके विचार बदलते हैं। यदि इस प्रकार मुझे बन्दी बनाने के बाद उन्होंने मुझे आजन्म जेल में रक्खा या मुझे फाँसी देना ही निश्चित किया तो मेरे मन के अरमान मन ही में रह जायँगे।

चपला ने उनके करीब आकर कहा—वीर पुरुष ! यदि तुम्हें जेल में रहना पड़े या फाँसी के तख्ते पर झूलना पड़े तो तुम विश्वास करो; अपने मरने से पूर्व तुम चपला के हाथों बीहड़ नरेश की मृत्यु का समाचार सुनोगे।

चपला की बातों में कुछ ऐसी दृढ़ता थी, उसकी मुखाकृति में कुछ ऐसी विनय थी कि सरदार अभयराज सिंह उसकी बातों को अस्वीकार नहीं कर सके। उन्होंने अपनी कमर से तलवार खोलकर चपला के हाथ पर रख दी और अपनी स्वर्गीया पत्नी का एक बार फिर आह्वान किया। उसके बाद वे विक्रमपुर नगर के बाहर निकल कर राज्य के कर्मचारियों के हाथों में आत्मसमर्पण करने के लिए उद्यत हो गये। अब भुवनमोहिनी और माधवी भी वहाँ आगई थीं। माधवी तो वहीं रह गई लेकिन

भुवनमोहिनी, चपला और बाबा बजरंगी के साथ सरदार अभय-राज सिंह को फाटक तक पहुँचाने आई। अश्रुपूर्ण नेत्रों से उन सबों ने उनको बीहड़ राज्य के कर्मचारियों के हवाले कर दिया।

क्या तय हुआ था, यह बाबा बजरंगी ने वहाँ उपस्थित समस्त जनता को सुनाया और आश्वासन दिया कि शीघ्र ही सरदार अभयराज सिंह छूट कर हम लोगों के बीच में आजावेंगे। उनके आत्म समर्पण का केवल यही एक अर्थ है कि राज्य की प्रतिष्ठा, महाराजा की शान कायम रहे। यदि उनका कोई कसूर भी साबित होगा तो मुझे विश्वास है कि महाराजा उन्हें माफ कर देंगे और वे हम सबों के बीच में आजायेंगे। इसके बाद ही बाबा बजरंगी ने उपस्थित जनता को बताया कि पवाई की प्रथा उठा दी गई है और अन्य मामले में भी शीघ्र ही महाराजा और प्रजामण्डल में समझौता हो जायगा।

सरदार अभयराज सिंह ने नतमस्तक होकर, विक्रमपुर नगर और वहाँ उपस्थित समस्त व्यक्तियों का अभिवादन किया और पुलिस की मोटर में बैठ गए। मोटर चल पड़ी और आकाश सरदार अभयराज सिंह की जय के नारों से गूँज उठा।

१९

बीहड़ के रनिवास में आज बड़ी चहल-पहल है। आज करीब साढ़े पाँच बरस के पश्चात् महाराजा विष्णुदेव सिंह वहाँ पधार रहे हैं। इतने वर्षों तक रानियाँ महाराजा के दर्शन के लिए तरसती रही थीं। उन्हें एक प्रकार से यह विश्वास

हो चला था कि अब महाराजा रनिवास में कभी आवेंगे ही नहीं। लेकिन जब एकाएक प्रत्येक रानी के पास यह सन्देश पहुँचा कि महाराजा सब को एक साथ बड़ी महारानी के महल में दर्शन देंगे, तब रानियाँ मगन हो उठीं।

प्रत्येक रानी की महाराजा के पास तक यह विनती पहुँची कि वे उसके महल में भी कुछ मिनट गुजारने की कृपा करें। लेकिन महाराजा ने सब को यही उत्तर दिया कि आजकल वे बहुत व्यस्त हैं। वे उनकी विनती पर ध्यान रक्खेंगे और जब उन्हें अवसर मिलेगा तब अवश्य उनको पृथक रूप से भी दर्शन देंगे।

महाराजा ने बड़ी महारानी के महल में जाने का कोई आठ बजे का समय दिया था। उससे पहले ही सब रानियाँ अपनी राजकीय वेष भूषा में सज्जित होकर अपने बहुमूल्य रत्नाभूषण धारण करके वहाँ पहुँच गई थीं। बड़ी महारानी के महल की उस समय की छवि देखते ही बनती थी। जान पड़ता था कि अगर इन्द्रलोक है तो यही है। वे सब रानियाँ साक्षात् इन्द्र की परियों सी जान पड़ रही थीं।

उस दिन का उनका सारा समय स्नान, शृङ्गार, और वस्त्रा-भूषण के चुनाव में ही व्यतीत हुआ था। बड़ी महारानी, मझली महारानी, छोटी महारानी और सबसे छोटी महारानी और बड़ी खवास, मझली खवास, छोटी खवास और सब से छोटी खवास ये आठों युवतियाँ उपस्थित थीं। उनका शृङ्गार और वेष भूषा अपने ढङ्ग का निराला ही था। उन आठों पर किसी न किसी दिन महाराजा रीझ चुके थे और उनको अपनी हृदयेश्वरी घोषित कर चुके थे। लेकिन समय के फेर से ये आठों उनकी निगाह से उतर गई थीं और उनकी जगह पासबानों, वेश्याओं और भाँड़ों ने लेली थी। एक दूसरी की आपस में सौतें होते हुए

भी ये रानियाँ एक साथ उपस्थित होकर आज बहुत प्रसन्न थीं। आखिर उन सबों के हृदय का देवता तो एक ही था। उसी की प्रसन्नता उन सब की प्रसन्नता थी, और अगर उसकी यही मर्जी थी कि वह सब रानियों को एक ही साथ दर्शन देगा तब वे अपना सब राग-द्वेष और कलह भूल कर वहाँ उपस्थित हो गई थीं। राग-द्वेष और परस्पर कलह करतीं भी तो किस बल पर, कलह का कारण केवल पति का व्यक्तिगत प्रेम हो सकता था जो उनमें से किसी को प्राप्त न था। तब सब बराबर ही थीं।

प्रत्येक रानी और खवास वहाँ उपस्थित हुई अपने जीवन के बीते इतिहास के पृष्ठ उलट रही थी। किस प्रकार महाराजा से उनकी शादी की बातचीत चली, किस प्रकार शादी हुई, किस प्रकार वे महाराजा की विशेष स्नेह पात्री बनीं और किस प्रकार उन्हें रानी का निरर्थक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

ये सब रानियाँ महाराजा के अपनी तरफ से उदासीन हो जाने पर अपने-अपने महल में ठाकुर जी की स्थापना करके उनकी पूजा कर रही थीं। हर रानी के महल में संध्या होते ही कीर्तन प्रारंभ हो जाता था। रानियाँ स्वयं अपने हाथों में कर-ताल लेकर ठाकुर जी की मूर्ति के सामने नाचतीं और कीर्तन करती थीं। इसी में उनका मन बहला रहता था और इसी में उनका समय कटता था। ठाकुर जी की पत्थर की मौन मूर्ति उन सबों की उद्धारक थीं। वे ही उन सबों के निष्ठुर प्रियतम थे।

लेकिन आज महाराजा की अवाई का समाचार सुनकर रानियों के सब महलों का कीर्तन बन्द हो गया था। उन सबों को यह अनुभव हो रहा था कि महाराजा का वेष धारण करके स्वयं ठाकुर जी रनिवास में पधार रहे हैं। महाराजा तो कभी पधार

ही नहीं सकते। वे सब अत्यन्त प्रसन्न और पुलकित हो रही थीं।

ठीक समय पर महाराजा बड़ी रानी के महल में पधारे। रानियों ने महल के द्वार पर पहुँच कर उनका स्वागत किया, उनको मालाएँ पहनाईं, उनके मस्तक पर चन्दन, रोरी और अक्षत लगाये और उनकी आरती उतारी। उसके बाद सब एक स्वर में कीर्तन करती हुई, उनके गिर्द नृत्य करती हुई, उनको महल के अन्दर ले आईं। बड़ी रानी के महल में छः पाये का एक बड़ा भारी पलँग था। उस पर कोई बालिश्त भर का ऊँचा मुलायम मखमली गद्दा बिछा था। जिसमें सोने चाँदी, और रेशम के बारीक सूतों से बने हुए दिल लुभाने वाले काम अंकित थे। पलँग के नीचे विशाल कमरे में, चारों तरफ बहुमूल्य कालीन बिछे हुए थे। दीवालों पर महराजा की विविध अवस्था की बड़ी-बड़ी तसवीरें टँगी थी। इन तसवीरों में अनेक तसवीरें उनके विवाह की थीं। जिनमें महाराजा का किसी न किसी रानी के साथ पाणिग्रहण संस्कार का दृश्य अंकित था। कमरे की छत श्वेत रेशम के वस्त्र से सज्जित थी और उसमें झाड़ फानूस के विविध हण्डे लटक रहे थे।

महारानियों ने महराजा को पलँग पर बिठला दिया। पलँग पर विविध आकार प्रकार के सैकड़ों तकिये रक्खे थे। बहुत देर तक महाराजा को पलँग पर अत्याधिक आराम के साथ बैठा-लने की कोशिशें होती रहीं। महाराजा को रानियों ने तकियों के सहारे बैठाने की चेष्टा की। महाराजा की पीठ को सहारा देने के लिए एक मसनद लगाई गई। मसनद और महाराजा के सिर के बीच में खाली जगहों पर छोटे-छोटे तकिए रक्खे गए। महाराजा ने अपने पाँव फैला दिए थे। उनके पाँवों के नीचे एँड़ी तक तकिए रक्खे गए। घुटने के नीचे खाली जगह छोटी

छोटी तकियों से भरी गई। महाराजा ने मसनद पर अपनी बाँह रख कर अपनी हथेली पर अपना सिर रक्खा था। उनकी बाहों के बराबर से लेकर उनके सिर तक छोटी-छोटी मुलायम गद्दियाँ रक्खी गईं। बड़ी महारानी ने उनके एक हाथ को लेकर उनकी हथेली को चूमा और अपनी आँखों से लगाया। दूसरा हाथ जो उनके घुटने पर था, उसके और घुटने के बीच में जो जगह थी वह विविध आकार प्रकार के तकियों से भरी गई। यदि महाराजा जरा भी हाथ पाँव उठाते या गर्दन फेरते और करवट बदलते तो ये तकिए गिर पड़ते। तब ये रानियाँ उनके गिर्द फिर विविध आकार के तकिए रख कर उनको आराम पहुँचाने की चेष्टा करतीं। घंटों महाराजा को आराम से बैठालने और लिटाने का यह खेल होता रहा।

जब महाराजा निश्चित होकर पलँग पर जम गये और तकियों का बिखरना बहुत कुछ बन्द हो गया, तब रानियों ने अपने विविध वाद्य यंत्रों को उठाया, किसी ने वीणा किसी ने सितार, किसी ने मंजीरा लिया और मधुर ध्वनि के साथ गान आरम्भ हुआ। खवासों ने मोरछलें उठाईं और उसे महाराजा के गिर्द घुमाना शुरू किया। बारी बारी से प्रत्येक रानी ने पलँग के नीचे फ़र्श पर उतर कर नृत्य किया, और नृत्य करते हुए बार बार महाराजा के चरणों को अपने हाथों से स्पर्श करके अपने हाथों को अपने मस्तक पर लगाया। बारी बारी से रानियों और खवासों ने उनके चरणों को दबाया और उनके गिर्द चँवर डुलाया।

देवता का पूजन और अर्चन रानियों के नित्य का काम था। पत्थर के देवता को वे घंटों रिझाने की चेष्टाएँ किया करती थीं। उन्हें अनुभव हो रहा था। जैसे उनके बीच में वही पत्थर का देवता मानव वेष धर कर प्रगट हुआ हो। उसके अर्चन, पूजन के लिए

वे और भी मनोयोग से संलग्न थीं। महाराजा ने बार बार प्रत्येक रानी के मस्तक पर अपना हाथ फेरा, बार बार प्रत्येक रानी को अपने अत्यधिक निकट खींचने की चेष्टा की। बार बार प्रत्येक रानी के हृदय में यह बात बैठाने की कोशिश की कि वे उसी को सबसे अधिक प्यार करते हैं। इस प्रकार घंटों रानियाँ महाराजा के पूजन अर्चन में लगी रहीं और महाराजा के प्रेम पूर्ण स्पर्श का प्रसाद पाकर पुलकित होती रहीं।

जब यह काण्ड भी समाप्त हुआ तब उन सबों ने हाथ जोड़ कर मस्तक झुका कर महाराजा से कुशल क्षेम पूछा और उनसे अनुनय विनय की कि महाराजा इसी प्रकार कभी-कभी रनिवास में पधारा करें। उस समय महाराजा को यह जान पड़ रहा था, जैसे वे इस लोक में नहीं हैं। वे उस सिंहासन पर विराजमान हैं, जो मनुष्य को अत्यन्त तप करने पर स्वर्ग लोक में मिलता है। उन्हें जान पड़ा। जैसे वे इस दु:ख-सुख-मय संसार को यहीं छोड़ कर इन्द्रलोक की यात्रा कर रहे हैं। और ये रानियाँ वास्तव में इन्द्र की परियाँ हैं, जो उनके सिंहासन को इन्द्रलोक की ओर उड़ाए लिए चली जा रही हैं। उस समय महाराजा बहुत प्रसन्न थे। उनका वह आनन्द वास्तविक था।

रानियों के बीच में बैठे हुए महाराजा ने अनुभव किया कि उनका अब तक का जीवन कृत्रिम और नशे का जीवन था। सौंदर्य और विलास की इस गंगा को छोड़ कर वे वासना के गंदे नाबदान में डुबकी लगा रहे थे। उन्होंने सोचना शुरू किया कि उनका अध:पतन क्यों और कैसे हो गया? वे जितना ही सोचते, उनके मस्तिष्क में यह बात स्पष्ट होती जाती कि इस अध:पतन का कारण बीहड़ राज्य की मौजूदा शासन प्रणाली ही है। जब तक यह प्रणाली बनी रहेगी, उनके लिए सिवाय वासना के गर्त में पड़े रहने के और कोई काम नहीं रहेगा। परिश्रम में लगा हुआ

मनुष्य ही देवता है। बेकार बैठा हुआ मनुष्य ही राक्षस है। जब मनुष्य बेकार होगा, उसके सामने कोई ध्येय न होगा तब उसमें राक्षसी भाव प्रगट होंगे और उसका सर्वनाश करके ही दम लेंगे।

रानियों के बीच में बैठे-बैठे महाराजा ने सोचना शुरू किया कि आखिर यह शासन व्यवस्था कैसे बदली जा सकती है। अपने जीवन को वे अपनी प्रजा के लिए उपयोगी कैसे बना सकते हैं। राजा और प्रजा के बीच में जो असंतोष की गहरी खाई खुद गई है वह कैसे पट सकती है। प्रजा के हृदय में उनकी ओर से जो अविश्वास पैदा हो गया है वह कैसे दूर किया जा सकता है। प्रजामण्डल का आन्दोलन और उसके कुचलने की, कर्मचारियों के प्रयत्न की डरावनी तसवीर उनके दिल में खिंच गई। उन्हें जान पड़ा, जैसे कि जब तक राजा प्रजा का यह द्वन्द्व चलता रहेगा तब तक रियासत के अन्दर किसी को सुख नहीं मिल सकता। लेकिन वे क्या करें? वे असमर्थ हैं। वे अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकते। जो उन अधिकारों के प्रयोग करने के जिम्मेदार हैं वे अपनी जिम्मेदारी को समझते नहीं। ओफ़! महाराजा और भी सोच में पड़ गये और उनका चित्त रनिवास से निकलकर न जाने कहाँ कहाँ भटकने लगा।

अन्त में उनका यह मनोभाव रानियों से छिपा नहीं रहा। तत्काल उन्होंने महाराजा से प्रश्न करना शुरू कर दिया—हमारे प्रियतम! आप क्यों उदास हैं? आपको किस बात की कमी है? आपके जीवन में क्या अभाव है? हम सब आपकी दासियाँ हैं, अपने जी का हाल हमसे कहिए, और कुछ नहीं कर सकतीं तो आपके दुःख से दुखी होकर हम उसको हलका तो कर ही सकती हैं।

महाराजा ने इस साढ़े पाँच वर्ष के वियोग में जो-जो

घटनाएँ रियासत में हुई थीं उनको संक्षेप में रानियों से कह सुनाया और अन्त में अत्यन्त उदास होकर कहा—इधर राज्य में अकाल पड़ा है; लगान वसूल नहीं होता। उधर ब्रिटिश सरकार के बड़े बड़े अफ़सर रियासत में आने के लिए आमन्त्रित किए गये हैं। बीस लाख रुपये का बजट है। मैंने प्रजा में यह घोषित कर दिया है कि इस वर्ष का लगान किसी से वसूल नहीं किया जायेगा।

रानियों ने एक स्वर में कहा—श्रीमान्, आपने यह बहुत अच्छा किया। सरकार! आपने बहुत अच्छा किया। प्रियतम! आपने बहुत अच्छा किया।

"यह सब तो ठीक है। लेकिन मेरी प्राण प्यारियो! जरूरत का धन कहाँ से आवेगा। रियासत पर पिछला कर्जा ही इतना अधिक चढ़ गया है कि उसके देने की अब तक नौबत नहीं आई। नया कर्जा लिया जाय तो किससे? बीहड़ ऐसी दीवालिया रियासत को शायद ही कोई कर्जा देने के लिए तैयार हो।"

रानियों ने क्षण भर के लिए एक दूसरे की ओर देखा और उसके बाद बड़ी महारानी ने कहा—महाराजा हमारे ये रत्न-भूषण किस काम आवेंगे? आखिर प्रजा के ही दिए हुए तो हैं। यदि हमारे पास रत्नाभूषण रहते हुए प्रजा को दुख हुआ और आपका मन चिन्तित रहा तो ये रत्न, रत्न काहे के? तो ये भूषण, भूषण काहे के।

महाराजा ने विस्मय भरी दृष्टि से बड़ी महारानी की ओर देखा और कहा—राज्य कोष के लिए अपने रत्नाभूषण आप दे सकती हैं?"

"क्यों नहीं महाराजा!" यह कहते हुए बड़ी महारानी ने अपने गले का बहुमूल्य रत्न-हार उतार कर महाराजा के चरणों के निकट रख दिया।

महाराजा ने उसे उठाया। उसकी एक-एक गुरिया को ध्यान से देखा और उसको बड़ी महारानी के गले में फिर डाल दिया।

"नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। यह तो तुम्हारे पिता का धन है। यह बीहड़ का हार नहीं है। बीहड़ नरेश ने तुम्हें सिवाय दुःख के और कुछ नहीं दिया। तुम्हारे पिता का दिया हुआ हार मुझे लेने का अधिकार नहीं है।"

"महारानी ने अपने रत्न-हार को गले से उतारते हुए फिर कर जोड़ कर महाराजा से प्रार्थना की—"महाराज यदि आप बने रहेंगे, आपका चित्त स्वस्थ्य रहेगा तो ऐसे अनेक हार मुझको पहनने को मिलेंगे। आप इसे स्वीकार करें और प्रजा के काम में इसे लगावें। इससे बढ़कर इसका उपयोग और नहीं हो सकता। यदि यह प्रजा का दुःख दूर नहीं कर सकता तो इसका नाम रत्नहार कदापि नहीं हो सकता। तब यह विष की गुरियों का माला हो जायेगा और मेरे गले को घोंट देगा।"

महारानी की वाणी में इतनी विनय और इतनी शक्ति थी और उनके तर्क ऐसे ज़ोरदार थे कि महाराजा उनकी उपेक्षा न कर सके। उन्होंने इस हार को अपने दोनों हाथों में ले लिया।

बड़ी महारानी की भेंट जैसे ही महाराजा ने स्वीकार की, वैसे ही सब रानियाँ अपने-अपने रत्नाभूषण उतार-उतार कर उनके चरणों के निकट रखने लगीं। और पलँग पर बहुमूल्य भूषणों और हारों का एक खासा ढेर लग गया।

इस अपार संपत्ति को पाकर महाराजा की चिन्ता दूर हो गई और रानियाँ अति प्रसन्न हो उठीं। आभूषणों के उतार देने के बाद उन्हें ऐसा जान पड़ा कि जैसे वे एक बड़ी भारी चिन्ता से सदैव के लिये मुक्त हो गई हों। उनका शरीर और उनका हृदय बहुत कुछ हल्का हो गया और उन्हें गतिमान

जान पड़ा। उनके हृदय से एक बड़ा बोझ जैसे उतर गया। उनके चन्द्रमुख पर सोने चाँदी के जो बादल छाये हुये थे, जैसे उनके हट जाने से उनका सौन्दर्य अत्यधिक निखर आया।

२०

तात्कालिक संकट टल जाने के बाद रियासत के कर्मचारी फिर उग्र हो गये और महाराजा अपने रास-रङ्ग में फिर पड़ गये। रियासत का काम फिर पूर्ववत् चलने लगा। इधर रोक हट जाने से प्रजामण्डल का संगठन भी जारी रहा। गाँव गाँव में प्रजामण्डल के छोटे छोटे दफ़्तर खुल गये, और उनकी ओर से रचनात्मक कार्य प्रारम्भ हुए। रियासत के कर्मचारियों की ओर से प्रजा पर किए गये अन्यायों की सूचना प्रजामण्डल के करीब के दफ़्तर में पहुँचती थी और वहाँ से प्रजामण्डल के प्रधान कार्यालय बीहड़ में पहुँचती थी। बीहड़ के प्रधान कार्यालय से विविध शिकायतों की सूचियाँ बनकर दीवान साहब के सामने जाँच के लिए उपस्थित होती थीं और उनको राज्य कर्मचारियों द्वारा इन शिकायतों की जाँच करवानी पड़ती थी और उनका समुचित परिशोध करना पड़ता था; लेकिन यह सब काम रियासत के कर्मचारी बड़ी अनिच्छा से करते थे।

यद्यपि प्रजामण्डल वास्तव में निर्दोष संस्था थी और वह राज्य प्रबन्ध में दीवान साहब की सहायक ही हो रही थी तथापि यह संस्था दीवान साहब की निगाह में बराबर खटकती रही। अन्दर ही अन्दर वे राज्य कर्मचारियों के नाम बराबर सरकूलर जारी

करते रहे कि इसको प्रोत्साहन न मिलने पावे और इस बात की कोशिश की जाय कि लोग कम से कम सदस्य बनें। उधर महाराजा ने फिर बैताल डाल पर की कहावत चरितार्थ की। अन्दर से तो वे बहुत चाहते थे कि वे एक आदर्श शासक बनें, अपना सारा समय प्रजा के हित-चिन्तन में ही लगावें। लेकिन आलस्य और गन्दे विनोदों में समय व्यतीत करने की उन्हें आदत पड़ गई थी। अपनी इच्छा शक्ति से कुछ क्षण और कुछ मिनटों के लिए, तो वे अपनी इन निन्द्य प्रवृतियों के ऊपर उठ जाते थे परन्तु अन्त में वे उन्हें फिर दबा लेती थीं। इसलिए इन प्रवृतियों की ओर से उन्हें जो वैराग्य हुआ था, वह क्षणिक ही सिद्ध हुआ।

इस बीच में महाराजा साहब से बाबा बजरंगी को मिलने का अवसर नहीं मिला था। नित्य नियम के अनुसार दीवान दिग्विजय सिंह चार बजे शाम को किले के दफ़्तर में पहुँचते थे और वहीं महाराजा से उनकी बातें हुआ करती थीं। दीवान साहब प्रजामण्डल के विरुद्ध महाराजा के बराबर कान भरते रहे। उनसे यह कहते रहे कि प्रजामण्डल वाले राज्य सत्ता को उखाड़ कर बीहड़ राज्य के अन्दर प्रजातंत्र राज्य कायम करना चाहते हैं। इससे कम में उनको संतोष नहीं हो सकता। वे हमारे हर काम में दखल देते हैं। पुलिस को अपराधियों को पकड़ने नहीं देते। राज्य के कर्मचारियों को कर्त्तव्य का पालन करने नहीं देते। ज़रा-ज़रा सी बात की शिकायत करके भेजते हैं।

दीवान साहब महाराजा साहब से इस बात पर ज़ोर भी देते कि यदि प्रजामण्डल वालों की शिकायतें इसी तरह बराबर सुनी गईं, तो रियासत में अँग्रेज़ी सरकार के प्रधान अफ़सरों का धूम-धाम से स्वागत नहीं हो सकता, जैसा कि हुआ करता था। पहले यह था कि सरकारी काम के लिए हम चाहे जितने मज़दूर पकड़ लेते थे। परन्तु अब मज़दूरी देने पर भी मज़दूर नहीं मिलते।

विशेष अवसरों पर हमेशा मज़दूर बेगारी में धरे जाते रहे हैं। इसके बग़ैर बड़े-बड़े काम हो ही नहीं सकते।

महाराजा साहब दीवान साहब की बातों को ध्यान से सुनते; लेकिन कुछ कहते नहीं। मन ही मन वे इन बातों पर ग़ौर करते। उन्हें यह पसंद न था कि प्रजा और राजा में संघर्ष बढ़े और उनको उस तरह के दृश्य देखने पड़ें जैसे कि वे किले के नीचे, बीहड़ेश्वर के मंदिर के सामने देख चुके थे। वे इस तरह की घटनाओं को फिर से होने देना भी नहीं पसंद करते थे जैसी कि विक्रमपुर में घटी थीं।

उन दिनों बीहड़ राज्य की राजनैतिक परिस्थिति यह थी। विक्रमपुर के सरदार अभयराज सिंह पर बीहड़ राज्य के विरुद्ध बगावत करने का मुकदमा चल रहा था। सरदार अभयराज सिंह का मुकदमा छोटी अदालतों से होता हुआ बड़ी अदालत में पहुँचा। सर्वत्र ही वे राजद्रोह के गुरुतर अपराधी समझे गये और अन्त में बीहड़ की सब से बड़ी अदालत से उन्हें फाँसी की सज़ा सुना दी गई।

सरदार अभयराज सिंह की फाँसी की सज़ा का समाचार सारे बीहड़ में बिजली की तरह फैल गया। गाँव-गाँव में सरदार अभयराज सिंह के इस दंड के विरोध में सभायें हुईं, और बीहड़ नगर में बीहड़ेश्वर के मंदिर के सामने बीहड़ के नागरिकों की बड़ी जबरदस्त सभा हुई जिसमें बीहड़ के किसान और मज़दूर ही नहीं, बड़े-बड़े व्यापारी और सरदार भी शामिल हुए। इन सब सभाओं में सिर्फ़ एक ही प्रस्ताव पास हुआ। उसका आशय यह था कि बीहड़ की प्रजा सरदार अभयराज सिंह को निर्दोष समझती है, और महाराजा से प्रार्थना करती है, कि वे उन्हें अपने विशेषाधिकार से क्षमा प्रदान करें। बीहड़ की बड़ी अदालत के फ़ैसले के विरुद्ध अगर

कुछ हो सकता था तो यही कि बीहड़ के महाराजा साहब उनके अपराध को माफ कर दें। प्राण दण्ड पाये हुए लोगों की ओर से प्राण रक्षा का यही अंतिम उपाय था। बीहड़ के इतिहास में ऐसी घटनाएँ हुई थीं। कितने ही गुरुतर अपराधी भी मुक्त कर दिये गये थे। लेकिन सरदार अभयराज का मामला दूसरा था। राज्य के कर्मचारी यह नहीं चाहते थे कि वे किसी प्रकार छूटने पावें; क्योंकि राज्य के कर्मचारी खासकर दीवान दिग्विजय सिंह यह सोचते थे कि अभयराज सिंह छूट जायेंगे तो उनकी बड़ी हेठी होगी। और फिर किसी प्रकार दीवान के पद पर वे आरूढ़ नहीं रह सकेंगे।

इधर प्रजा की ओर से महाराजा के पास सिफ़ारिशें पहुँच रही थीं कि सरदार अभयराज सिंह छोड़ दिए जायँ। उधर दीवान दिग्विजय सिंह रियासत के समस्त उच्च पदाधिकारियों की ओर से इस्तीफे लिखवा रहे थे कि यदि सरदार अभयराज सिंह छोड़ दिए गये तो वे सब एक साथ हड़ताल कर देंगे; क्यों कि तब राज्य सत्ता का कोई अर्थ ही नहीं रह जायगा।

बाबा बजरंगी ने महाराजा साहब से स्वयं मुलाक़ात की और उनसे कहा कि सरदार अभयराज सिंह को छोड़ देना बीहड़ के लिए बड़ा ही कल्याणकारी सिद्ध होगा। महाराजा बाबा बजरंगी से बड़े ही प्रेम के साथ मिले, बड़े प्रेम से उन्होंने बाबा बजरंगी की बातें सुनीं। महाराजा के दिल में सरदार अभयराज सिंह के प्रति जो रोष का भाव था वह अब भी बना हुआ था, तथापि बाबा बजरंगी का तर्क उनके लिए अकाट्य था। वे सोच रहे थे कि इससे प्रजा के दिल में उनका आदर बढ़ेगा और उनका यह काम बड़ा ही प्रशंसनीय समझा जायगा। लेकिन उनके सामने दूसरी कठिनाई भी थी और यह कठिनाई बड़ी जबरदस्त थी। सरदार अभयराज सिंह के छोड़ने का यह अर्थ था, कि उसी समय राज्य के समस्त उच्च पदाधिकारी रियासत से अलग हो जा सकते थे और उन अधिकारियों का प्रभाव ब्रिटिश सरकार पर भी था। यह भी हो सकता था कि महाराजा को सिर्फ़ इसी कारण गद्दी छोड़नी पड़ जाय। महाराजा ने दूसरा पहलू भी बाबा बजरंगी के सामने उपस्थित किया और उनसे अपनी असमर्थता प्रगट की। बाबा बजरंगी ने अन्त में महाराजा से कहा—जो शासन व्यवस्था सरदार अभयराज सिंह जैसे वीर और परोपकारी सरदार को मुआफ़ नहीं कर सकती। वह शासन व्यवस्था प्रजामंडल को कदापि मंजूर नहीं हो सकती। ऐसी शासन व्यवस्था आपको बदलनी ही पड़ेगी और यही बेहतर होगा कि आप सब के इस्तीफ़े स्वीकार करलें और नये सिरे से नये कर्मचारी नियुक्त करें।

"मुझे कोई आपत्ति नहीं हैं; बशर्ते कि ब्रिटिश सरकार इससे अपनी सहमति प्रगट कर दे।"

लेकिन ब्रिटिश सरकार पर दीवान दिग्विजय सिंह का प्रभाव ज्यादा था। महाराजा ने बाबा बजरंगी से साफ़-साफ़ बता दिया कि वे उनकी राय के अनुकूल काम करने में असमर्थ हैं। बाबा बजरंगी चुपचाप, उदास मन वहाँ से वापस चले आए।

जनता को जैसे पहले ही से यह निश्चय हो गया था कि महाराजा बाबा बजरंगी की बात नहीं सुनेंगे। और सरदार अभयराज सिंह को फाँसी हो ही जायेगी। जनता के दिल में खास कर विक्रमपुर वालों में बड़ी उत्तेजना फैली हुई थी। कितने ही उत्तेजित व्यक्ति सरदार अभयराज सिंह की फाँसी का कारण बाबा बजरंगी को ही ठहराते थे। वे कहते थे कि वे रियासत के कर्मचारियों से मिल गए हैं। बीहड़ेश्वर के मन्दिर पर जो सभा हुई थी उसमें विक्रमपुर वालों ने बाबा बजरंगी के विरुद्ध इसी प्रकार के प्रदर्शन किए। बजरंगी के विरुद्ध इस प्रदर्शन का

दीवान साहब ने स्वागत किया। इससे उन्हें बजरंगी की सत्ता घटती हुई जान पड़ी।

जिस समय विक्रमपुर से यह जलूस चला, इसकी सूचना बीहड़ राज्य की फ़ौज और पुलिस को दी गई और उनसे तैयार रहने के लिए कहा गया। दीवान दिग्विजय सिंह ने तत्काल ही महाराजा से आज्ञा माँगी कि लाठी चार्ज करके यह जलूस तितर-बितर कर दिया जाय। उनका ख़याल था कि इससे जनता के हृदय में बजरंगी के प्रति और भी असंतोष बढ़ेगा।

लेकिन बाबा बजरंगी ने महाराजा से प्रार्थना की थी कि उनके विरुद्ध प्रदर्शन न रोका जाय। महाराजा को बाबा बजरंगी की राय मुनासिब जान पड़ी और उन्होंने दीवान साहब से प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा कहलवाया कि फ़ौजें और पुलिस जगह-जगह वक्त ज़रूरत के लिए तैयार रहें। लेकिन प्रदर्शनकारियों से किसी प्रकार की छेड़ छाड़ न की जाय। जो कुछ भी वे करते हैं उनको करने दिया जाय।

वे बड़े-बड़े काले झण्डे लेकर मस्ती से गाते हुए बीहड़ राज्य के कर्मचारियों के विरुद्ध, महाराजा के विरुद्ध, दीवान दिग्विजय सिंह के विरुद्ध और बाबा बजरंगी के विरुद्ध नारे लगाते हुए आगे बढ़ रहे थे। उन्हें किसी ने नहीं रोका। बीहड़ेश्वर के मन्दिर की सभा में जब वे पहुँचे तब चपला ने इन लोगों को समझाने की चेष्टा की कि वे बाबा बजरंगी के विरुद्ध नारे न लगावें; क्योंकि वह जानती थी कि इसमें बाबा बजरंगी का दोष नहीं है। लेकिन वे लोग नहीं माने।

बाबा बजरंगी ने पाकड़ के वृक्ष के नीचे अपना आश्रम फिर खड़ा कर लिया था। जब विक्रमपुर के लोग उनके विरुद्ध नारे लगाते हुये उस रास्ते से निकल रहे थे, तब वे आश्रम में मौजूद थे। दीवान दिग्विजय सिंह ने उनसे पुछवाया था कि यदि

बाबा बजरंगी को अपनी आश्रम की रक्षा के लिए कुछ पुलिस की आवश्यकता हो तो भेजवा दूँ। लेकिन बाबा बजरंगी ने उनकी सहायता को नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था। उस समय भुवनमोहिनी भी बाबा बजरंगी के पास ही बैठी थी। और उनके साथ उसी सभा में जाने की तैयारी कर रही थी।

ज्योंही बाबा बजरंगी सभा के निकट दिखलाई पड़े, कुछ लोगों ने शर्म-शर्म के नारे लगाये। उसके साथ ही बाबा बजरंगी की जय की भी ध्वनि सुन पड़ी। लेकिन बाबा बजरंगी गंभीर मुख किए, मस्तक झुकाए दृढ़ता पूर्वक आगे की ओर निर्भीक बढ़ते ही चले गये। उनके बराबर ही भुवनमोहिनी चल रही थी। और वह भी उसी तरह क़दम ब क़दम बढ़ती गई। जिन लोगों के मुख पर बाबा बजरंगी के विरुद्ध रोष के नारे थे, उनके हृदयों में भी उनके लिए प्रेम था, वैसे ही जैसे बर्फ़ से ढकी हुई नदी के नीचे पानी की तरल धार बहती रहती है। लोगों ने उनको रास्ता दे दिया और वे उसी प्रकार नत-मस्तक बढ़ते हुए मंच तक पहुँच गये। चपला वहाँ पहले ही से विद्यमान थी। चपला ने बाबा बजरंगी का अभिवादन किया और उन्हें सभापति के आसन पर बैठाला।

इसके पहले कि और कोई बोलने के लिए खड़ा हो, बाबा बजरंगी स्वयं अपनी सफाई देने के लिए खड़े हो गये। जब बाबा बजरंगी खड़े हुए तब चारों ओर से "बैठ जाओ, बैठ जाओ शर्म! शर्म!" की आवाज़ें आईं। उनके ऊपर जूता तक फेंका गया, लेकिन वे ज्यों के त्यों खड़े रहे। दृढ़ता पूर्वक बोलते चले गये। पहले जिनके कानों में उनकी आवाज़ पड़ी वे शान्त हुए फिर दूर की जनता खामोश हुई। अन्त में उनकी हृदय से निकली हुई बातों का प्रभाव इस तरह फैला की सारी जनता मंत्रमुग्ध की तरह उनकी बात सुनने लगी। कोई तीन घंटा तक बाबा बजरंगी

इस सभा में खड़े हुए बोलते रहे। उनके मुँह से सब से अन्त में जो वाक्य निकले थे वे इस प्रकार थे—

"बीहड़ राज्य के प्यारे निवासियो! मैं स्वीकार करता हूँ, कि सरदार अभयराज सिंह की फाँसी का कारण मैं हूँ। उन्होंने मेरे ही कहने से आत्मसमर्पण किया था। मुझे विश्वास है कि वे फाँसी के तख्ते पर भी उसी भाँति प्रभु को धन्यवाद देते हुए भूल जाएँगे। मुझे विश्वास है कि उनका यह आत्म बलिदान व्यर्थ नहीं जायगा। यह बलिदान सार्थक तभी हो सकता है जब हम बीहड़ राज्य की वर्तमान शासन व्यवस्था को बदल दें। और यह शासन व्यवस्था बदलने के लिए यह जरूरी है कि जैसे निर्मल अन्तःकरण से, मन में कोई द्वेष का भाव न रख कर, सरदार अभयराज सिंह ने आत्मसमर्पण किया है और फाँसी पर चढ़ने जा रहे हैं, उसी निर्मल भावना से, उसी प्रेम से, उसी अहिंसा से हम आप भी वैसा ही करें। यदि ऐसे अवसर पर हम बजाय विवेक के क्रोध से काम लेते हैं तो मानों हम अपने एक वीर सरदार का, जो हमारे आप के लिए फाँसी पर चढ़ रहा है, समुचित आदर नहीं करते हैं। मैं आप लोगों के सामने हाजिर हूँ। जो मुनासिब दंड समझें, दें। सरदार अभयराज सिंह की मृत्यु के बाद मैं स्वयं सोचता हूँ कि जिन्दा रह सकता हूँ या नहीं। कोई भी प्रायश्चित जो आप कहें मैं करने के लिए तैयार हूँ। या आप मेरे ही पर छोड़ दें। मैं स्वयं ही इसका कोई प्रायश्चित करूँगा। लेकिन आप इस तरह का कोई न काम करें जिससे प्रजामंडल के कार्य में बाधा उपस्थित हो।"

बाबा बजरंगी ने अपने तीन घंटे के इस भाषण से अपने हृदय को वहाँ उपस्थित जनता की भीड़ में इस तरह उँडेल दिया कि सब को यह विश्वास हो गया कि सरदार अभयराज सिंह की फाँसी की सज़ा में बाबा बजरंगी का या महाराजा का

उतना दोष नहीं है, जितना कि दीवान और अन्य राज्य कर्मचारियों का। इस भाषण के दौरान में बाबा बजरंगी ने न तो महाराजा के प्रति, न रियासत के कर्मचारियों के प्रति कोई बात कही थी। उन्होंने सिर्फ़ इतना ही कहा था कि महाराजा अभयराज सिंह को मुक्त कर देने के लिए तैयार हैं। लेकिन उनके हाथ बँधे हैं। उनका हाथ तभी खुल सकता है, जब हम प्रजामंडल को दृढ़ करें।

इधर यह सभा हो रही थी उधर रियासत की जेल में अभयराज सिंह को फाँसी लगाने की तैयारियाँ हो रही थीं। चपला सभा में बैठी थी। वह बराबर वहाँ गुमसुम बैठी रही। चपला और बाबा बजरंगी में फ़र्क था। बाबा बजरंगी अपने प्रिय मित्र का यह बलिदान झेल जाना चाहते थे और चपला उनको उचित या अनुचित चाहे जिस प्रकार से हो छुड़ाना चाहती थी। वहाँ बैठी-बैठी, वह बराबर यही सोचती रही कि क्या उपाय करूँ कि सरदार अभयराज सिंह के प्राणों की रक्षा हो, और वे रियासत की जेल से बाहर निकल आवें।

यदि यह सम्भव न हो सका तो वह ज़रूर इसके पहले कि उनको फाँसी लगे, महाराजा को क़त्ल कर देगी। उसके इसी वादे पर सरदार ने आत्मसमर्पण किया था। वह अपना वादा पूरा करेगी।

२१

महाराजा विष्णुदेव सिंह को जब यह मालूम हुआ कि राज्य के कर्मचारियों की ओर से महेशानन्द शास्त्री के ऊपर अमानुषिक अत्याचार हुआ है, तब वे बड़े दुखी हुए।

जिस क्षण उन्होंने यह समाचार सुना उसी क्षण उन्होंने इस मामले की जाँच का फ़रमान जारी किया। इतने ही से उनको संतोष न हुआ; क्योंकि शास्त्री जी पर अत्याचार के कारण स्वयं वे ही थे। अपने आप पर वे अत्यन्त लज्जित हुए और उसी क्षण महेशानन्द शास्त्री से क्षमा-प्रार्थना के इरादे से वे शिवलोक को गये।

शिवलोक खाली पड़ा था। महेशानन्द शास्त्री के दो एक विश्वासी नौकरों के सिवा और वहाँ कोई न था। महाराजा ने उनसे हजार पूछा कि शास्त्री जी कहाँ हैं? लेकिन उन नौकरों ने शास्त्री जी का कोई पता नहीं दिया।

उदास मन महाराजा अपने क़िले को लौट आये। उन्हें संतोष था कि पवाई की प्रथा उठ गई थी। अपने आप पर उन्हें बड़ा क्रोध आ रहा था कि उन्होंने अपने गुरु की यह दुर्दशा क्यों करवाई। उनके हृदय में भुवनमोहिनी की वह छवि अंकित हो उठी, जो उन्होंने बीहड़ेश्वर के मन्दिर के बाहर के मैदान में प्रजामण्डल की प्रथम बैठक के समय देखी थी। कितना अद्‌भुत उसका सौन्दर्य था और कैसी दृढ़ उसकी चितवन थी। ऐसी नारी क्या भय से या धन के प्रलोभन से या राज सत्ता के जोर से जीती जा सकती है? कदापि नहीं। ओफ़! उनसे यह भूल क्यों हुई। जितना ही इन सब बातों पर वे ग़ौर करते उतना ही वे दुखी होते। राजसत्ता के नशे में उन्होंने क्या-क्या अनर्थ कर डाला? विधि ने शक्ति उन्हें इसलिए दी थी कि वे प्रजा का पालन करें। उस शक्ति को उन्होंने अपनी प्रजा को दुखी बनाने में लगाया। उनका अन्तः करण पश्चात्ताप से जला जा रहा था। और बराबर इसी एक अभिलाषा के समुद्र में वे डूब उतरा रहे थे, कि किसी प्रकार महेशानन्द शास्त्री से उनकी भेंट हो जाय और उनसे वे अपने गुरुतर अपराध के लिए माफ़ी

माँगे। किले में पहुँचने के बाद ही उन्होंने सी० आई० डी० महकमा के ख़ास ख़ास अफ़सरों को बुलवाया और उनसे शास्त्री जी के बारे में पूछा। उन्हें मालूम हुआ कि महेशानन्द शास्त्री विक्रमपुर के घेरे के दो दिन पहले ही से वहाँ चले गये थे और शायद विक्रमपुर के राज्य गुरु के यहाँ रह रहे हैं।

महाराजा विक्रमपुर जाने का साहस न कर सके। वे जानते थे कि विक्रमपुर के निवासियों के दिल में सरदार अभयराज सिंह की फाँसी की सज़ा के समाचार से कितना असंतोष है। यद्यपि अभयराज सिंह से उनसे गहरा मनोमालिन्य था तथापि वे अभयराज सिंह को क्षमा करने के लिए तैयार थे। लेकिन उन्हें अपने कर्मचारियों से बड़ा भय था। एक प्रकार से वे अपने कर्मचारियों के, खासकर दीवान साहब के कैदी थे। जो वे चाहते थे उनको उसे करने के लिए विवश होना पड़ता था। महाराजा उदास और दुखी मन अपने ख़ास दफ़्तर में बैठे अपने इसी दयनीय स्थिति पर ग़ौर करते रहे।

दीवान से इस प्रकार दबने का कारण था उनकी बुरी और गन्दी आदतें। यही एक उनकी कमज़ोरी थी जिसका भंडाफोड़ कर देने की धमकी देकर दीवान साहब जो चाहते थे करा लेते थे।

"मैं क्यों न अपनी इन कमज़ोरियों को मंजूर कर लूँ। अपने जीवन के काले पृष्ठों को खोल कर प्रजा के सामने रख दूँ और उसी से निवेदन करूँ कि वह मुझको क्षमा कर दे।"

महाराजा ने सोचा कि दीवान से रक्षा पाने का यही एक उपाय है। महाराजा इसी चिन्तन में लीन थे। उन्होंने मन ही मन कहा—नालायक दीवान के हाथों की कटपुतली बने रहने से अपने आपको प्रजा की मर्जी पर छोड़ देना अच्छा है।

महाराजा के सी० आई० डी० महकमा के प्रधान कर्मचारी भी दीवान के इशारे पर चलने वाले जीव थे। इसलिए महाराजा ने अपने मन की सारी बातें उनसे नहीं बतलाई थीं। उन्होंने उनसे सिर्फ यही पूछा था कि वे महेशानन्द शास्त्री के बारे में जानना चाहते हैं कि वे कहाँ हैं और कैसे उनसे भेंट हो सकती है? उन कर्मचारियों ने महाराजा को बतलाया कि सब से सरल उपाय यही है कि बैरिस्टर मदनगोपाल के ज़रिए उनको क़िले में बुलवा भेजें।

महाराजा को यह सलाह पसन्द आई और इसीलिए उन्होंने बैरिस्टर मदनगोपाल को शास्त्री जी को बुलाने के लिए भेजा। लेकिन महेशानन्द शास्त्री ने आना बिलकुल अस्वीकार कर दिया। वे महाराजा के षड्यंत्र और जाल से निकल चुके थे और अब फिर किसी प्रकार उसमें फँसने के लिये तैयार न थे।

तब महाराजा अपने अंग रक्षकों के साथ स्वयं विक्रमपुर के लिए रवाना हुए और अपने साथ बैरिस्टर मदन गोपाल को भी लेते गये।

आगे-आगे महाराजा के अंग रक्षकों की मोटर थी। बीच में स्वयं महाराजा की मोटर थी और उन मोटर कारों के पीछे उनके प्राइवेट सेक्रेटरी और उनके स्नेही मित्र की मोटरें थीं। शास्त्री जी को मनाने के लिए पूरा काफ़िला ही किले से चला था।

ज्योंही ये कारें विक्रमपुर के प्रधान फाटक पर पहुँची, शर्म-शर्म की आवाज़ें उठने लगीं और महाराजा के बायकाट के नारे लगने लगे। जान पड़ा, जैसे लोग पहले से उनका इस प्रकार अनादर करने के लिए तैयार थे।

इन नारों का कोई ख्याल न करते हुए, ये कारें विक्रमपुर के राजगुरु के द्वार पर जा लगीं।

यह सुन कर कि स्वयं महाराजा विष्णुदेव सिंह पधारे हैं, विक्रमपुर के राजगुरु अपने भव्य-भवन के फाटक पर निकल आये और उन्होंने कुश से महाराज पर गुलाब जल मिश्रित गंगा जल छिड़कते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया और उनका स्वागत किया। यह पहला अवसर था जब कि बीहड़ के महाराजा विक्रमपुर के राजगुरु के यहाँ पधारे थे। अपनी मोटर से उतरते हुए विक्रमपुर के राजगुरु को प्रणाम करने के बाद महाराजा ने कहा—मैं अपने राजगुरु महेशानन्द का दर्शन करना चाहता हूँ।

विक्रमपुर के राजगुरु महाराजा को महेशानन्द शास्त्री के कमरे में ले गये। शास्त्री जी उस समय बीहड़ेश्वर भगवान् की आराधना में लीन थे। आँख खुलते ही उन्होंने देखा कि उनके सामने महाराजा विष्णुदेव सिंह हाथ जोड़े, मस्तक झुकाए खड़े हुए हैं। महेशानन्द शास्त्री ने महाराजा को देखा। और बिना उनके अभिवादन का उत्तर दिए हुए कहा—श्रीमान् क्या आपको यहाँ आकर भी मेरा रहना सह्य नहीं हुआ, आखिर मेरे प्राणों के पीछे आप क्यों पड़े हैं?

महाराजा जहाँ खड़े थे, वहीं झुककर उन्होंने अपना मस्तक ज़मीन पर रख दिया और कहा—गुरुदेव क्षमा कीजिए। मेरी ओर से आपके प्रति जो अत्याचार हुए हैं वे सब नशे और बेहोशी की हालत में हुए हैं। इसका प्रायश्चित एक ही है कि मैं राज्य सिंहासन छोड़ दूँ। मैं इसके लिये तैयार हो गया हूँ। जब अपनी प्रजा के प्रति न्याय नहीं कर सकता, जब प्रजा का पालन और उसकी रक्षा नहीं कर सकता तब मैं इस सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं हूँ।

महाराजा के मुख से प्रायश्चित के ये वचन सुनकर महेशा-नन्द शास्त्री का क्रोध बहुत कुछ शान्त हो गया और उन्होंने

कहा—बीहड़ेश्वर आप पर कृपा करें ! आप में यह सद् बुद्धि सदैव बनी रहे। अपनी ओर से मैं आपको क्षमा करता हूँ।

"तो गुरुदेव अपने शिवलोक में चल कर फिर निवास करें और बीहड़ेश्वर महादेव का पूर्ववत् पूजन अर्चन का भार लें।"

"सोचूँगा।"

महाराजा ने फिर महेशानन्द शास्त्री के चरणों के निकट अपना मस्तक ज़मीन पर रख दिया और कहा—नहीं गुरुदेव ! इसी समय आपको चलना होगा। आपके कष्ट सहन का एक अच्छा परिणाम हुआ है। वह यह कि रियासत से पवाई की प्रथा हमेशा के लिए उठ गयी है और मैं वासना के नरक से बहुत कुछ निकल आया हूँ।

महाराजा की विनय को महेशानन्द शास्त्री अस्वीकार न कर सके। उसी समय अपने परिवार के साथ वे शिवलोक के लिए रवाना हो गये। उनके साथ भुवनमोहिनी भी थी।

इसे इत्तिफ़ाक की ही बात समझनी चाहिए कि जब शास्त्री जी का परिवार शिवलोक के लिए रवाना हुआ तब भुवनमोहिनी और मदनगोपाल एक ही मोटर में साथ-साथ बैठे। रास्ता भर दोनों चुप-चाप रहे। मोटरकार जब ऊँची-नीची जगहों पर चलती और उसमें झटके लगने से दोनों के शरीरों का परस्पर स्पर्श हो जाता तब एक विचित्र गति से उनके हृदय धड़क उठते।

पिछले महीनों में जो घटनायें हुई थीं और जो कुछ सुना और देखा था उससे बैरिस्टर मदनगोपाल अपने आप इस निश्चय पर पहुँच गये थे कि भुवनमोहिनी सर्वथा निर्दोष है और उसके बग़ैर मैं जीवित नहीं रह सकता। इसके पहले जो वे विक्रमपुर के राजगुरु के निवास-स्थान पर गये थे और माधवी से शादी करने की फिर प्रतिज्ञा कर आए थे वह घटना उन्हें अपने निर्बल हृदय का एक क्षणिक आवेश मात्र जान पड़ी। उन्होंने मन ही मन तर्क किया कि वह प्रतिज्ञा स्वस्थ्य चित्त से नहीं की गई थी। माधवी के साथ शादी करने में मेरा और माधवी दोनों का अमङ्गल है। क्योंकि बिना वास्तविक प्रेम के वैवाहिक जीवन सुखी नहीं हो सकता। जब-जब ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलने से मोटर गाड़ी के धक्के से उनका शरीर भुवनमोहिनी के शरीर से छू जाता, तब-तब वे एक अनिर्वचनीय सुख के सागर में डूब जाते। रास्ते भर वे सोचते रहे कि भुवनमोहिनी से कुछ कहें; लेकिन क्या कहें यह वे नहीं तै कर सके। उन्होंने वास्तव में भुवनमोहिनी के साथ बड़ा अन्याय किया था। उन्हें जान पड़ा कि उनका प्रेम खरा नहीं उतरा। सच्चा प्रेम लोक-मर्यादा की परवा नहीं करता और उनका प्रेम लोक मर्यादा की सीमाओं में जकड़ा हुआ था।

मोटर आगे बढ़ती जा रही थी और वे बराबर यह सोचते जा रहे थे कि भुवनमोहिनी ही उनकी हृदयेश्वरी हो सकती है। वह कदापि पतित नहीं हो सकती। वे उसको नहीं छोड़ेंगे। वे उसी को अपने हृदय की स्वामिनी बनावेंगे।

शिवलोक में महेशानन्द शास्त्री के पहुँचने से उनके विश्वासी नौकरों ने आनन्द की सांस ली और उन सब को जान पड़ा कि जो कुछ हो गया है वह एक स्वप्न मात्र था और फिर इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। राज्य से पवाई की प्रथा उठ गई। युग-युग के लिए इस संकट मय प्रथा के शिकार होने से बीहड़ राज्य के निवासी बच गये।

उस दिन बैरिस्टर मदनगोपाल शिवलोक ही में रहे और अपनी भूल पर पछताते रहे और भुवनमोहिनी से बातें करने का अवसर निकालते रहे।

जब संध्या हुई तब महेशानन्द शास्त्री बीहड़ेश्वर की आरती के लिए रवाना हुए। भुवनमोहिनी अनेक चिन्ताओं में व्यस्त

थी; इसलिये उसने आरती में जाने से इनकार कर दिया। शास्त्री जी स्वयं अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ बीहड़ेश्वर के मन्दिर की ओर गये। बैरिस्टर मदनगोपाल भी शिवलोक में रह गये।

महेशानन्द शास्त्री ने जान बूझ कर अपनी पुत्री को बीहड़ेश्वर के मन्दिर में जाने के लिए जोर नहीं दिया था; क्योंकि वे सोचते थे कि बहुत संभव है कि इस प्रकार उनकी पुत्री और बैरिस्टर मदनगोपाल को एकान्त में बातें करने का मौका मिल जाय और दोनों में जो गलतफहमियाँ हो गई हैं वे दूर हो जायँ और उनकी शादी हो सके।

उस संध्या को जब घड़ियाल और नगाड़े बजे और महेशानन्द के पुत्र ने अपने हाथ में प्रज्वलित आरती को लेकर आकाश की ओर उठाया तब महेशानन्द शास्त्री और उनकी पत्नी दोनों ने मस्तक झुका कर बीहड़ेश्वर महादेव से यह प्रार्थना की कि हे भगवन् मेरे पुत्री के मार्ग के सब कंटक दूर करो और उसका बैरिस्टर मदनगोपाल से व्याह करा दो।

इधर शिवलोक में भुवनमोहिनी अपने अध्ययन के कमरे में बैठी हुई थी और उसके पास ही बैरिस्टर मदनगोपाल भी बैठे हुए थे। बड़ी मुश्किल से पूरी शक्ति लगा कर बैरिस्टर मदनगोपाल ने अपने काँपते हुए स्वर में कहा—भुवनमोहिनी मेरी एक बात मनोगी।

भुवनमोहिनी ने अपना सिर उठाया और बैरिस्टर मदनगोपाल की ओर देखा। उनके चेहरे पर प्रायश्चित की वास्तविक रेखायें खिंची हुई थीं। जिससे उनका मुख बड़ा ही दयनीय हो रहा था। भुवनमोहिनी को वे बड़े ही सुन्दर प्रतीत हुए। आह! यदि भुवनमोहिनी बैरिस्टर मदनगोपाल की बात सुन सकती।

उसी समय विक्रमपुर के राजगुरु की कन्या माधवी से की गई प्रतिज्ञा उसे स्मरण हो आई और वह सिहर उठी। उसकी

आँखों के कोनों से दो बड़े-बड़े मोती उसके हृदय की विवशता बन कर भूल पड़े।

बैरिस्टर मदनगोपाल को भुवनमोहिनी का यह मुखड़ा बहुत ही सुन्दर जान पड़ा। भुवनमोहिनी के मुख से इस मौन संकेत के सिवाय और कोई बात न निकल सकी। बैरिस्टर साहब अपने हृदय के आवेग को रोक न सके। उनके मन में आया कि तत्काल ही भुवनमोहिनी को अपनी बाहों में आबद्ध कर लें और उसके आँसू पोंछकर उसके अधरों पर एक गर्म चुम्बन अंकित कर दें। दूसरे ही क्षण अपने इन विचारों को वे कार्य का रूप देने लगे। उन्होंने अपनी बाँहों को फैलाया। उनकी बाँहों का स्पर्श पाकर भुवनमोहिनी क्षण भर के लिए किं कर्त्तव्य विमूढ़ सी हो गई। थोड़ी देर तक वह जहाँ की तहाँ बैठी रही और उसके बाद ही एका एक अपने शरीर को उसने दूर लेजाने का असफल प्रयत्न करती हुई। काँपती आवाज़ में बोली—बैरिस्टर साहब ! आप भी मेरी एक बात मानेंगे।

अपने बाहुपाश के बन्धन को और दृढ़ करने की चेष्टा करते हुए बैरिस्टर मदनगोपाल ने कहा—कहो ! ज़रूर मानूँगा।

"मुझे भूल जाइए।"

बैरिस्टर मदन को जान पड़ा जैसे स्वर्ग लोक की अंतिम सीढ़ी तक पहुँच चुकने के बाद किसी ने धक्का मार कर उन्हें पाताल के गर्क में गिरा दिया। भुवनमोहिनी के गिर्द पड़े हुए अपने बाहु बन्धन को ढीला करते हुए उन्होंने कहा—यह क्यों प्रियतमे ! क्या तुम मुझे प्यार नहीं करती हो ?

"करती हूँ। इसीलिए तो यह भिक्षा माँग रही हूँ।"

"भुवन् ! तुम्हारे बग़ैर मैं जिन्दा नहीं रह सकूँगा।"

"प्यारे ! मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ कि अपना व्याह अब नहीं करूँगी। मैं अबला हूँ। मेरा हृदय निर्बल है और तुम पुरुष हो,

तुम सबल हो, इस प्रतिज्ञा के पालन करने में तुम मेरी सहायता करो ! मैं तुमसे यही भिक्षा माँग रही हूँ। मेरी इतनी बिनती जरूर स्वीकार करो।"

बैरिस्टर मदनगोपाल जैसे पागल हो गये। उन्होंने कहना शुरू किया—नहीं नहीं भुवनमोहिनी यह नहीं हो सकता? तुम्हारे बगैर मैं जिन्दा नहीं रह सकूँगा। मेरे जीवन की ज्योति! मुझे अन्धकार में सदा भटकने के लिए मत छोड़ो। अपनी प्रतिज्ञा तोड़ो। अपनी प्रतिज्ञा तोड़ो।

बैरिस्टर मदनगोपाल फिर भुवनमोहिनी को अपनी बाँहों में आबद्ध करने के लिए लपके। लेकिन वह अपने अध्ययन के कमरे से भागकर बाहर निकल आई और उस कमरे में जा छिपी जो उसके पिता का बीहड़ेश्वर की आराधना का कमरा था। उस कमरे को अन्दर से बन्द करके भुवनमोहिनी बीहड़ेश्वर महादेव की एक छोटी सी मूर्ति के सामने मत्था टेक कर प्रार्थना करने लगी—हे मदनहारी बीहड़ेश्वर भगवान्! तुम मेरी रक्षा करो, तुम मुझे बल दो कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहूँ।

कमरे के भीतर भुवनमोहिनी बीहड़ेश्वर भगवान् से यह प्रार्थना कर रही थी और बाहर खिड़की से बैरिस्टर मदनगोपाल उसे पुकार कर कह रहे थे—भुवन! भुवन! प्यारी भुवन! दरवाजा खोलो! बीहड़ेश्वर महादेव के सामने हम दोनों एक साथ मिल कर यह प्रतिज्ञा करें कि हम तुम एक दूसरे से कभी अलग न होंगे। कोई शक्ति, कोई राज सत्ता और कोई लोक-मर्यादा हम दोनों को एक दूसरे से कभी अलग न कर सकेगी।

२२

भादों का महीना है। बीहड़ नद फैल कर समुद्र बन गया है। आकाश में काली घटा छाई हुई है। रिमझिम रिमझिम बूँदें पड़ रही हैं। ऐसे में न तो कोई रास्ता चलता है, और न कहीं कोई दीखता है। और न किसी बस्ती का पता चलता है। जान पड़ता है कि जैसे संसार का अन्धकार सिमिट कर बीहड़ में आ गया है। ऐसे ही समय में दो आदमी अपनी राह टटोलते हुए, बाबा बजरङ्गी की कुटी की ओर बढ़े जा रहे हैं। वे बरसाती ओवर कोट पहने हुए हैं और उनके चेहरों पर नकाबें हैं। उनके हाथ में बिजली की बत्तियाँ हैं; उन्हीं के सहारे वे बजरंगी की कुटी की ओर बढ़ रहे हैं। कभी-कभी जब आसमान में बिजली चमकती है तब ये दोनों भूत से दीखते हैं और अन्धकार में फिर विलीन हो जाते हैं।

रात्रि के करीब बारह बजे होंगे। बाबा बजरंगी के आश्रम में सन्नाटा छाया हुआ है। यह आश्रम कुछ ऊँचे पर होने से बीहड़ नद की बाढ़ से बहुत कुछ बच गया है। फिर भी कई झोंपड़ियाँ गिर गई हैं। जिनके झोंपड़े गिर गये हैं, उनके टिकने की व्यवस्था बाबा बजरंगी की कुटी के बाहर की मिली हुई दालान में की गई है। आश्रम वासी बिलकुल सोये हुए हैं।

ढहे हुए झोंपड़ों की तरफ से दबे पाँव ये दोनों व्यक्ति बाबा बजरंगी की कुटी में दाखिल हुए। सिर्फ़ अपना रास्ता देखने भर के लिए बिजली की हाथ बत्तियाँ जलाते हुए ये दोनों व्यक्ति बरामदे से होकर बाबा बजरंगी की कुटी की तरफ़ गये। बरामदे में कितने ही आदमी सोए हुए थे। लेकिन वे सब गाढ़ी निद्रा में थे। उनके ऊपर से बचाकर निकलते हुए, बिल्ली की तरह चौकन्ने,

दोनों बाबा बजरंगी की कुटी के पास पहुँचे। खिड़की खुली हुई थी। टार्च जला कर उन्होंने कुटी के अन्दर देखा। बाबा बजरंगी एक तख्ते पर एक चटाई बिछा कर उसी पर सोये हुए थे। उस समय वे एक कोपीन लगाये हुए थे। वे इतनी गाढ़ी निद्रा में थे कि जान पड़ा, जैसे मुर्दा हों।

इन दोनों व्यक्तियों ने बाहर से दरवाजा खोला और अन्दर दाखिल हो गये। टार्च जला कर इन्होंने कमरे में चारों तरफ देखा। सब सूनसान था।

ये दोनों बाबा बजरंगी की हत्या के इरादे से आये थे। लेकिन उनके दिल में बाबा बजरंगी के लिए किसी किस्म का द्वेष या क्रोध का भाव नहीं था। इसलिए ये हिचकते हुए उनकी ओर बढ़ रहे थे। उनके दिल में यह बात बैठी हुई थी कि वे घोर पाप करने जा रहे हैं। परन्तु उन्हें काफी पुरस्कार का लोभ दिया गया था। इसलिए वे इच्छा न रहते हुए भी इस काम को कर डालना चाहते थे। उन्हें यह भी भय था कि आश्रम में बहुत से आदमी हैं और वे अगर जाग पड़े तब लेने के देने पड़ जायँगे। इसलिए वे बहुत ही सचेष्ट और सावधान थे और बाबा बजरंगी के तख्ते के पास पहुँचने में उन्हें करीब पन्द्रह मिनट लग गये।

बाबा बजरंगी के पास पहुँच कर एक आदमी बाबा बजरंगी के मुँह के करीब अपना हाथ ले गया और दूसरे ने उनकी छाती पर उनके हृदय के पास अपने पैने छुरे को लगाया। कोशिश उनकी यह थी कि जैसे ही वह छुरा छाती के अन्दर प्रविष्ट करे, वैसे ही दूसरा आदमी बाबा बजरंगी के मुँह के ऊपर अपना हाथ रख दे ताकि बजरंगी के मुँह से आवाज़ न निकल सके और किसी को कोई पता न चले।

एक! दो! तीन! जो आदमी बाबा बजरंगी की छाती में छुरा प्रविष्ट करने वाला था, उसे जान पड़ा जैसे किसी अदृश्य

शक्ति ने उसके हाथ को पकड़ लिया है। बजाय इसके कि बाबा बजरंगी के मुँह से चीख़ निकले स्वयं वही चीख़ पड़ा। उसके पहले साथी ने टार्च जलाया। टार्च जलाने के साथ ही उसके मुँह पर बड़े ज़ोर से एक घूँसा पड़ा और वह भी एक चीख़ के साथ ज़मीन पर गिर पड़ा।

इस शोर गुल से बाबा बजरङ्गी जग उठे और तत्काल ही अपने सिरहाने से दियासलाई उठा कर उन्होंने अपनी चौकी के नीचे रक्खी हुई लालटेन जला दी।

लालटेन जलाते ही, धुँधले प्रकाश में बाबा बजरङ्गी ने देखा कि चपला खड़ी हुई है। चपला के सिवाय उन्हें कहीं कुछ और न दीख पड़ा। जो व्यक्ति छुरा लिए था उसके छुरे वाले हाथ को चपला पकड़े थी और दूसरा व्यक्ति बाबा बजरङ्गी की चौकी के नीचे था। चपला एक हाथ में पिस्तौल लिए हुए दोनों से कह रही थी—खबरदार! खबरदार! जो ज़रा भी टस से मस हुए! यहीं सदा के लिए सुला दूँगी।

"क्या मामला है चपला ?" बाबा बजरङ्गी ने पूछा।

"कुछ नहीं बाबा, आप बेफ़िक्र सोइए। अब मामला सुलझ गया है। ये दो बदमाश कहीं से कुटी में आ गये थे। मैं इनको बाहर ले जाकर देखूँगी कि ये कौन हैं और किसकी प्रेरणा से यहाँ आये हैं।"

"मगर चपला! मुझे अब नींद नहीं आ सकेगी। मैंने यह कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मेरा भी प्राण कुछ कीमत रखता है और उसको लेने के लिए इतना कष्ट करके कोई भादों की इस अँधेरी रात में बीहड़ नद के किनारे किनारे आ सकता है। इन दोनों व्यक्तियों को छोड़ दो। इन्हें मुझे क़त्ल करके चले जाने दो। इनके चेहरे का नक़ाब मत उतारो।"

बाबा बजरंगी अपनी चौकी पर बैठ गये और राम राम करने लगे।

इस बीच में कितने ही आश्रम वासी जग उठे थे और वे सब बाबा बजरंगी की कुटी के अन्दर आ गये थे। जो व्यक्ति बाबा बजरंगी की चौकी के नीचे पड़ा हुआ था, उसको उन लोगों ने उठाकर बैठाला और उसके चेहरे के नक़ाब को हटाया। कोई उसको पहचान न सका। अवश्य वह बीहड़ राज्य के बाहर का निवासी था। कोई साठ के आस पास की उसकी उम्र होगी। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं और हाथ और बाहों की ख़ालें झूल पड़ी थीं। उसके बदन की गठन अच्छी थी। यह जान पड़ता था कि अपनी जवानी में यह व्यक्ति बड़ा बहादुर और लड़ने वाला रहा होगा। इस उम्र में जब कि मनुष्य को भगवत भजन में लीन होना चाहिए, इस व्यक्ति को कौन सा ऐसा लोभ था जो यह एक निरपराध व्यक्ति की हत्या करने आया था ?

यही प्रश्न वहाँ उपस्थित लोगों के हृदय में उठ रहा था। सब लोग ग़ौर से उसके मुख की ओर देख रहे थे, जैसे कोई शिलालेख पढ़ रहे हों। वह अपनी आँखों को नीचे किए धैर्य से चुपचाप बैठा हुआ था।

दूसरा व्यक्ति जिसके हाथ में छुरा था, उसके भी चेहरे का नक़ाब हटाया गया। वह बिलकुल सत्रह अठारह साल का नव-युवक बालक था। वह अब भी काँप रहा था। उसके चेहरे पर भोलापन अंकित था। उसका मुख देखने से यह कोई नहीं कह सकता था कि यह कभी ख़ून कर सकता है।

जब उसके बहुत करीब लालटेन ले जाई गई, तब उस नव-युवक का चेहरा देखकर बाबा बजरंगी कुछ चौंके, उनकी युवा-वस्था के चित्र उसकी मुखाकृति से बहुत कुछ मिलते जुलते थे।

उसे देखते ही बजाय क्रोध और घृणा के उनके हृदय में न जाने क्यों किसी अज्ञात प्रेरणा से स्नेह की धारा उमड़ पड़ी। उन्होंने हाथ पकड़ कर उस युवक को अपने बराबर अपनी चौकी पर बैठाला। उसके मस्तक, उसकी पीठ, और उसके कन्धों पर हाथ फेरा और कहा—नौजवान तुम्हें इस तरह का पाप कर्म करने की क्या ज़रूरत है ? भगवान ने तुम्हें हाथ पाँव दिए हैं। पुष्ट शरीर दिया है, परिश्रम करके मेहनत मज़दूरी करके, तुम कहीं भी रह कर अपनी जीविका उपार्जन कर सकते हो और भूखे नहीं रह सकते हो। यह मार्ग तुम्हारे लिए ठीक नहीं जान पड़ता। लेकिन अगर तुम सोचो कि यही तुम्हारा मार्ग है और बग़ैर मेरा क़त्ल किए तुम्हारी भलाई नहीं हो सकती तो तुम मुझे मार सकते हो।

चपला अभी भी उसके एक हाथ को मज़बूती से पकड़े हुए थी। बाबा बजरंगी ने कहा—चपला ! इसे छोड़ दो, जान पड़ता है कि ईश्वर अब मेरे इस शरीर से और कुछ काम लेना नहीं चाहता। जितना काम उसको इस शरीर से लेना था, ले चुका। अब इस शरीर का अन्त ही हो जाना चाहिए।

लेकिन चपला यह तर्क सुनने वाली न थी, उसका हाथ वह पकड़े ही रही।

इस वादाविवाद का प्रभाव उस पर पड़े बिना न रहा। उसकी मुट्ठी ढीली पड़ गई। और उससे छुरा ज़मीन पर गिर पड़ा। पर वह अब भी मौन ही बैठा रहा। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

बाबा बजरंगी ने उसके छुरे वाले हाथ को अपने हाथों में ले लिया और उसको चूमते हुए कहा—नौजवान, इस समय तुम जाओ ! यदि मुझको क़त्ल करने से तुम्हारा कोई हित साधन होता हो तो किसी समय मेरे नाम एक पत्र डाल

देना और जो स्थान तुम अपने लिए बहुत सुरक्षित समझते हो उसका उसमें ज़िक्र कर देना। वहीं पर मैं हाजिर हो जाऊँगा और तुम मुझको क़त्ल कर डालना। लेकिन मेरे प्यारे! क्या मैं तुमसे परिचित हो सकता हूँ। यह तो कुछ अच्छा नहीं जान पड़ता कि हम तुम एक दूसरे के इतना अधिक निकट सम्पर्क में आयें और एक दूसरे से परिचित भी न हों।

वह नवजवान फूट-फूट कर रोने लगा और उसने भरे हुए कंठ से रो रो कर अपनी कहानी सुनाई—

किस प्रकार उसके पिता को क़ैद किया गया था। किस प्रकार जब वह छोटा था तब उसकी माँ उसको लेकर भागी थी। किस प्रकार उसकी माँ ने उसे पाला और अन्त में किस प्रकार उसने होश सँभालने पर उसे अपनी छोटी बहन और माँ का पालन करने के लिए बदमाश व्यक्तियों की संगत करनी पड़ी और चोरी, डकैती और हत्या का सहारा लेना पड़ा।

कहानी से और मुखाकृति से बाबा बजरंगी को अब इसमें संदेह नहीं रहा कि वह उनका पुत्र ही है। ओफ़! रियासत के आदमी कितने निर्दयी हैं कि वे पिता की हत्या उसी के पुत्र से करवाते हैं। बाबा बजरंगी ने अपने पुत्र को अपनी छाती से लगा लिया और कहा—बेटा! तुम्हारा वह अभागा पिता मैं ही हूँ। बेशक मैं अपराधी हूँ। मैं तुम्हारे प्रति पिता का कर्त्तव्य निबाह न सका। तुमको जन्म देने के बाद तुम्हारी सुरक्षा और शिक्षा का मैं प्रबन्ध नहीं कर सका। मैं वास्तव में अपराधी हूँ! और तुम्हारे हाथों यदि मेरा अन्त हो तो इससे बढ़कर मेरी और क्या सजा हो सकती है? लेकिन मैं यह सोचता हूँ कि अब मेरा परिचय पा लेने के बाद शायद तुम मुझे मारने के लिए तैयार न होवोगे, क्यों?

नवयुवक ने बाबा बजरङ्गी के चरणों पर मस्तक रख दिया

और फूट-फूट कर रोने लगा। उसने कुछ कहा नहीं; लेकिन उसके रोम-रोम से उसकी व्यथा उमड़ी पड़ती थी। उस समय वहाँ जितने लोग उपस्थित थे उन सबों के हृदय में करुणा की धारा उमड़ पड़ी। आख़िर वह भी मनुष्य ही था। उसके भी हृदय था, उसके हृदय में प्रेम और दया की धारा थी। लेकिन वह धारा समाज की उपेक्षा की चट्टान के नीचे दबी हुई थी। और आज वह उपेक्षा की चट्टान जैसे टूट गई हो और वह धारा उमड़ कर बाहर फूट निकली हो।

बाबा बजरङ्गी ने कहा—चपला! हर मनुष्य जो हत्या करने के लिए निकलता है, जानता नहीं कि वह किसको मार रहा है। जिसको वह मारता है उससे उसका क्या रिश्ता है। यदि जान ले तो अनर्थ क्यों करे? हम सब मानवों का जन्म-दाता एक है, हमारे पूर्वज एक, हम सब एक हैं, भाई बहन हैं, और एक ही पिता परमेश्वर के बेटे हैं। हम लोग इस रहस्य को जान नहीं पाते हैं और इसीलिए ये गुनाह और ये हत्याएँ करते हैं।

दूसरा आदमी अब भी दृढ़ बना रहा। जो कुछ वह अपनी आँखों के सामने देख रहा था उससे उसे यह आशा बँध चली थी कि उसके भी प्राण अब बच जायँगे। लेकिन प्राणों के बचने की उसे उतनी प्रसन्नता न थी, जितनी इस बात की चिन्ता हो रही थी कि उसके हाथ से उसका एक परम भक्त और सिखाया हुआ शिष्य निकला जा रहा है। उसे अपने पैरों के नीचे ज़मीन खिसकती हुई जान पड़ी। उसे जान पड़ा, जैसे उसकी नैया बिना खेवैया के मँझधार में डूब रही है। उसने कहा—विजय! तू ने मुझे धोका दिया। तू ने मुझे बताया क्यों नहीं कि तेरे पिता जीवित हैं, और बीहड़ में उनकी इतनी प्रतिष्ठा है।

विजय ने अश्रु भरी दृष्टि से डाकू की तरफ देखा और करुणा के स्वर में कहा—दादा! मुझे मालूम न था, माँ ने मुझे

हिदायत की थी कि मैं यह किसी से न कहूँ कि मैं बीहड़ का रहने वाला हूँ। माँ ने मुझसे यह भी कहा था कि मेरे पिता जीवन पर्यन्त कारागार में कैद रहेंगे। अब हमें उनका दर्शन कभी नहीं हो सकता। जेलखाने ही में वे मर जायँगे।

डाकू के शब्द से विजय शब्द के उच्चारण से बजरङ्गी को रोमाञ्च हो आया। वे इसी नाम से अपने पुत्र को पुकारा करते थे।

बाबा बजरङ्गी ने घूम कर उस डाकू सरदार से कहा—सरदार! सरदार! विजय बिलकुल ठीक कहता है। मैं काला पानी की सज़ा पा चुका था। लेकिन जीने की इच्छा मुझे जेल से निकाल कर यहाँ तक ले आई। मैं तुम्हारा बड़ा कृतज्ञ हूँ कि तुमने मेरे पुत्र को जो कुछ तुम जानते थे और जो तुम्हारा सबसे बड़ा हुनर था, वह सिखाया। मेरे पुत्र को इस प्रकार शिक्षित करने के लिए तुम जो बड़े से बड़ा पुरस्कार चाहो वह मैं तुम्हें देने के लिए तैयार हूँ। धन तो मेरे पास नहीं है। लेकिन मुझे मार कर यदि तुम किसी से कुछ धन पा सकते हो तो यह शरीर तुम्हारे हवाले है।

बुड्ढा बोला—अपने शिष्य के पिता को मैं कदापि नहीं मार सकता हूँ। तुम तो मेरे अब भाई हुए।

बाबा बजरंगी ने आदर के साथ उसको मस्तक झुकाया। वह बोला—नहीं नहीं आप महात्मा हैं। मैं पापी हूँ। आपका सिर ऊँचा ही रहे। मस्तक झुकाने का काम मेरा है।

बात-चीत का सिलसिला जब आगे बढ़ा तब इन दोनों व्यक्तियों ने बतलाया कि दीवान दिग्विजय सिंह ने उन्हें एक गहरा पुरस्कार का लोभ देकर यहाँ भेजा था। दोनों के मुख से ये बातें सुन कर चपला ज़ोर से बोली—मैं इसी दम दीवान दिग्विजय सिंह से इसका बदला लूँगी।

"बदला नहीं, क्षमा! चपला! हमारा उद्देश्य क्षमा और प्रेम है। यही चीज़ें हमको ज़िन्दा रख सकती हैं।"

"नहीं बाबा! यह दीवान क्षमा का पात्र नहीं है। जो व्यक्ति सरदार अभयराज सिंह को क्षमा नहीं कर सकता है, उसको मैं भी क्षमा नहीं कर सकती। मैं इसी दम उसके पास जाऊँगी और उससे कहूँगी कि वह सरदार अभयराज सिंह को छोड़ दे। यदि वह अभयराज सिंह को नहीं छोड़ेगा तो मैं भी उसे माफ़ करने की नहीं।" यह कहने के साथ ही उसने बाबा बजरंगी के पुत्र की नक़ाब और उसके छुरे को अपने हाथ में ले लिया और उस डाकू सरदार से कहा—सरदार बाहर चलो।

बूढ़ा सरदार चपला के साथ कुटी से बाहर निकल पड़ा। बाबा बजरंगी की अनुनय विनय चपला को रोकने में समर्थ न हुई। उन्हें जान पड़ा कि चपला बिना सरदार अभयराज सिंह को छुड़ाए आश्रम में न लौटेगी।

चपला ने उसके शिष्य की नक़ाब अपने चेहरे पर डाल ली और डाकू सरदार ने अपनी नक़ाब डाल ली। दोनों तर रास्ते से भीगते हुए सड़क के उस मोड़ पर आये, जहाँ महेशानन्द शास्त्री अपनी मोटर रुकवा कर बजरङ्गी के आश्रम में गये थे। यहाँ एक मोटर पहले ही से खड़ी थी। दोनों चुपचाप उसमें बैठ गये, और सरदार ने ड्राइवर को आज्ञा दी, मोटर चलाओ। ड्राइवर ने धीमे स्वर में पूछा—"काम हो गया।"

"खामोश रहो" घुड़क कर डाकू सरदार ने कहा। फिर उनमें किसी से कोई बात न हुई।

ये दोनों व्यक्ति दीवान दिग्विजय सिंह के कमरे में ले जाए गये। दीवान साहब वास्तव में बैठे हुए जाग रहे थे, और इनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इन दोनों को आया देखकर दीवान

दिग्विजय सिंह ने उनकी ओर नोटों का एक पुलिन्दा बढ़ाते हुए कहा—यह तुम्हारा पुरस्कार है।

डाकू सरदार ने कहा—दीवान साहब मुझे पुरस्कार नहीं चाहिए। बजरङ्गी की हत्या मैं नहीं कर सकता, वह मेरे शिष्य का पिता है।

"लेकिन मैं तुम्हारी हत्या करूँगी।" चपला ने अपनी नक़ाब फेंक कर दीवान साहब को पिस्तौल का लक्ष्य बनाते हुये कहा।

दीवान दिग्विजय सिंह भय से काँपने लगे। उनके हाथ पाँव फूल गये और शरीर में पसीना हो आया। उन्होंने चपला से कहा—मुझे क्षमा करो, आइन्दा ऐसी भूल नहीं करूँगा।

"तुम्हें मैं छोड़ सकती हूँ; लेकिन एक शर्त पर।"

"बताओ! तुम्हारी शर्त मानूँगा।"

"सरदार अभयराज सिंह को छोड़ दो।"

दीवान दिग्विजय सिंह ने चपला को विनय भरी दृष्टि से देखा और कहा—चपला! मैं सरदार अभयराज सिंह को छोड़ने के लिए तैयार हूँ। लेकिन सत्य यह है कि महाराजा उनको माफ़ नहीं करना चाहते। मैं रियासत का एक नौकर मात्र हूँ। मेरी परिस्थिति तो तुम जानती ही हो।

"अच्छा तो तुम महाराजा के नाम एक सिफ़ारिशी चिट्ठी लिख दो कि अभयराज सिंह छोड़ दिए जायँ।"

दीवान दिग्विजय सिंह ने चिट्ठी लिखने में बहुत हिच-किचाहट दिखलायी। तब चपला ने उनके सीने के निकट पिस्तौल ले जाकर कहा—लिखिए, अभी लिखिए! नहीं तो यह चिट्ठी आपके ख़ून से लिखी जायगी। और महाराजा को सरदार अभयराज सिंह को हर हालत में छोड़ना ही पड़ेगा।

कोई उपाय नहीं था। इसलिए दीवान दिग्विजय सिंह ने

महाराजा के नाम सिफ़ारिशी चिट्ठी लिख कर उस पर दस्तख़त किया, अपनी मोहर लगाई और चपला के हवाले कर दिया।

× × ×

इधर बाबा बजरङ्गी अपने आश्रम वासियों से कह रहे थे—

"मैं नहीं जानता था कि चपला मेरे प्राणों की रक्षा के लिए इतना सतर्क रहती है, और रातों रात जाग कर पहरा देती रहती है। यदि चपला इतना सावधान न रहती तो आज मैं मर गया होता और वह भी अपने पुत्र के हाथों। ओफ़! चपला ने मेरे पुत्र को कितने बड़े अपराध से बचाया है?"

२३

बाबा बजरङ्गी की कुटी के अन्दर दाखिल होकर चपला ने देखा कि बाबा अभी जग रहे हैं। और लालटेन की धुँधली रोशनी में अपने पुत्र से तरह-तरह के प्रश्न कर रहे हैं। और अपने परिवार के बारे में बहुत कुछ जान कर संतुष्ट बैठे हैं।

बजरङ्गी के सामने नोटों का वह पुलिन्दा रखते हुए चपला ने कहा—बाबा आपके प्राण का इतना मूल्य दीवान साहब ने लगाया था।

बजरङ्गी ने नोटों का पुलिन्दा हाथ में उठाकर देखा। पूरा रामायण का गुटका ही सा था। उन्होंने कहा—चपला यह धन तू कैसे ले आई?

"उस बदमाश से छीन लाई हूँ।"

"नहीं बेटी ! हम प्रजामंडल के सदस्यों का लूट-पाट करना धर्म नहीं है। इस रक़म को तुम उनके पास वापस भेज दो या अगर कहो तो मैं स्वयं वापस भेजवा दूँ।"

"नहीं बाबा ! यह रक़म वापस नहीं भेजी जा सकती।"

"चपला यह राज्य कोष का धन है। उसी में इसको शामिल होना चाहिए।"

"राज्य का नहीं बाबा ! यह प्रजा का धन है। प्रजा के पसीने की गाढ़ी कमाई इसमें शामिल है। यह प्रजामण्डल के कोष में ही जमा होगा।"

बाबा बजरङ्गी ने आश्चर्य चकित दृष्टि से चपला की ओर देखते हुए कहा—चपला इस प्रकार के लूट के धन को मैं अपने कोष में नहीं शामिल कर सकता। हमारा ध्येय तो सत्य, सेवा और प्रेम है। यही हमारा साथ देंगे।

चपला ने कहा—राज्य के कर्मचारियों ने प्रजा को लूट कर ही तो यह धन जमा किया है।

"लेकिन अन्याय का बदला हम अन्याय से नहीं देना चाहते। हम तो अन्यायी के साथ भी न्याय करना चाहते हैं ताकि वह न्याय के रस का आस्वादन करें और धीरे-धीरे अपनी नीति को बदल दें।"

चपला चुप रही। बाबा बजरङ्गी कहते चले गए—"मैं राजा और राज्य कर्मचारियों में इतना विवेक पैदा करना चाहता हूँ कि वे समझें की यह प्रजा का धन है। इसे प्रजा के ही काम में लगाना चाहिए। हम उनके साथ जबरदस्ती नहीं करना चाहते। उनका मत परिवर्तन करना चाहते हैं। प्रेम से, सद्भावना से, अहिंसा से, क्षमा से और न्याय से।"

चपला ने नोटों का पुलिन्दा अपने हाथ में ले लिया और कहा—अच्छा तो नमस्कार ! मैं जाती हूँ।

बाबा बजरङ्गी ने कहा—चपला ! नाराज़ मत होओ। तुम्हारे कहने से मैं इस धन को अपने पास रख लूँगा। लेकिन तर्क से तुम्हारे दिल में यह बात मैं बैठा दूँगा कि इसका प्रजामण्डल के कोष में जमा होना ठीक नहीं। हमें इस धन को राज्य कोष में ही भेज देना चाहिए।"

"नाराज़ नहीं हूँ बाबा। जिस समय मैं दीवान के घर से चली थीं, मैंने उसके चेहरे पर बेबसी के साथ बदला लेने की प्रवृत्ति भी देखी थी। मुझको ज़रूर वह गिरफ़्तार कराने की कोशिश करेगा और मैं उसके हाथ जीते जी नहीं जाना चाहती। लिहाज़ा मेरे लिए यही उत्तम है कि मैं इसी समय आश्रम छोड़ दूँ और ये नोट अपने साथ लिए जा रही हूँ। ये मेरे सहायक होंगे। धन से बढ़ कर मुसीबत में दूसरा साथी नहीं।"

बाबा बजरङ्गी ने कहा—नहीं बेटी ! तुम्हें इस तरह भागने की आवश्यकता नहीं। यदि पुलिस तुम्हें गिरफ़्तार करने को आये तो तुम गिरफ़्तार हो जाओ। उनको मुक़दमा चलाना पड़ेगा और इस तरह राज्य कर्मचारियों की करतूतें जनता के सामने आएँगी।

"मान लीजिए की राज्य के न्यायाधीश ने मुझे लम्बी सज़ा देदी।"

"तो हम उसके विरोध में सभायें करेंगे, आन्दोलन करेंगे और लोकमत को इतना प्रबल बनायेंगे कि राजा को तुम्हें छोड़ देना पड़ेगा।"

"बाबा ! यही बात आपने सरदार अभयराज सिंह से भी कही थी, तब उन्होंने आत्मसमर्पण किया था। आज वह वीर पुरुष फाँसी पर चढ़ने जा रहा है और उसको आपकी अहिंसा, आपका प्रेम, आपकी दया आपकी न्याय-भावना फाँसी के तख्ते से नीचे उतारने में असमर्थ है। मैं उस वीर पुरुष को यों

ही मर जाने नहीं दूँगी। जब तक शरीर में एक बूँद भी रक्त बाकी है, उसको छुड़ाने की चेष्टा करूँगी। इस शरीर को राज्य के निर्दयी कर्मचारियों के हवाले कर के इसकी शक्ति को वृथा नहीं जाने दूँगी।"

क्षण भर बाबा बजरङ्गी सोचते रहे, उन्हें जान पड़ा कि जैसे सचमुच वे विवश हों। जैसे उनकी अहिंसा अभयराज सिंह को फाँसी से उतारने में असमर्थ है। लेकिन उन्होंने सोचा कि इसमें अहिंसा का कोई दोष नहीं है। बहुत संभव है कि यह स्वयं हमारी ही किसी कमी के कारण हो। कोई अस्त्र अगर काम नहीं करता तो उसमें अस्त्र का दोष नहीं, बल्कि उसके प्रयोग करने वाले का दोष होता है। अहिंसा अगर काम नहीं करती तो इसमें अहिंसा का क्या दोष है? हमारा दोष है?

बाबा बजरङ्गी ने चपला से कहा—बेटी यह हमारा ही दोष है और सरदार अभयराज सिंह के बलिदान ने हमको और शक्तिमान बनाया है।

बाबा बजरङ्गी ये बातें कहते हुए बहुत गम्भीर हो उठे।

"बाबा यह कायरों की राजनीति है। मैं इसे मानने के लिए कदापि तैयार नहीं हो सकती। मुझे विदा दीजिए।"

यह कहते हुए चपला बजरंगी की कुटी के बाहर निकल गई। बाबा बजरंगी भी उसके पीछे-पीछे बाहर निकल आये और उन्होंने कहा—मेरे आशीर्वाद और सद्भावनाएँ तुम्हारे साथ हैं।

"अगर ईश्वर मिलाएगा तो फिर मिलूँगी।" यह कहते हुए चपला अंधकार में समा गई। बाबा बजरंगी के आश्रम के एक स्वयं सेवक ने पुकार कर कहा—आश्रम में कब आओगी चपला?

अंधकार में जिधर चपला गई थी उधर से एक करुण स्वर से भरी हुई आवाज़ आई—अब मैं आश्रम में या तो सरदार अभय-राज सिंह के साथ लौटूँगी और या फिर कभी नहीं लौटूँगी।

चपला के जाने के बाद मुश्किल से पचीस मिनट हुए होंगे कि रियासत की पुलिस ने दल बल से बाबा बजरङ्गी के आश्रम पर छापा मारा। पुलिस के बड़े-बड़े कर्मचारी और पुलिस के सैकड़ों सिपाही आश्रम के अन्दर खटपट करते हुए दाखिल हो गये। आश्रम के गिर्द आर्मे पुलिस का पहरा क़ायम हो गया।

बजरङ्गी की कुटी में प्रवेश करते हुए पुलिस के नये कप्तान खान बहादुर मौलवी हामिद अली ने कहा—चपला कहाँ है? उसकी गिरफ़्तारी का वारण्ट लेकर मैं आया हूँ।

"आपको पूरा अधिकार है। आप आश्रम के कोने-कोने को तलाश लें और जहाँ चपला मिले, उसको गिरफ्तार कर लें।"

"मैं आपसे पूछता हूँ? आप बतलावें? चपला कहाँ है! वह आपके आश्रम में रहती है। आज गुरुतर अपराध उसने किया है। दीवान साहब के घर में उसने डाका डाला है। उसको बग़ैर गिरफ़्तार किये हुए मैं नहीं जा सकता।"

"मैं आपको कहाँ रोक रहा हूँ।"

"तो बतलाते क्यों नहीं, कि कहाँ है?"

"नहीं बतलाऊँगा।"

"खान बहादुर मौलवी हामिद अली ने क्रुद्ध स्वर में बाबा बजरङ्गी से कहा—यही आपकी सच्चाई की बुनियाद है। आपको शर्म नहीं आती। एक तरफ़ कहते हो कि हमारा आन्दोलन सत्य पर कायम है और सत्य को इस तरह छिपाते हो। तुम अवश्य जानते होगे कि चपला कहाँ है।"

"हाँ जानता हूँ। लेकिन बतला नहीं सकता। सत्य को मैं जानता हूँ लेकिन उसको प्रगट करने से इनकार करता हूँ।"

"आपको मालूम होना चाहिये कि यह एक अपराध है। रियासत के पुलिस को अपराधी की तलाश में मदद न देना अक्षम्य अपराध है।"

"तो आप सहर्ष मुझको गिरफ़्तार कर सकते हैं। लेकिन मैं चपला को गिरफ़्तार कराने में आपको योग नहीं दे सकता। क्योंकि मैं जानता हूँ कि चपला को इस स्थिति में स्वयं आपने पहुँचाया है।"

जब सबेरा हुआ, तब एक बार सूर्य के प्रकाश में पुलिस के इस दल ने बाबा बजरंगी के आश्रम की फिर तलाशी ली। लेकिन चपला का कहीं सुराग़ न लगा। इधर पुलिस की अवाई देखकर आश्रम में पास पड़ोस के लोग आने लगे और एक खासी भीड़ जमा होने लगी। सूर्य के प्रकाश में वहाँ जमा हुई भीड़ ने बाबा बजरंगी की जय की ध्वनि की। घृणा से देखने वाले दर्शकों की निगाह के सामने पुलिस के इन कर्मचारियों को वहाँ बड़ी देर तक ठहरने की हिम्मत न पड़ी।

बाबा बजरंगी के आश्रम का कोना कोना तलाश किया गया। आश्रमवासियों को डाँट फटकार कर पुलिस कप्तान ख़ान बहादुर मौलवी हामिद अली चले गये और यह धमकी दे गये कि वे इस आश्रम को ख़ाक में मिलवा देंगे। वे बाबा बजरंगी को उसी समय गिरफ़्तार कर लेना चाहते थे; लेकिन महाराजा पर उनका क्या प्रभाव है, यह वे जानते थे। महाराजा की ख़ास हिदायत थी कि बग़ैर उनसे पूछे बाबा बजरङ्गी कदापि गिरफ़्तार न किये जायँ। इसलिए वे अपने मन की न कर सके थे।

उस दिन सारे बीहड़ में दीवान साहब के घर में चपला की डाकाज़नी की चरचा रही। रियासत की पुलिस चपला का सुराग़ लगाने में लगी रही। बीहड़ समाचार में इस सिलसिले में प्रजा-मण्डल के विरोध में एक भयानक अग्र लेख निकला और उसमें घोषित किया गया कि इस तरह के डाकों का कारण प्रजामण्डल और उसके संस्थापक बाबा बजरङ्गी ही हैं। जब तक इस संस्था

का पूरी शक्ति के साथ रियासत की ओर से दमन नहीं किया जायगा, तब तक रियासत में ऐसी घटनायें होती ही रहेंगी।

भुवनमोहिनी इधर कई दिनों से बाबा बजरंगी के आश्रम में नहीं आई थी। जब इस घटना की खबर उसके यहाँ पहुँची तब वह बाबा बजरंगी के आश्रम में गई और चपला के बारे में बाबा बजरंगी से उसने पूछ-ताछ की। जो कुछ जानते थे वह सब बाबा बजरंगी ने उससे बतलाया और कहा—"चपला बड़ी ही बहादुर स्त्री है। मुझको विश्वास है कि उसकी सारी शक्ति सरदार अभयराज सिंह के छुड़ाने में लगी होगी। ईश्वर उसको सफलता प्रदान करे।"

जो कुछ सुना था, उससे भुवनमोहिनी एक विचित्र आनन्द की धारा में बह चली। बारबार वह यही सोचती रही कि क्या अच्छा होता कि इस अवसर पर वह भी चपला के साथ होती और उसकी सहायक होती।

वह अपने पिता के शिवलोक में वापस लौट आई और उस दिन बड़े उत्साह से बीहड़ेश्वर की आरती में शामिल हुई। उसने देखा कि मन्दिर में एक खासी भीड़ जमा है। उस समय रानियाँ और महाराजा भी बीहड़ेश्वर के मन्दिर में उपस्थित थे। संध्या समय जब मन्दिर में नगाड़े और घड़ियाल बज उठे और भुवन-मोहिनी ने अपने हाथ में आरती ली उस समय वहाँ उपस्थित लोग उसकी छवि को देखते ही रह गये।

वह अपने हृदय की मूक भाषा में बीहड़ेश्वर महादेव से यह प्रार्थना कर रही थी कि हे शंकर भगवान तुम चपला की सहायता करो। उसका प्रयत्न सफल बनाओ और मुझे शीघ्र उससे मिलाओ।

रानियों ने प्रथम बार भुवनमोहिनी को देखा था, उसकी छवि, उसकी धर्मनिष्ठा, उसकी मुखाकृति इन सब का रानियों पर

बड़ा प्रभाव पड़ा, उन्होंने मन ही मन सोचा कि भगवान् शंकर ने ही इस स्त्री की रक्षा की है। जिस विधि ने इसको इतना सौन्दर्य दिया है, वही इसका सहायक भी है। भुवनमोहिनी सब रानियों को बहुत प्यारी प्रतीत हुई।

जब आरती समाप्त हुई और भुवनमोहिनी मन्दिर के बाहर निकलने लगी तब रानियों ने उसे घेर लिया और उसको अपने महल में आमंत्रित किया।

"क्या महाराजा का महल खतरे से खाली है?" भुवनमोहिनी ने कहा।

बड़ी महारानी ने कहा—महल की बात हम लोग नहीं जानतीं। लेकिन रनिवास सुरक्षित है। वहाँ हर एक की इज्जत और हर एक की मर्यादा अक्षुण है। किसी दिन रनिवास में पधारने की कृपा करें। हम सब तुम्हारी कहानी सुनना चाहती हैं।

"पिता जी से पूछ कर बता सकती हूँ।" यह कहते हुए भुवनमोहिनी ने महारानियों का अभिवादन किया और मन्दिर के बाहर निकल कर अपनी मोटर गाड़ी में सवार हो गई।

महाराजा विष्णुदेव सिंह जब तक देख सके लोगों की दृष्टि बचाकर भुवनमोहिनी की ओर बराबर देखते रहे और जब वह चली गई, तब उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास लिया और मन ही मन कहा—असंभव है! इस नारी रत्न को अपनी वासना का शिकार बनाना असंभव है। और मुनासिब भी नहीं है।

इस अंतिम शब्द को महाराजा ने बारबार दुहराया।

उस दिन महाराजा के रनिवास में पधारने का प्रोग्राम बन चुका था। रानियाँ विशेष रूप से प्रसन्न थीं और महाराजा की स्वागत में बड़ी-बड़ी तैयारियाँ करके बीहड़ेश्वर के मन्दिर में आई थीं। रनिवास में पहुँचते ही सब रानियाँ पूर्व निश्चय के

अनुसार बड़ी महारानी के महल में दाखिल हुईं और महाराजा के आने की प्रतीक्षा करने लगीं।

ठीक समय पर महाराजा रनिवास में दाखिल हुए और रानियों ने पूजन-अर्चन शुरू कर दिया और महल के अन्दर ले जाकर पलँग पर उनको तकिए के सहारे बैठालना शुरू किया। महाराजा सुव्यवस्थित हो कर बैठ भी न सके थे कि उनको एका एक चपला का दर्शन हुआ। वह अपने अद्भुत सैनिक वेष में थी। लेकिन उसका यह अद्भुत सैनिक वेष भी बड़ा ही मन-मोहक था। सैनिक वेष बनाते हुए भी उसने स्त्री सुलभ शृंगार को क़ायम रक्खा था। बालों को उसने बड़े आकर्षक ढङ्ग से सँवार कर पीछे बाँधा था और उनमें बड़ी-बड़ी ज़हर से बुझी हुई पिनें खुंसी हुई थीं। अगर किसी आदमी के शरीर पर इन पिनों की खुरच भी लग जाय तो वह तत्काल ही मर जा सकता है। वह अपनी साड़ी को अपने बदन में इस तरह लपेटे थी कि जान पड़ता था जैसे यह कोई खास क़िस्म की पोशाक किसी बड़े ही होशियार दर्ज़ी ने तैयार की हो। उसके कमर में चमड़े की छः अंगुल ऊँची पेटी बँधी हुई थी और उस पेटी में से छुरियाँ झूल रही थीं। पेटी से कन्धे तक एक और चमड़े का जनेऊ सा पड़ा हुआ था उससे दाहिनी तरफ़ कमर में एक पिस्तौल चमड़े के केस में बन्द झूल रही थी। पैरों में वह घुटने तक आने वाले फ़ौजी बूट पहने हुए थी और साड़ी का निचला भाग घुटनों के नीचे उन्हीं बूटों में समा सा गया था। उसका साड़ी पहनने का ढङ्ग कमर से ऊपर बङ्गाली स्त्रियों का सा था और कमर से नीचे मराठी स्त्रियों का सा। महाराजा और रानियाँ उसको देखते ही चौंक से पड़े। उसकी डाकेजनी का समाचार महाराजा और महारानियों को पहिले ही से मिल चुका था और बहुत मुमकिन था कि आज रनिवास में बात-चीत का मुख्य विषय यही होता।

उन सबों की समझ में नहीं आया कि यह अद्भुत नारी रनिवास में कैसे और किधर से आगई है ? महाराजा ने उसकी तसवीर देखी थी और उसका यह सैनिक वेष किसी तसवीर में देखा था। इस लिए वे तत्काल ही पहिचान गये और सावधान होकर बैठ गए तथा उससे पूछा—तुम चपला हो।

"हाँ मैं चपला हूँ," और पिस्तौल हाथ में लेते हुए उसने महाराजा से कहा—"अभयराज सिंह की फाँसी का बदला लेने आई हूँ। कल प्रातःकाल आपकी ओर से अभयराज सिंह को फाँसी का दंड मिलेगा। इसके पहले कि सरदार अपना प्राण त्यागें मैं आपकी मृत्यु का समाचार उनके कानों तक पहुँचा देना चाहती हूँ, ताकि वे शान्ति से मरें। तैयार हो जाइये।" चपला पलँग पर चढ़ गई और पिस्तौल को उसने बिलकुल महाराजा के सीने से गड़ा दिया।

रानियाँ सब चीख़ उठीं। चपला ने अपने हाथ से दूसरी पिस्तौल निकाला और उन सब रानियों को सम्बोधित कर के कहा—ज़रा धैर्य रखिए, यह आप लोगों के लिए है।

सब भय से त्रस्त पलँग के गिर्द जहाँ की तहाँ खड़ी रह गईं। महाराजा ने दृढ़ भाव से चपला की ओर देखते हुए कहा—चपला ! मैं मौत से नहीं डरता।

"मौत तो बहुत मामूली चीज़ है। आप किसी चीज़ से नहीं डरते। आपको किसी बात का ख़ौफ़ नहीं है।"

महाराजा ने अपनी आखें बन्द करलीं। जैसे वे कोई दूर की बात सोचने लगे।

"मगर यदि आप चाहें तो मैं आपको एक अवसर देना चाहती हूँ।" चपला बोली।

"मैं कोई अवसर नहीं चाहता, तुम मुझे शौक से मार डालो। यों भी मैं मरा ही हूँ। इसलिए मेरा जीवित रहना और न रहना

बराबर है। लेकिन मैं यह ज़रूर जानना चाहूँगा कि तुमने दीवान साहब के घर में डाका कैसे डाला ? और यहाँ भी इतना पहरा होते हुए तुम कैसे पहुँच गईं।"

"मुझे इस समय आपका मनोरंजन करने और आपको कहानी सुनाने की फ़ुर्सत नहीं है। मेरा वीर सरदार कल सबेरे इस संसार से विदा होने जा रहा है। मैं उसके जीवन के अन्तिम ध्येय को पूरा कर लेना चाहती हूँ।"

"अच्छा तो तुम अभयराज सिंह से शादी करना चाहती हो।"

चपला के गालों पर लज्जा की एक हलकी लाली दौड़ गई।

महाराजा ने मुसकराते हुए कहा—"फिर मैं कहता हूँ कि मैं मौत से नहीं डरता हूँ। अगर तुम मुझे मारने के इरादे से ही यहाँ आई हो तो मुझे दस पाँच मिनट बाद मार डालना। इतनी जल्दी क्या है ? इसके पहिले कि मैं मरूँ, मुझे ज़रा अपनी रानियों से दो बातें कर लेने दो।"

सब रानियों ने एक स्वर में गिड़गिड़ाहट के साथ चपला से कहा—दानवी ! हम सबों को विधवा बनाकर तुम क्या पाओगी। आख़िर तुम भी स्त्री हो। तुम्हारा भी हृदय किसी पुरुष के प्रेम का प्यासा होगा। उसके वियोग को क्या तुम कभी सहन कर सकती हो। हम से बताओ, तुम क्या चाहती हो। तुम्हें खज़ाना चाहिए। हम से माँगों। हम तुम्हें देने के लिए तैयार हैं। तुम हमारे महाराजा पर वार न करो।

चपला ने कहा—मैं धन दौलत नहीं चाहती। मैं सिर्फ़ यही चाहती हूँ कि अभयराज सिंह को फाँसी न दी जाय। महाराजा उन्हें माफ़ कर दें।

"यह असम्भव है। मैं विवश हूँ। मौत मुझको आसान जान पड़ती है; लेकिन अभयराज सिंह को छोड़ना मेरे लिए आसान नहीं हैं।" महाराजा ने कहा।

बड़ी महारानी ने कहा—क्यों महाराजा ? आप तो बीहड़ के अन्दर सर्व शक्तिमान हैं।

"नहीं, सर्व शक्तिमान मैं नहीं हूँ। दीवान है। वह मुझे भीषण बदनामी का शिकार बनाने के लिए तुल गया है। वह मेरी कमज़ोरियों को जानता है। मुझे अपने पापों को प्रगट हो जाने का बड़ा भय है। वह भय मुझे मौत से कहीं अधिक भयानक जान पड़ता है।"

"तो इसके मानी यही हैं कि सरदार अभयराज सिंह की फाँसी एकमात्र दीवान के कारण हो रही है।" चपला ने पूछा।

"जान तो यही पड़ता है।" रानियों ने कहा।

चपला ने अपनी जेब से दीवान का पत्र निकाल कर महाराजा के सामने रख दिया।

महाराजा ने उसके जवाब में तुरन्त ही दीवान साहब का दूसरा पत्र दिखलाया। चपला ने उस पत्र को पढ़ा। उसमें लिखा हुआ था—"चपला पिस्तौल दिखा कर मुझसे अभयराज सिंह के छुड़ाने की शिफ़ारसी चिट्ठी लिखवा ले गई है। उस चिट्ठी पर कदापि अमल न किया जाय। अभयराज सिंह को कदापि माफ़ न किया जाय।"

उस पत्र को पढ़ते ही चपला के बदन में जैसे आग लग गई हो। उसने कहा—"अच्छा आप यहीं रनिवास में रहिएगा मैं अभी आती हूँ।"

महाराजा कुछ कहने भी न पाये थे कि चपला रनिवास के बाहर निकल गई। मझली महारानी की छत से उसके दूसरी ओर धड़ाम से कूद गई। उसके इस कृत्य को महल में रहने वाला कोई देख न सका। भादों की वैसे ही अँधेरी रात छाई हुई थी। उसी प्रकार रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था।

दीवान साहब के महल के गिर्द पुलिस का पहरा घिरा हुआ था और वे भी अत्यन्त सावधान थे। चपला को किसी तरफ़ से महल के अन्दर जाने की गुञ्जाइश न थी। अँधेरी रात में पेड़ों और झाड़ियों की ओट में चपला बड़ी देर तक महल में जाने के उपाय सोचती रही। अन्त में वह एक पेड़ पर चढ़ गई और उस पर से चहारदीवारी पर कूद आई और चहारदीवारी से मकान के पिछले हिस्से में दाख़िल हुई। वहाँ एक बहुत बड़ा बाग़ था। रात में वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। उस बाग़ में महल की मुख्य इमारत के पास एक विशाल पीपल का वृक्ष था उसमें दीवान साहब की लड़कियों और अन्य स्त्रियों के लिए झूला पड़ा था। वह झूला एक बहुत ऊँची डाल में था। चपला पीपल के पेड़ पर चढ़ गई और झूले को उसने खोल डाला। उसको उसने और ऊपर की डाल में ले जाकर डाला और उस पर चढ़ कर पेंग मारने लगी। क्रमशः झूला इधर-उधर जाने लगा और अन्त में एक बार इमारत की ऊपरी मंजिल में लगे हुए बरसाती पानी के बहने के एक लोहे के नल से छू गया। चपला ने वह नल तत्काल ही पकड़ लिया और उसी के सहारे वह ऊपर चढ़ गई और सावधानी के साथ बचती हुई इधर-उधर देखती हुई बन्द दरवाज़ों को कौशल से खोलती हुई वह उस कमरे में पहुँची जहाँ दीवान साहब बैठे ज़रूरी काग़ज़ातों पर दस्तख़त कर रहे थे। रात अभी बहुत ज़्यादा नहीं गई थी। सब लोग जग रहे थे। इसलिए पहरेदार अभी इतने सावधान नहीं हुए थे, जितना कि उन्हें होना चाहिए था।

एकाएक अपने पास चपला को खड़ी देखकर दीवान साहब चकपका गये। लेकिन वे तैयार बैठे थे, अपने हाथ में पिस्तौल लिए हुए। तत्काल ही उन्होंने चपला पर पिस्तौल दाग़ी। लेकिन उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि इतने

करीब से पिस्तौल चलाने पर भी उनका निशाना चूक गया। उन्होंने फिर से पिस्तौल चलाई और चपला उछल कर दूसरी जगह खड़ी हो गई। आख़िरकार उन्होंने अपनी मेज़ के दराज़ से दूसरी भरी हुई पिस्तौल निकाली और उसको भी ख़ाली कर दिया। लेकिन वह चपला को घायल न कर सके। जब उनकी पिस्तौलों की गोलियाँ बिलकुल ख़ाली हो गईं तब चपला बड़े ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़ी और बोली—दीवान साहब मैंने जीवन में इसका बहुत अभ्यास किया है। यदि आपने मेरे सरकस के खेलों को बीहड़ में करने दिया होता तो मैं आपको एक खेल यह भी दिखलाती। मेरे ऊपर पिस्तौल चलाये जाते और मैं उनके निशाने से बाल-बाल बच जाती। इस तरह का अभ्यास मैं किया ही करती हूँ। आप मुझको मार नहीं सकते।

"अब मेरी बारी है।" यह कहते हुए चपला ने दीवान दिग्विजय सिंह के सीने के पास अपनी पिस्तौल ले जाकर भिड़ा दिया। दीवान साहब के हाथ-पाँव फूल गये और वे पसीने से तर हो गये। उन्होंने गिड़गिड़ा कर कहा—चपला मुझे एक बार और माफ़ करो।

चपला ने कहा—बस एक ही उपाय है वह यह कि अभयराज सिंह की फाँसी रद्द करने की चिट्ठी महाराजा के नाम लिखिए। दीवान साहब ने तत्काल ही एक दूसरी चिट्ठी लिखकर चपला के हवाले कर दिया। और उसमें यह भी लिखा कि मेरी पहली चिट्ठी रद्द समझी जाय।

२४

चपला दीवान दिग्विजय सिंह के कमरे से सरदार अभयराज सिंह के छुड़ाने की शिफ़ारसी चिट्ठी लिए हुए जिस रास्ते से गई थी उसी रास्ते से बाहर निकल कर फिर उसी चहारदीवारी पर आकर खड़ी हुई जिसको लाँघ कर वह दीवान की हवेली के अन्दर घुसी थी। हवेली के चारों तरफ़ अब भी बहादुर सिपाही सावधानी से घूम रहे थे और हवा में झूठी बन्दूकें दाग़ रहे थे। जब चपला हवेली के अन्दर दाख़िल हुई थी। उस समय भी चपला ने झूठी बन्दूकें दगने के शब्द सुने थे। इसे उसने शुभ लक्षण समझा था, क्योंकि जब सिपाही बहुत अधिक सावधान रहते हैं, तभी उनको चकमा भी आसानी से दिया जा सकता है।

चपला को ताज्जुब हो रहा था कि दीवान साहब के कमरे में कई बार पिस्तौलें चलीं मगर उसकी आवाज़ किसी को आकर्षित न कर सकी। अब उसको इसका रहस्य मालूम हुआ। उनकी हवेली के गिर्द इस क़दर बन्दूकें दग रही थीं कि उन्हीं में दीवान दिग्विजय सिंह के पिस्तौल की आवाज़ें भी मिल गईं।

चपला ने एक संतोष की साँस ली कि अभी किसी को पता नहीं है। चहारदीवारी पर खड़ी-खड़ी वह बाहर कूद कर निकल जाने का सुरक्षित स्थान देख रही थी।

उसने देखा कि ठीक उसके पैरों के नीचे एक पहरेदार उसकी ओर पीठ किये खड़ा है, और बीड़ी पी रहा है। जब वह बीड़ी का कश खींचता है तब उसकी चमक से अँधेरे में उसका चेहरा और बन्दूक़ की नली दीख जाती है।

चपला ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया और कहा—वाह रे प्रभु! नीचे उतर जाने के लिये तू ने एक जीवित सीढ़ी

खड़ी कर दी है। एक ही छलाँग में चपला उसके कन्धे पर कूद पड़ी और उसके बाद जमीन पर जा खड़ी हुई। जब तक वह पहरेदार सँभले, तब तक चपला अन्धकार में विलीन हो गई। उसी समय बड़े ज़ोर से बादल गरज उठे, और मूसलाधार पानी बरसने लगा। यह ईश्वर की मदद थी, जो चपला को मिली थी। प्रभु को बारबार धन्यवाद देते हुये वह महाराजा के रनिवास की ओर बढ़ी। इधर वह पहरेदार जिसके कन्धे को चपला ने कूदने की प्रथम सीढ़ी बनाई थी, लड़खड़ा कर जमीन पर गिर गया था और सँभल कर ख़तरे की सीटी बड़े ज़ोर से बजा रहा था। तत्काल ही उसके पास और भी कितने ही सिपाही आ गये। दीवान साहब के ख़ास दफ़्तर के बरामदे में विशेष रूप से तैयार बैठे सैनिक भी वहाँ पहुँच गये। गैस के कितने ही हंडे वहाँ ले जाये गये, लेकिन सिवा मूसलाधार पानी में भीगने के और किसी के हाथ कुछ न लगा। हवेली के गिर्द और हवेली के अन्दर एक सनसनी फैल गई; कि चपला हवेली के अन्दर गई है। पर पहरेदार यह ठीक नहीं बता सका कि चपला पहरेदार के कन्धे पर दीवाल से कूद कर बाहर निकल गई है, या बाहर से उसके कन्धे पर चढ़ कर चहारदीवारी पर और उसके बाद दीवान साहब के हवेली में दाखिल हो गई है। इसलिए बाहर भीतर दोनों ओर तलाश शुरू हुई।

दीवान साहब मन मारे किंकर्त्तव्य विमूढ़ अपने कमरे में जहाँ के तहाँ बैठे रहे। कितनी शैतान है यह चुड़ैल, इससे किस प्रकार बदला लिया जाय। जरूर यह जादूगरनी है। फिर उन्होंने सोचा, शायद मुझे झपकी आ गई हो और मैंने स्वप्न देखा हो। उन्होंने अपने फ़ाउन्टेन पेन को टटोला। उसका निब गीला था। उन्होंने अपने भरे हुये तमञ्चों को जाँचा। वे खाली थे। नहीं उन्होंने स्वप्न नहीं देखा था, बिलकुल सच था।

शीघ्र ही दीवान साहब को खबर दी गई कि चपला या तो हवेली के अन्दर गई है, या हवेली के बाहर किसी जगह छिपी हुई है।

दीवान साहब ने कहा—वह आई थी, और गई भी। मुझसे वह अभयराज सिंह के छोड़ने की शिफ़ारिसी चिट्ठी एक बार फिर पिस्तौल दिखा कर लिखा ले गई है। मैंने उस पर दो पिस्तौलें खाली कर दीं, मगर उसको गोली नहीं लगी। वह ज़रूर मायाविनी है, जादूगरनी और दानवी है, मनुष्य नहीं है।

जितना ही इस घटना का वर्णन दीवान साहब करते थे, उतना ही वे और उनके श्रोता भय से त्रस्त होते जाते थे। उस समय वहाँ फ़ौज के कमाण्डर, पुलिस कप्तान और कितने ही सी० आई० डी० सहकमा के बड़े-बड़े अफ़सर और कितने ही और लोग जमा हो गये थे। बरसते हुये बादलों से ढकी उस रात में ही चपला को गिरफ़्तार करने की दौड़ धूप शुरू हो गई।

अब भी बड़े जोरों से बारिश हो रही थी और निवास के बाहर चपला को गिरफ़्तार करने के लिए दौड़ धूप जारी थी। दीवान दिग्विजय अपने हाथ में टेलीफ़ोन लिए हुए पुलिस के थानों से पूछ-ताछ कर रहे थे, कि उसका पता लगा या नहीं। उसी समय वे महाराजा विष्णुदेव सिंह से भी संपर्क स्थापित करना चाहते थे। लेकिन बार-बार उनको जनानी ड्योढ़ी से यही ख़बर दी गई कि महाराजा रनिवास में हैं। बाहर कुछ भी घटना क्यों न हो। उनसे आपकी टेलीफ़ोन पर या किसी प्रकार इस समय बात-चीत नहीं हो सकती।

यह रात दीवान साहब और पुलिस के सिपाहियों को बहुत बड़ी जान पड़ी। जान पड़ता था कि जैसे प्रलय की निशा यही है। एक-एक सेकन्ड एक-एक युग के समान बीत रहा था। बड़ी प्रतीक्षा के बाद सबेरा हुआ और दीवान साहब ने अपना सिर

निकाल कर खिड़की के बाहर देखा। उन्हें जान पड़ा जैसे उनके दुख से सारा बीहड़ रात भर रोता रहा हो।

रनिवास से ख़बर आई कि महाराजा अभी-अभी शयन को गये हैं और इस समय उन्हें जगाया नहीं जा सकता। अब क्या हो, आधे ही घंटे के अन्दर सरदार अभयराज सिंह को फाँसी लगने वाली थी। जेलख़ाने में फाँसी की सब तैयारियाँ हो चुकी थीं। दीवान दिग्विजय सिंह ने सोचा कि जब महाराजा सो रहे हैं तब चपला के हाथ में उनकी शिफ़ारिसी चिट्ठी बेकार है। क्यों कि जब वे जगेंगे तब सबसे पहले उन्हीं को ख़बर मिलेगी। लेकिन फिर भी उन्होंने सोचा कि वह जादूगरनी है। कहीं वह स्वप्न ही में मुलाक़ात करके अभयराज सिंह की क्षमा का फ़रमान न लिखवा ले। इसलिए वे अधिक सावधान हो जाना चाहते थे। उहोंने टेलीफ़ोन उठाया और जेल के प्रधान दारोग़ा से बात शुरू की। उन्होंने पूछा—"अभयराज सिंह फाँसी के तख़्ते पर लाये गये?"

"जी! वे तो छोड़ दिए गये। अभी-अभी एक औरत आपकी शिफ़ारिसी चिट्ठी लाई थी। उस पर महाराजा की दस्तख़त और मुहर थी।"

"बहुत ठीक" कह कर दीवान दिग्विजय सिंह ने टेलीफ़ोन रख दिया। उन्हें जान पड़ा जैसे फाँसी का जो फन्दा सरदार अभयराज सिंह के गले में पड़ने वाला था वह उनके ही गले में पड़ गया है।

२५

सरदार अभयराज सिंह के छूट जाने का समाचार सारे बीहड़ राज्य में बिजली की भाँति फैल गया। जिसने जहाँ इस समाचर को सुना, अपने काम को छोड़ कर वह वहीं से सरदार अभयराज सिंह का दर्शन करने के लिए विक्रमपुर की ओर रवाना हुआ। विक्रमपुर की चहल-पहल का आज ठिकाना न था। सारा क़सबा फूल-पत्तियों, काग़ज़ की बहुरंगी झंडियों और बड़े-बड़े दरवाज़ों से सजाया गया था। प्रातःकाल करीब छः बजे सरदार अभयराज सिंह छूटकर विक्रमपुर में आये थे। कोई दो बजे दिन में इस प्रसन्नता में विक्रमपुर के नागरिकों द्वारा एक बड़ा भारी जलूस निकाला गया। जिसमें विक्रमपुर और आस-पास के गाँव के नर-नारी सम्मिलित हुए।

जेलखाने से छूटने पर सरदार अभयराज सिंह सबसे पहले चपला के साथ बाबा बजरङ्गी के आश्रम में गए और वे दोनों करीब डेढ़ घंटे तक बातें करते रहे। बातों के सिलसिले में दोनों ने महाराजा के पास इस आशय का प्रार्थना पत्र भेजा कि उनके वादे के अनुसार बीहड़ राज्य में शासन व्यवस्था की सुधार करने वाली समिति क़ायम हो जानी चाहिए, और उसे तत्काल अपना काम शुरू कर देना चाहिए।

इधर बीहड़ नगर और विक्रमपुर आदि जगहों में प्रजा-मण्डल की ओर से सभाएँ होने जा रही थीं और खुशियाँ मनाई जा रही थीं, उधर दीवान दिग्विजय सिंह अपनी हवेली में उदास बैठे हुए अपने सहयोगी राज्य कर्मचारियों से मंत्रणायें कर रहे थे कि अब प्रजामण्डल को किस प्रकार दबाया जाय?

महाराजा पहले से ही चाहते थे कि वादे के अनुसार जो समिति बननी है वह बन जाय और वह अपना काम शुरू कर

दे जिससे कि रियासत में अमन चैन कायम हो। लेकिन दीवान साहब देर कर रहे थे। बाबा बजरङ्गी और सरदार अभयराज सिंह का इस सम्बन्ध में आवेदन पत्र पाते ही महाराजा ने दीवान दिग्विजय सिंह को बुलवाया और उनसे बड़ी देर तक बातें कीं। दीवान दिग्विजय सिंह ने महाराजा के सामने बीहड़ राज्य की और भी कितनी ही सही ग़लत जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओं की प्रार्थनाएँ उपस्थित कीं और कहा कि जो प्रतिनिधि चुने जायँ, उनमें इन सबों की रज़ामन्दी भी ज़रूरी है और अगर ऐसा नहीं होता तो राज्य के अन्दर अशान्ति बनी ही रहेगी।

दीवान साहब ने ऐसे बड़े-बड़े तर्क उपस्थित किए कि महाराजा को निरुत्तर होना पड़ा और उनको दीवान साहब की मर्ज़ी के मुताबिक एक नया फ़रमान निकालना पड़ा। उसके अनुसार समिति में प्रजामण्डल और राज्य के प्रतिनिधियों के अलावा और भी कितनी ही संस्थाओं के प्रतिनिधि शामिल किए गए। इस प्रकार जो समिति बनी वह ऐसी थी कि दीवान साहब के इशारे पर काम कर सकती थी और शासन व्यवस्था में प्रजामण्डल की माँग के अनुसार कोई सुधार नहीं हो सकता था।

विक्रमपुर में सरदार अभयराज सिंह के स्वागत में एक विशाल सभा होने जा रही थी। उसके पहले ही महाराजा का यह फ़रमान निकल चुका था। अपने एक पत्र के साथ, इस फ़रमान की नक़ल महाराजा ने स्वयं बाबा बजरंगी के पास भेज दी थी। दूसरे पत्र में बाबा बजरंगी से यह निवेदन किया था, कि फ़रमान में इस तरह का सुधार किया जाना ज़रूरी था। महाराजा ने बाबा बजरंगी से यह भी निवेदन किया था कि यदि क़ानून की दिक्क़तें सामने न होतीं तो वे उनकी मरज़ी के मुताबिक़ काम करने में कुछ भी बाक़ी न उठा रखते।

विक्रमपुर की जनता की ओर से एक महती सभा हुई जिसमें प्रजामण्डल के कार्यकर्ता और भुवनमोहिनी भी आकर सम्मिलित हुई थी। महाराजा का यह फ़रमान पढ़कर सुनाया गया। बाबा बजरङ्गी के नाम उनका पत्र भी सुनाया गया। विक्रमपुर के घेरे के समय राज्य की ओर से जो वादा किया गया था, उसका खुलासा प्रजा के सामने रक्खा गया। इन दिनों दीवान दिग्विजय सिंह की ओर से प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार हुए थे, वे सब भी जनता के सामने रक्खे गये। बाबा बजरंगी की हत्या का जो आयोजन हुआ था, वह जनता को बतलाया गया और जनता अत्यन्त उत्तेजित हो उठी।

इन तमाम विषयों पर प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं के, बाबा बजरंगी के और सरदार अभयराज सिंह के व्याख्यान हुए। इन व्याख्यानों में एक बात बहुत अच्छी तरह स्पष्ट कर दी गई। वह यह कि महाराजा की नीयत अच्छी है। वे शासन व्यवस्था का सुधार करना चाहते हैं। परन्तु उनके मार्ग में रियासत के स्वार्थी कर्मचारी अड़ंगे लगाते हैं। इस तरह प्रजामण्डल की लड़ाई महाराजा से नहीं बल्कि रियासत के वर्तमान कर्मचारियों के अनुचित संगठन से है। इसलिए प्रजामण्डल बीहड़ की समस्त प्रजा से निवेदन करता है, कि वह इन कर्मचारियों को बीहड़ राज्य का कर्मचारी अस्वीकार कर दे और इन्हें डाकू और लूटेरा समझे। उनकी किसी प्रकार की मदद न करे और किसी प्रकार भी किसी मामले में सहायता न करे। प्रजा वर्ग उनसे किसी किस्म का सम्पर्क न रखें। उनके साथ पूर्ण असहयोग किया जाय। उनके साथ समस्त सामाजिक सम्बन्ध भी तोड़ दिये जायँ वग़ैरह वग़ैरह।

इस प्रस्ताव को स्वयं बाबा बजरंगी ने जनता के सामने रक्खा था। बाबा बजरंगी कोई बहुत बड़े विद्वान न थे। उनकी

शिक्षा भी बहुत ऊँचे दर्जे की नहीं हुई थी। लेकिन वे प्रजा-प्रेमी थे। समाज सेवा की उनके दिल में भावना थी और वे उदार हृदय रखते थे। अपने उसी हृदय को, अपनी उसी समाज सेवा की भावना को, उन्होंने वहाँ उपस्थित जनता के हृदय में उँडेल दिया।

बाबा बजरंगी की सब से बड़ी बात जिस पर उन्होंने बहुत ज़ोर दिया था यह थी कि प्रजावर्ग के लोग रियासत के कर्मचारियों की ओर से किए गये ज़ुल्मों का जवाब मार-पीट, गाली-गलौज, या हिंसा के द्वारा न दें। जो कुछ भी उन पर आपत्ति आवे उसे वे धैर्य पूर्वक सहें। उन्होंने यह भी बतलाया कि जिस वक्त हम अपनी इस असहयोग की नीति की घोषणा कर देंगे उसी वक्त राज्य की ओर से हम पर जुल्म होने शुरू हो जायँगे। लूट-पाट, धर-पकड़, मार-पीट न जाने क्या क्या जुल्म होंगे। उन सबों को हमें धैर्य पूर्वक सहना होगा। यदि हमारे कष्टों ने रियासत के कर्मचारियों का मत परिवर्तन कर दिया तभी युग-युग तक बीहड़ राज्य के सारे निवासी सुख और शान्ति से रहेंगे।

जब यह सभा समाप्त हुई तब बाबा बजरंगी की जय, सरदार अभयराज सिंह की जय, भुवनमोहिनी की जय, और चपला की जय के इतने नारे लगे कि आकाश गूँज उठा। इसकी प्रतिध्वनि दीवान दिग्विजय सिंह की हवेली से टकराई और उनका हृदय दहल गया।

इस प्रस्ताव की एक नक़ल अपने एक पत्र के साथ बाबा बजरंगी ने महाराजा विष्णुदेव के पास अपने एक विशेष दूत के द्वारा भेज दी और उनसे उन्होंने निवेदन किया, कि अब भी मौक़ा है, वे प्रजामण्डल की माँग को स्वीकार करें।

महाराजा ने दीवान दिग्विजय सिंह को फौरन बुलवाया और उनसे यह निवेदन किया कि प्रजामण्डल की माँग के अनुसार वे कार्य करें और रियासत में एक बड़ा अनर्थ होने से बचा लें। दीवान ने फ़ौरन अपनी वही दलीलें महाराजा के सामने रक्खीं। इतना ही नहीं दीवान ने महाराजा को यह भी धमकी दी कि यदि वे इस उच्छृङ्खल आन्दोलन को दबाने के लिए उनको पूरा अधिकार न देंगे तो वे अपने पद से स्तीफ़ा दे देंगे और महाराजा के उन सब काले कारनामों को ब्रिटिश सरकार के सामने उपस्थित कर देंगे, जिसके कारण राज्य का ख़जाना खाली हो गया है और यह नौबत आ गई है। बात-चीत के सिलसिले में दीवान ने महाराजा से यह भी बतलाया कि इन बातों के ब्रिटिश सरकार के पास सैकड़ों प्रमाण हैं। महाराजा के विनोद के लिए किले में नग्न स्त्री-पुरुषों के जो फोटो उतरवाये गये हैं उनमें महाराजा के कितने ही विश्वासी सेवक भी शरीक हैं।

दीवान दिग्विजय सिंह ने कहा कि ब्रिटिश सरकार आपको गद्दी से उतार कर रियासत को एक रेज़ीडेन्सी के सुपुर्द कर देने की बात पहले ही से सोच रही है और वह सिर्फ़ एक बहाना चाहती है।

दीवान साहब की बातें सुनकर महाराजा सिहर उठे और उन्होंने दीवान की मर्जी के मुताबिक एक दूसरा फ़रमान निकाला, जिसमें यह घोषित किया गया कि प्रजामण्डल की ओर से जो प्रस्ताव पास किया गया है, उसमें साफ यह ध्वनि है कि प्रजामण्डल वैध तरीकों से काम न करके रियासत के विरुद्ध बग़ावत करना चाहता है। इसलिए आज की तारीख़ से प्रजामण्डल को गैर क़ानूनी करार दिया जाता है। जो व्यक्ति प्रजामण्डल के प्रस्ताव को पढ़ेगा या पढ़कर किसी को सुनायेगा या उसका किसी से ज़िक्र करेगा या उसके सम्बन्ध में नोटिस चिपकाते

हुए पाया जायेगा, वह गिरफ्तार किया जा सकता है और उस पर गोली भी चलाई जा सकती है।

इस फ़रमान के निकलते ही दीवान साहब और उनके सहयोगी सक्रिय हो उठे। रियासत में दमन-चक्र बड़े ज़ोर से चलना शुरू हो गया। सबसे पहले पुलिस कप्तान खाँ बहादुर मौलवी हामिद अली ने बाबा बजरंगी के आश्रम पर छापा मारा और उस पर पुलिस ने कब्जा कर लिया। बाबा बजरंगी, भुवनमोहिनी और प्रजामण्डल के जो सदस्य जहाँ मिल सके वहीं गिरफ़्तार कर लिए गये। अभी उन्हें विक्रमपुर में जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। इसलिए अभयराज सिंह और चपला अभी गिरफ़्तार नहीं किये गये थे। लेकिन विक्रमपुर नगर को फिर उन्होंने फौज और पुलिस से घेरवा लिया था और इस बार वे विक्रमपुर को तहस-नहस कर डालना चाहते थे। नगर के अन्दर के रहने वालों की जान-माल की हानि न हो और उनके आन्दोलन को बल मिले, इस ख्याल से बाबा बजरंगी की राय से सरदार अभयराज सिंह ने फिर आत्मसमर्पण कर दिया और वे चपला के सहित गिरफ़्तार हो गये। इस तरह सारी रियासत में त्राहि त्राहि मच गई।

मीटिंगों में, सभाओं में लाठी चार्ज होने लगे। पुलिस उन पर गोलियाँ भी चलाने लगी। अगर कोई कहीं नोटिस चिपकाते देखा जाता तो उस पर गोली चलाई जाती। लगान वसूली के लिए पुलिस के दल के दल गाँवों में जाते और गाँव वालों को सब तरह से बेइज़्ज़त करते। उनके घरों में आग लगा देते। लेकिन उन्हें लगान की वसूली में कामयाबी न होती। जान पड़ा कि जैसे रियासत के कर्मचारियों को बीहड़ राज्य के समस्त निवासियों को या तो क़त्ल करना पड़ेगा या उनको जेलखाने में बन्द करना पड़ेगा। इन दोनों कामों के लिए राज्य में काफी

पुलिस, फौज और जेलें न थीं और न तो इतना ख़र्चा ही था कि वे इतने बड़े दमनचक्र को बराबर चलाते रहते।

चक्रपाणि का बीहड़ समाचार इस आन्दोलन को दबाने में बेकार सिद्ध हुआ और उन्हें रियासत छोड़ कर भागना पड़ा। विषयेश कवि ने जोश में आकर सरदार अभयराज सिंह की प्रशंसा में विक्रमपुर की सभा में एक कविता सुनाई थी। इसलिये वे भी बीहड़ रियासत के एक जेलखाने में बन्द कर दिये गये थे। रियासत के बाहर के समाचार पत्रों में रियासत के ज़ोर जुल्म की ख़बरें छपने लगीं और रियासत के बाहर के बड़े-बड़े नगरों में लोग सभायें कर-कर के ब्रिटिश सरकार के पास इसमें हस्तक्षेप करने का प्रस्ताव भेजने लगे। प्रजामण्डल के कोष में हिन्दुस्तान के हर कोने से अपार धन आकर जमा होने लगा। यह धन इस तरह छिपा कर रक्खा जाता कि रियासत के कर्मचारियों को बहुत मुश्किल से पता चलता।

यह आन्दोलन करीब छः महीने तक चलता रहा। इसके दबाने के लिये राज्य की ओर से ब्रिटिश सरकार से एक बहुत बड़ी फौज और पुलिस का बहुत बड़ा दल बुलवाया गया था। इसका ख़र्चा रियासत को अखर रहा था। खज़ाना पहले ही से खाली था। राज्य कर वसूल न हो सकता था। इस तरह रियासत में पूर्ण आर्थिक संकट छा गया।

दीवान दिग्विजय सिंह और महाराजा पर ब्रिटिश सरकार का दबाव पड़ने लगा कि वे अपनी स्थिति सुधारें।

महाराजा के पास उनके विशेष गुप्तचरों द्वारा प्रजा पर राज्य कर्मचारियों द्वारा किये गये अत्याचारों के समाचार पर समाचार पहुँचने लगे। रनिवास में रियासत के नाना अत्याचारों की रात-दिन चर्चा होने लगी। महाराजा को खाना, पीना, सोना सब स्वप्न सा हो गया। वे घोर चिन्ता और घोर उदासी

के शिकार हो गये। अब उनका अधिकांश समय रानियों के बीच में कटता और वहाँ वे आपस में यही चर्चा करते कि रियासत को सर्वनाश से किस प्रकार बचाया जाय ? रानियों ने उनसे कहा—यदि हमीं और आप इस अव्यवस्था और त्राहि त्राहि के कारण हैं तो सिंहासन छोड़कर यहाँ से निकल चलिए। किसी तीर्थ में भगवान का भजन करते हुए सुख से जीवन व्यतीत करेंगे।

महाराजा को अपनी रानियों की यह सलाह पसन्द आई और वे बार बार उठते-बैठते रियासत से चले जाने की कल्पना भी करते। लेकिन उसके साथ ही वे यह भी सोचते कि यह तो बहुत बड़ी कायरता है। यह वैसे ही है जैसे किसी के घर में आग लगी हुई हो और घर का मालिक घर के समस्त प्राणियों को आग में जलते हुए छोड़ कर स्वयं निकल कर भागा जाता हो। वे रियासत छोड़ कर नहीं जायँगे। एक बार और इस रियासत में शान्ति स्थापित करने की चेष्टा करेंगे।

अपने इस इरादे के अनुसार महाराजा विष्णुदेव सिंह एक रोज़ फिर उस जेलखाने में पहुँचे जिसमें बाबा बजरंगी कैद थे।

महाराजा के जाते ही जेल का फाटक खुल गया। वे बाबा बजरंगी के पास ले जाये गये। इस बार बजरंगी ने महाराजा का स्वागत किया। दोनों में बड़ी देर तक बातें होती रहीं।

महाराजा ने कहा—सरदार सम्पूर्ण सिंह ! मैं अपनी रानियों के साथ रियासत छोड़कर कहीं बाहर चले जाने के लिये तैयार हूँ और यह वादा करता हूँ कि इस रियासत में लौट कर नहीं आऊँगा। लेकिन मुझे एक आश्वासन मिलना चाहिये कि रियासत में फिर कोई गड़बड़ी न होगी।

"महाराजा ! हम यह नहीं चाहते कि आप रियासत को छोड़ें। हम तो सिर्फ एक बात चाहते हैं। वह यह कि रियासत का शासन प्रजा की राय से हो। रियासत के खास ख़ास

कर्मचारियों की नियुक्ति प्रजा के प्रतिनिधियों के बहुमत का ख्याल करके करें। बस हमारी इतनी सी माँग है। यदि आप हमारी माँग को पूरा नहीं करते तो आपके रियासत से कहीं दूर तीर्थ में चले जाने से भी स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहेगी।"

बाबा बजरंगी के पास बैठे हुए महाराजा बड़ी देर तक सोचते रहे। उसके बाद उन्होंने कहा—मुझे क्या करना चाहिए ?

"आप एक फ़रमान निकालिये कि प्रजामण्डल पर से रोक उठाई जाती है और मैं उसकी माँगों को स्वीकार करता हूँ।"

महाराजा ने कहा—"मगर ऐसा करने के पहले मुझे रियासत के कर्मचारियों से पूछ लेना जरूरी है।"

"उनसे पूछने के मानी यही होंगे कि स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहेगी।"

अन्त में महाराजा ने कहा—"एक बात कर सकता हूँ।"

"क्या।"

"मैं सिर्फ आपको छोड़ने की घोषणा कर दूँ और आपको प्रजामण्डल की ओर से बात करने लिये अपने महल में आमंत्रित करूँ। उसमें रियासत के कर्मचारियों के सामने हमारे और आप के बीच में जो तय हो जाय उसी के अनुसार कार्य हो। यदि रियासत के कर्मचारी उसे स्वीकार न करेंगे तो मैं उसी दम रियासत छोड़ कर चला जाऊँगा। फिर आप और वे निपटेंगे।"

बाबा बजरंगी को महाराजा विष्णुदेव सिंह की ये बातें पसन्द आईं; पर उन्होंने कहा—मेरे बजाय आप सरदार अभयराज सिंह को बुलवाइए। क्योंकि सरदार अभयराज सिंह एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके साथ रियासत के सब प्रकार के आदमी हैं। वे राजनीति समझ सकते हैं। मैं तो कोरा संत हूँ।

अनिच्छा के साथ महाराजा ने बाबा बजरंगी के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया।

जेलखाने में बाबा बजरंगी से मिलकर लौटते ही महाराजा ने दीवान साहब और अन्य कर्मचारियों से सलाह करके सरदार अभयराज सिंह को तत्काल छोड़ देने का फ़रमान निकाल दिया।

२६

सरदार अभयराज सिंह को विक्रमपुर में पहुँचे मुश्किल से एक घंटा हुआ होगा कि महाराजा विष्णुदेव सिंह का निमंत्रण उनके पास पहुँचा और वे उसी दम महाराजा से भेंट करने के लिए चल पड़े। एक बहली तैयार कराई गई, जिसमें ख़ास तौर से सरदार अभयराज सिंह सैर को निकला करते थे और वह बहली विक्रमपुर से बाहर हुई। ज्यों-ज्यों बहली आगे बढ़ी, त्यों-त्यों जिस-जिस ने उन्हें देखा वही उनके साथ आगे बढ़ने लगा।

विक्रमपुर के कितने ही निवासी जिन्हें महाराजा की नीति का विश्वास नहीं था, वे अपने हथियारों से लैस होकर बहली के साथ-साथ चले। वे यह नहीं समझ सकते थे कि महाराजा ने सरदार अभयराज सिंह को एकाएक क्यों छोड़ दिया है और अब उनको किले के अन्दर क्यों बुलवाया है? वे सब अपने सरदार को अकेले नहीं जाने देना चाहते थे।

विक्रमपुर के गाँवों में और खेतों में होते हुए सरदार अभय-राज सिंह उस स्थान पर आये जहाँ बाबा बजरङ्गी का आश्रम था। आश्रम पर पुलिस का पहरा था और आस पास पूरी मन-हूसियत छाई हुई थी। फिर भी वहाँ कितने ही झोपड़े थे, जिनमें किसान और मज़दूर श्रेणी के लोग रह रहे थे। उन सब लोगों ने भी सरदार अभयराज सिंह की जय के नारे लगाये और वे सब भी उनके साथ चल पड़े। जब ये लोग बीहड़ नगर के अन्दर पहुँचे तब लोगों को जान पड़ा कि जैसे कोई भारी जलूस चला आ रहा हो!

दीवान दिग्विजय सिंह को यह प्रदर्शन पसन्द न था। उस समय वे अपनी हवेली में बैठे हुये थे। अपने गुप्तचरों से जब उन्होंने यह सब सुना तब वे भारी असमंजस में पड़ गये। फ़ौरन उन्होंने टेलीफ़ोन उठाया और रियासत के अधिकारियों से बातें करनी शुरू कर दीं। महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी, फ़ौज के कमाण्डर, पुलिस के कप्तान को उन्होंने आमन्त्रित किया और सारे रियासत में दफा १४४ लगवा दी कि तीन से अधिक व्यक्ति कहीं पर इकट्ठा न हों।

बीहड़ नगर के मुख्य बाज़ार में सरदार अभयराज सिंह और उनके साथ वाला यह दल पहुँच चुका था। उस समय पुलिस के एक जत्थे ने उनके मार्ग को रोका और उन्हें पुलिस कप्तान के हुक्म को दिखलाया कि लोग जलूस बना कर शहर में इस प्रकार नहीं चल सकते।

सरदार अभयराज सिंह ने कहा—मुझको जलूस बनाने का शौक नहीं है और न कहीं जाने का शौक है। महाराजा ने मुझको बुलवाया है; इसलिए मुलाक़ात करने जा रहा हूँ। अगर आप मुझको रोकना चाहते हैं तो शौक से रोक सकते हैं। उस हालत में मैं नहीं जाऊँगा। घर को वापस लौट जाऊँगा।

पुलिस के जिस अधिकारी से सरदार अभयराज सिंह ने इस तरह की बातें की थीं; उन्होंने तत्काल करीब के थाने में जाकर टेलीफ़ोन से दीवान साहब से बातें कीं और स्वयं उनको और पुलिस कप्तान को घटनास्थल पर आने के लिए कहा।

दीवान साहब ने अपनी खास किस्म की पोशाक पहनी और पुलिस कप्तान और फ़ौज के कमाण्डर के साथ वहाँ आगये।

और भी कितने ही राज्य के अधिकारी वहाँ हाजिर हुए। जलूस उसी गति से आगे बढ़ रहा था। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ रहा था त्यों-त्यों उसकी संख्या बढ़ती जाती थी। कितने ही लोग जो बच्चे लिए सैर को गये थे जलूस के साथ उसी तरह चलने लगे। कितने ही बाइसिकिल वाले जो अपने घर से बाइसिकिलों के साथ चले थे जलूस के पीछे-पीछे चल रहे थे। स्कूली लड़के अपनी किताबें लिए हुए, मजदूर अपने सिरों पर बोझा लिए हुए जलूस के साथ चल रहे थे। इस तरह एक खासी भीड़ सरदार अभयराज सिंह के साथ चल रही थी। पुलिस कप्तान ने अपनी मोटरकार से उतर कर सरदार अभयराज सिंह से कहा—सरदार साहब ! मुनासिब यह होगा कि सब लोगों को वापस लौटा दीजिए। आप अकेले किले की ओर चलिए।

"लेकिन मैं इनको साथ चलने के लिए नहीं कह रहा हूँ। मैं इनको रोक भी नहीं सकता हूँ। यह राज-पथ है। राज-पथ पर सब को चलने का अधिकार है। आप जिसको चाहें रोक सकते हैं।"

लेकिन भीड़ इतनी ज्यादा थी। जनता में उत्तेजना इतनी अधिक थी कि अधिकारियों को उनको बाजार के अन्दर रोकने की हिम्मत न हुई।

दीवान दिग्विजय सिंह और फ़ौज के कमाण्डर दीवान साहब की कार में बैठे और किले की ओर बहुत दूर निकल गये। वहाँ एक पेड़ के नीचे खड़े हो कर एक उपयुक्त स्थान सोचने लगे, जहाँ आने पर जलूस रोका जा सकता था। इन लोगों की समझ में न आया कि सरदार अभयराज सिंह इतनी भीड़ लेकर क्यों चल रहें है ? जरूर उनका कोई न कोई फ़साद करने का इरादा है।

इधर वास्तविकता यह थी कि सरदार अभयराज सिंह अकेले ही किले में जाना चाहते थे। अपने साथ वे किसी को ले नहीं जाना चाहते थे। लेकिन जनता के हृदय में उनके लिए

इतना प्रेम था कि वह उनको महाराजा के पास अकेले नहीं जाने देना चाहती थी। जनता देख चुकी थी, एक बार जब सरदार अभयराज सिंह ने आत्मसमर्पण किया था, तब उनको राज्य की ओर से फाँसी की सजा दी गई थी। अगर चपला अपने कौशल से उनको न छुड़ा लेती तो उनका यह प्यारा नेता सदैव के लिए उनके बीच से अलग हो जाता। इसलिए जनता किसी भी प्रकार सरदार अभयराज सिंह को अकेले छोड़ना नहीं चाहती थी और हर हालत में उनके साथ बढ़ने को तैयार थी। फौज के कमाण्डर और पुलिस के कप्तान थोड़ी थोड़ी दूर बाद मार्ग को आगे से रोक रखने की व्यवस्था कर चुके थे। लेकिन उनका यह दाँव न चला। उनका घेरा अनायास टूट-टूट जाता था। और यह दल बढ़ता ही जाता था। अन्त में सर्वसम्मति से राज्य के कर्मचारियों ने यह तै किया कि किले के फाटक पर फ़ौज और पुलिस के सिपाहियों का काफ़ी बन्दोबस्त किया जाय और फाटक तभी खोला जाय जब सरदार अभयराज सिंह किले के अन्दर अकेले जाने के लिए तैयार हों। ज्यों ही वे फाटक के अन्दर प्रवेश करें, फाटक बन्द कर दिया जाय। तब भीड़ अपने आप न हट जाय तो लाठी चला कर तितरबितर कर दी जाय।

सरदार अभराज सिंह अपनी बहली से जनता का अभिवादन करते हुए आगे बढ़े जा रहे थे। जनता में जो उमङ्ग थी उससे उनको बहुत संतोष था और वे सोच रहे थे कि अब बीहड़ की जगी हुई जनता को कोई सुला नहीं सकता और न कोई उस पर किसी किस्म का अत्याचार ही कर सकता है।

किला का बाहरी भाग अब दिखलाई पड़ रहा था। किले के ऊपर बीहड़ नरेश का झण्डा फहरा रहा था और उसके आस पास दूरबीन लगाये हुए बहुत से लोग खड़े थे और इस बढ़ते हुए हुजूम को देख रहे थे। किले के बाहर चहारदीवारी के बराबर

फौज के सिपाही कतार बनाकर खड़े हो रहे थे और कमाण्डर की आज्ञा की प्रतीक्षा में थे। पुलिस के सिपाहियों का जत्था उनके आगे था।

जलूस उमड़ी नदी सा बाबा बजरंगी और सरदार अभयराज सिंह की जय-जयकार करता हुआ आगे बढ़ता चला गया और अन्त में वहाँ पहुँचा जहाँ पुलिस और फौज के सिपाहियों की दीवाल खड़ी हुई थी।

दीवान दिग्विजय किले के अन्दर दाखिल हुए और महाराजा से उन्होंने कहा कि सरदार अभयराज सिंह ने किले पर चढ़ाई कर दी है। जितना ही आप उदारता और मुलायमियत से उनके साथ पेश आते हैं उतना ही यह सरदार आपको कायर समझता है और उदण्डता करने पर उतारू हुआ है। महाराजा की समझ में यह नहीं आ रहा था कि वे क्या कह रहे हैं। यह बात जरूर थी कि सरदार अभयराज को वे आदर की दृष्टि से नहीं देखते थे तथापि रियासत में जो असंतोष पैदा हो गया था उसको वे दूर करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने सरदार अभयराज सिंह को बुलवाया था। उनकी भी समझ में यह बात न आई कि सरदार अभयराज सिंह को इतनी बड़ी भीड़ लाने की क्या जरूरत थी।

अन्त में दीवान साहब ने महाराजा को इस बात पर राजी कर लिया कि इस दल के लोग यदि राज्य-आज्ञा न मानें तो तुरन्त गोली चलाई जाय और रियासत के अन्दर और भी सख्ती की जाय। जब तक सख्ती नहीं की जायेगी तब तक रियासत के लोग राह पर न आयेंगे।

महाराजा से इस प्रकार की आज्ञा ले लेने से दीवान दिग्विजय सिंह की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उनका उदास मुखड़ा प्रफुल्लित हो उठा। वे तुरन्त किले के बाहर निकल कर आये और सरदार अभयराज सिंह का, अपनी शान के अनुरूप स्वागत करने के लिए तैयार हो गये।

अब दीवान दिग्विजय सिंह और सरदार अभयराज सिंह आमने-सामने खड़े थे। दीवान साहब ने कहा—सरदार साहब, आपको मालूम होना चाहिए कि नगर के अन्दर दफ़ा १४४ लगी हुई है और आप इतने बड़े दल को लेकर निकले हैं। यह राजसत्ता का सरासर अपमान है।

"विवेक रहित राजसत्ता मुझे स्वीकार नहीं है। आप कहें तो मैं वापस लौट जाऊँ; लेकिन महाराजा ने मुझे बुलवाया है। मैं उनसे मिलकर ही लौटना चाहता हूँ। किले का फाटक मेरे लिए खुलना चाहिए।"

"किले का फाटक आपके लिए खुल सकता है। मगर एक शर्त है कि आप इस भीड़ को वापस जाने को कह दीजिए।"

"आप इतमिनान रक्खें! भीड़ किले के अन्दर नहीं जायगी। ये सब लोग फाटक के बाहर तब तक खड़े रहेंगे, जब तक मैं निकल कर न आ जाऊँगा; क्योंकि ये लोग जानना चाहेंगे कि महाराजा ने मुझसे क्या कहा?"

दीवान दिग्विजय सिंह ने कहा—यह नहीं हो सकता। आप को एक इञ्च भी आगे तब तक नहीं बढ़ने दिया जायगा जब तक आप इस भीड़ को वापस नहीं कर देंगे।

"महाराजा की आज्ञा के सामने मैं आपकी बात सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ। मुझे महाराजा ने बुलवाया है। लिहाजा मैं जरूर आगे बढ़ूँगा।" यह कहते हुए सरदार अभयराज सिंह इस बात का ख्याल न करके कि उनके सामने कोई खड़ा है आगे बढ़े और उनकी छाती दीवान की छाती से भिड़ गई। दीवान साहब एक बगल में खड़े हो गये और रियासत की फौज के कमाण्डर से कहा—रोकिए इनको! ये सब बाग़ी हैं। फौज के

कमाण्डर ने अपने सिपाहियों को गोली चलाने के लिए तत्काल ही आज्ञा दी। लेकिन सिपाही सब जहाँ के तहाँ खड़े रह गये। मानो वे पत्थर के हों और फौज के कमाण्डर की आवाज़ उनके कानों में न पहुँच रही हो।

कमाण्डर ने फिर चिल्ला कर गोली चलाने की आज्ञा दी और सिपाही फिर भी ज्यों के त्यों खड़े रहे।

सरदार अभयराज सिंह उसी प्रकार आगे बढ़ते गये और उनके साथ बीहड़ की प्रजा का बरसाती गंगा सा उमड़ा हुआ वह जन समूह भी उसी प्रकार आगे बढ़ता गया। पुलिस के सिपाही और फौज के सिपाहियों ने सरदार अभयराज सिंह का आदर के साथ रास्ता छोड़ दिया और सरदार साहब अब किले के फाटक के पास पहुँच गये। फाटक अन्दर से बन्द था। किले के अन्दर के मनुष्य बुर्जों पर से इस दृश्य को देख रहे थे। राज्य कर्मचारियों और बड़े बड़े अफसरों के घबराहट से हाथ पाँव फूले हुए थे।

सरदार अभराज सिंह ने किले के फाटक पर अपने घूँसों से प्रहार किया और चिल्ला कर कहा—"खोलो।"

इस प्रकार उनके दो तीन बार करने से फाटक एकाएक खुल गया और सरदार अभयराज सिंह ने देखा कि फाटक की दूसरी ओर स्वयं महाराजा खड़े हैं।

सरदार अभयराज सिंह ने महाराजा का अभिवादन किया। सरदार साहब के अभिवादन को महाराजा ने आदर से स्वीकार किया। सरदार साहब के साथ जो जनसमूह आया था वह उच्च स्वर में नारे लगाने लगा। "महाराजा की जय, सरदार अभयराज सिंह की जय।"

महाराजा विष्णुदेव सिंह बड़े आदर के साथ सरदार अभयराज सिंह को किले के अन्दर ले गये। फाटक खुला ही रहा; लेकिन भीड़ में से कोई व्यक्ति अन्दर नहीं गया।

सरदार अभयराज सिंह ने प्रजा की माँग महाराजा के सामने रक्खी। संक्षेप में उनकी माँग यह थी कि राज्य के अन्दर एक व्यवस्थापिका सभा बनाई जाय, जो आवश्यक कानूनों का निर्माण करे। इसके सदस्य जनता के चुने हुए व्यक्ति हों। इन सदस्यों में से जिस सदस्य के लिए सब सदस्यों का बहुमत हो या अधिकाँश की सम्मति हो, उसी को महाराजा बुलाकर अपना दीवान बनावें और राज्य का कार्य प्रबन्ध की सुविधानुसार विविध मुहक़मों में बाँट दिया जाय और प्रत्येक महकमे का जिम्मेदार प्रजा के चुने हुए आदमियों में से कोई व्यक्ति उस निर्वाचित दीवान की राय से नियुक्त किया जाय।

दीवान दिग्विजय सिंह और राज्य के अन्य कर्मचारियों ने सरदार साहब की इस माँग का विरोध किया और महाराजा से कहा कि यदि वे ज़रा भी झुके तो रियासत से हम सब कर्मचारी स्तीफा दे देंगे। और उस हालत में महाराजा को गद्दी छोड़नी पड़ेगी क्योंकि ब्रिटिश गवर्नमेन्ट रियासत के अन्दर इस प्रकार की राज्य व्यवस्था कभी बरदाश्त नहीं कर सकती।

महाराजा विष्णुदेव सिंह चुपचाप बैठे बड़ी देर तक दोनों पक्षों की बातों को सुनते रहे। अन्त में वे इस निश्चय पर पहुँचे कि अब वह जमाना आ गया है जब प्रजा की मर्ज़ी के खिलाफ रियासत पर शासन नहीं किया जा सकता। अब अपनी मर्यादा को स्थित रखने का एक ही उपाय है और वह यह कि प्रजा की माँग को पूर्ण रूप से स्वीकार किया जाय।

उन्होंने दीवान दिग्विजय सिंह से कहा कि सरदार अभयराज के तर्क को मैं उचित समझता हूँ। मेरी भी यह धारणा हो चली है कि कोई राज्य व्यवस्था सुचारु रूप से कार्य नहीं कर सकती

जब तक कि जनता की स्वीकृति उसे प्राप्त न हो और वर्तमान राज्य व्यवस्था को जनता का सहयोग प्राप्त नहीं है। इसलिए उसको जारी रखने में मैं असमर्थ हूँ। यदि ब्रिटिश सरकार इसके लिए मुझ पर दबाव डालेगी तो मैं बेशक सिंहासन छोड़ दूँगा।

यह कहने के साथ ही महाराजा विष्णुदेव सिंह ने इसी आशय का एक फ़रमान जारी कर दिया। उस समय उनमें न जाने कहाँ से अद्भुत साहस आ गया था।

दीवान दिग्विजय सिंह और अन्य कर्मचारी महाराजा के मुँह की ओर ताकते ही रह गये।

सरदार अभयराज सिंह ने तत्काल ही किले के बाहर निकल कर उपस्थित जनता को महाराजा का फ़रमान सुना दिया। भीड़ में महाराजा विष्णुदेव सिंह की जय के नारे लगने लगे और महाराजा को जनता को दर्शन देने के लिए किले के ऊपर छज्जे पर आना पड़ा।

थोड़े ही देर में महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी एक और फ़रमान लेकर किले के बाहर आये और वह भी वहाँ उपस्थित जनता को पढ़ कर सुनाया गया। इस फ़रमान का आशय यह था कि बाबा बजरङ्गी, चपला और भुवनमोहिनी और प्रजामंडल के समस्त कार्यकर्त्ता छोड़े जाते हैं और प्रजामंडल पर से रियासत की रोक उठायी जाती है। फ़रमान में यह भी कहा गया कि शीघ्र ही महाराजा अपने पहले फ़रमान के अनुसार राज्य में नयी शासन व्यवस्था जारी किये जाने की तिथि घोषित करेंगे।

मुद्रक—रामप्रसाद, रामायण प्रेस, इलाहाबाद।